DCEGO-101
आर्थिक भूगोल

उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

DCEGO-101 आर्थिक भूगोल

इकाई–1	आर्थिक भूगोलः परिभाषा एवं विषय क्षेत्र, प्राथमिक उत्पादन, द्वितीयक उत्पादन, तृतीय उत्पादन, आर्थिक भूगोल का क्रम विकास– प्रारम्भिक युग, अर्न्तयुद्व काल, युद्वोत्तर काल	3
इकाई–2	आर्थिक भूगोल एवं अर्थशास्त्र, अध्ययन के उपागम– सामान्य विषय वस्तु, प्रादेशिक उपागम, सैद्वान्तिक उपागम, आर्थिक भूगोल के अध्ययन की विधियॉ,	12
इकाई–3	संसाधन की संकल्पना, मानव संसाधन– जनसंख्या, शिक्षा एवं संस्कृति	18
इकाई-4	प्राकृतिक संसाधन– प्राकृतिक संसाधनों का बहुपक्षीय वर्गीकरण, संसाधन उपयोग को प्रभावित करने वाले कारक, संसाधन संरक्षण का अर्थ, आवश्यकता एवं नियम	27
इकाई-5	खनिज संसाधन– खनिजों का महत्व एवं उपयोग, खनिजो के प्रकार– धात्विक एवं अधात्विक खनिज	35
इकाई-6	विभिन्न खनिजों का विश्व में वितरण, उत्पादन एवं व्यापार प्रतिरूप– लौह अयस्क, मैगनीज, तांबा, बाक्साइट	43
इकाई-7	ऊर्जा तथा शक्ति के संसाधन, वितरण एवं उत्पादन प्रतिरूप– कोयला, जल विद्युत, ऊर्जा के संभाव्य स्त्रोत, परमाणु ऊर्जा, सौर ऊर्जा	57
इकाई-8	मिट्टी संसाधन– मिट्टी के तत्वः मिट्टी के कारक, वर्गीकरण एवं वितरण,	68
इकाई–9	विश्व में फसलों का उत्पादन– वितरण प्रतिरूप एवं प्रभावित करने वाली भौगोलिक दशाऍ– चावल, मक्का, गन्ना, चाय एवं कहवॉ, कपास,	81
इकाई-10	विश्व के कृषि प्रदेश एवं उनकी विशेषताऍ	99
इकाई-11	वस्तु निर्माण उद्योग– स्थानीयकरण के कारक, वेबर का सिद्वान्त, विश्व में लौह–इस्पात उद्योग– उत्पादन एवं वितरण, विश्व में वस्त्र उद्योग– उत्पादन एवं वितरण,	115
इकाई-12	औद्योगिक प्रदेश की परिभाषा एवं विशेषताऍः पश्चिमी यूरोप एवं पूर्वी यूरोप, जापान के औद्योगिक प्रदेश	141
इकाई-13	विश्व के प्रमुख सामुद्रिक जलमार्ग, विश्व के प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन	151
इकाई-14	यूरोपीय समुदाय, नाफ्टा, कामेकाम, एशियान, साफ्टा, लैटिन अमेरिका मुक्त व्यापार संगठन	167

उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

परामर्श समिति

पो0 सत्यकाम — कुलपति, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विनय कुमार — कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति ; (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार — आचार्य, इतिहास, निदेशक, समाजविज्ञान, विद्याशाखा, उ0 प्र0 रा0 ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 संजय कुमार सिंह — आचार्य, भूगोल समाजविज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 रा0 ट0 मुक्तविश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 अभिषेक सिंह — सहा0 आचार्य समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 एन.के राना — आचार्य, भूगोलविभाग बी0एच0यू0, वाराणसी

प्रो0 ए0 आर0 सिद्दीकी — आचार्य, भूगोल विभाग इलाहाबाद विश्वविालय प्रयागराज

प्रो0 अरूणकुमार सिंह — आचार्य, भूगोल विभाग बी0एच0यू0, वाराणसी

लेखक

डॉ0 अभिषेक सिंह — सहायक आचार्य, भूगोल उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 शाशि भूषण राम त्रिपाठी — सहायक आचार्य, भूगोल उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 बृजेश यादव — सहायक आचार्य, भूगोलउ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादन

प्रो0 संजय कुमार सिंह — आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा
उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

समन्वयक

डॉ0 अभिषेक सिंहसहायक — आचार्य, भूगोल उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सह -समन्वयक

डॉ0 शाशि भूषण राम त्रिपाठी — सहायक आचार्य, भूगोलउ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रितवर्ष– 2024

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. – 978-93-48270-72-6

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ प्र राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे ंमिनियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नही ंहै।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायीं नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211021

प्रकाशक – कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ०प्र० राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 2025

मुद्रकः सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूशन प्रा० लि०, लोढ़ा सुप्रीमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई।

इकाई–1 आर्थिक भूगोल : परिभाशा एवं विशय क्षेत्र, प्राथमिक उत्पादन, द्वितीयक उत्पादन, तृतीयक उत्पादन, आर्थिक भूगोल का क्रम विकास– प्रारम्भिक युग, अर्न्तयुद्ध युग, युद्धोत्तर काल

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 आर्थिक भूगोल की परिभाषा

1.3.1 आर्थिक भूगोल की आधारभूत संकल्पना

1.4 आर्थिक भूगोल का विषय क्षेत्र

1.5 आर्थिक क्रियायें

1.5.1 प्राथमिक उत्पादन

1.5.2 द्वितीयक उत्पादन

1.5.3 तृतीयक उत्पादन

1.6 आर्थिक भूगोल का क्रम विकास

1.6.1 प्रारम्भिक युग

1.6.2 अर्न्तयुद्ध काल

1.6.3 युद्धोत्तर काल

1.7 सारांश

1.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1.9 बोध प्रश्न

1.10 संदर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

आर्थिक भूगोल पृथ्वी तल पर मिलने वाली आर्थिक क्रियाओं की स्थानिक भूमिका का अध्ययन करता है। यह अध्ययन पृथ्वी पर मिलने वाले संसाधनों के वितरण की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण है। 19वीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के बढ़ते महत्त्व से सबसे पहले जर्मनी में आर्थिक भूगोल का प्रादुर्भाव हुआ। आर्थिक भूगोल का वास्तविक विकास 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक में प्रारम्भ हुआ, जब इसमें कृषि उत्पादन व व्यापार तथा प्राकृतिक पर्यावरण को विश्लेषित किया जाने लगा। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आर्थिक भूगोल की विषय–वस्तु संसाधनों के वितरण, उपभोग तथा संरक्षण तक सीमित न रहकर विश्वव्यापी हो गयी। आज दुनिया में आर्थिक गुटों के निर्माण से सम्पूर्ण विश्व आर्थिक मंच पर समन्वित हो रहा है तथा भूमण्डलीकरण जैसी प्रक्रियायें इसका महत्वपूर्ण कारण रही हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 21वीं शताब्दी में आर्थिक भूगोल में आर्थिक क्रियाओं के स्थानिक वितरण के साथ ही इनमें विद्यमान क्षेत्रीय विभिन्नताओं का अध्ययन उन पर पड़ने वाले पर्यावरणीय प्रभाव के सन्दर्भ में किया जा रहा है। वर्तमान समय में आर्थिक भूगोल में संविकास पर जोर दिया जा रहा है और मानव कल्याण के लिए विषय को समर्पित किया जा रहा है। इसलिए इसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने के लिए आर्थिक भूगोल में ही कई शाखायें विकसित हो गईं।

1.2. उद्देश्य

1. आर्थिक भूगोल की परिभाषा को समझ कर उसको अभिव्यक्त कर सकेगें।
2. आर्थिक भूगोल में अध्ययन का विषय क्षेत्र का जान सकेगें।
3. उत्पादन के विविध प्रकारों को समझ सकेगें।
4. आर्थिक भूगोल के विकास क्रम को समझ कर अभिव्यक्ति कर सकेगें।

1.3 आर्थिक भूगोल की परिभाशा

मानव एक क्रियाशील प्राणी है वह पृथ्वी तल पर अनेक परिवर्तन करता है। उसके द्वारा यह परिवर्तन भोजन, आवास, वस्त्र, रोजगार, शिक्षा और स्वास्थ्य के लिए किया जाता है। इसे हम आर्थिक क्रियाओं के अन्तर्गत रखते हैं। आर्थिक भूगोल मानव भूगोल की ही एक शाखा है। इसमें एक स्थान से दूसरे स्थान के बीच पायी जाने वाली आर्थिक क्रियाओं की भिन्नता का अध्ययन किया जाता है। आर्थिक भूगोल में मृदा, वनस्पति, जल संसाधन, जैव तत्त्व, खनिज, ऊर्जा आदि प्राकृतिक संसाधनों तथा शिकार, कृषि, मछली पालन, उद्योग, पशुपालन, परिवहन, संचार, व्यापार, वाणिज्य आर्थिक क्रियाओं तथा अन्य आर्थिक पक्षों एवं संगठनों के अध्ययन को शामिल करते हैं। इस प्रकार यह पृथ्वी तल की स्थानिक विभिन्नताओं का अध्ययन आर्थिक क्रियाओं के निर्धारण के रूप में सामने आता है। पृथ्वी का स्थल मण्डल मानव द्वारा आर्थिक क्रियाओं के सम्पादन की सुविधाएँ प्रदान करता है तथा इसकी प्रकृति बदलते ही आर्थिक क्रिया का स्वरूप बदल जाता है। जैसे मानव धरातल पर खनन एवं कृषि कार्य करता है लेकिन महासागरों एवं सागरों में मूलतः मत्स्यन करता है।

आर्थिक भूगोल हमें ऐसे प्राकृतिक संसाधनों की स्थिति, प्राप्ति और वितरण आदि से परिचित कराता है जिनके द्वारा वर्तमान में किसी देश की आर्थिक उन्नति हो सकती है। इसके द्वारा हमें पता चलता है कि किसी देश में पायी जाने वाली प्राकृतिक सम्पत्ति का किस विधि द्वारा और कहाँ तक और किस कार्य के लिए उपयोग किया जा सकता है। सामान्य तौर पर कहा जा सकता है कि भूगोल किसी राष्ट्र की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का निर्धारण करता है। जैसे किसी भी क्रिया की स्थापना के लिए उच्चावच्च, जलवायु, परिवहन, संचार, कच्चा माल इत्यादि आवश्यक तत्व होते हैं। इन सबका प्रभाव उसके विकास पर पड़ता है। इस प्रकार आर्थिक भूगोल में मानव के प्राथमिक एवं गौण व्यवसाय तथा क्रियाएँ, विश्व के औद्योगिक प्रदेश एवं उनके उद्योग, परिवहन के साधन, नगरों का विकास तथा व्यापार का विस्तृत विवेचन किया जाता है।

इस प्रकार आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत भूतल के विभिन्न प्रदेशों में आर्थिक विकास एवं गुणात्मक जीवन स्तर का अध्ययन सम्पूर्ण भौगोलिक वातावरण के सन्दर्भ में किया जाता है।

आर.ई.मर्फी के अनुसार– ''आर्थिक भूगोल मनुष्यों की जीविकोपार्जन की विधियों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पायी जाने वाली समानताओं और विषमताओं का अध्ययन है।''

रसडल ब्राउन के अनुसार– ''आर्थिक भूगोल, भूगोल विज्ञान की वह शाखा है जिसमें मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं पर पर्यावरण के प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।''

गोट्ज (GOTZ) के अनुसार– ''आर्थिक भूगोल विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में प्रकृति की वैज्ञानिक खोज करता है जिसका वस्तुओं के उत्पादन पर प्रत्यक्ष प्रभाव होता है।''

चिशोल्म (G. Chisholm) के अनुसार– ''आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत उन सभी भौगोलिक परिस्थितियों का वर्णन आता है जो वस्तुओं के उत्पादन, परिवहन तथा विनिमय को प्रभावित करती हैं। आर्थिक भूगोल का महत्त्व इस बात में है कि इसके द्वारा किसी प्रदेश के वाणिज्यिक विकास की दशा का ज्ञान हो जाता है और यह पता चलता है कि उस पर भौगोलिक दशाओं का क्या प्रभाव पड़ता है।''

प्रो. भाॅ. के अनुसार– ''आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत इन बातों का अध्ययन किया जाता है कि किस प्रकार मानव की विभिन्न जीविकोपार्जन क्रियाएं विश्व के उद्योगों, आधारभूत साधनों और औद्योगिक वस्तुओं की प्राप्ति के अनुरूप होती है।''

प्रो. जॉन्स (Prof. C.F. Jones) और डार्कनवाल्ड (Darkanwald) के अनुसार– ''आर्थिक भूगोल उत्पादक

व्यवसायों का अध्ययन करता है और यह बताने का प्रयास करता है कि क्यों कुछ प्रदेश विविध वस्तुओं के उत्पादन और निर्यात में अग्रणी है तथा कुछ दूसरे प्रदेश क्यों इन वस्तुओं के लिए महत्त्वपूर्ण तथा उपयोग में विशिष्ट स्थान बनाए हुए हैं।''

रूडॉल्फ वेटजेन्स (Rudolf Wetgens) के अनुसार– ''आर्थिक भूगोल (अ) पृथ्वी के विभिन्न प्रदेशों की संसाधनता तथा (ब) आर्थिक मानव की अन्योन्य क्रिया का अध्ययन है जिसमें मुख्य रूप से अन्योन्य क्रिया के तत्सम्बन्धी सार्थक परिणामों के वितरण की व्याख्या करता है।''

हंटिंगटन (E. Huntington) के भाब्दों में– ''मानव व्यवसाय, मानव दक्षता तथा मानव की आवश्यकताओं (जैसे, कला, धर्म, प्रशासन, शिक्षा एवं सभ्यता) के अन्य पक्षों पर भौगोलिक वातावरण के प्रभाव की सीमा का अध्ययन आर्थिक भूगोल में किया जाता है।''

हार्टशोर्न (Hartshorn) तथा अलेक्जेण्डर (Alexander) ने आर्थिक भूगोल की परिभाषा इस प्रकार की है, ''आर्थिक भूगोल पृथ्वीतल की क्रियाओं की स्थानिक विभिन्नताओं का अध्ययन करता है जो उत्पादन, विनिमय तथा वस्तुओं के उपभोग तथा सेवाओं से सम्बन्धित हैं।''

जॉन डब्ल्यू. अलेक्जेण्डर (John W. Alexander) के अनुसार– ''आर्थिक भूगोल भूतल पर धन के उत्पादन, विनिमय एवं उपभोग से सम्बन्धित मानव की आर्थिक क्रियाओं से उत्पन्न क्षेत्रीय विभिन्नताओं का अध्ययन करता है।''

एन.जी. पाउण्डस (N.G. Pounds) के अनुसार– ''आर्थिक भूगोल भूतल पर मानव की उत्पादक क्रियाओं के वितरण से सम्बन्धित है। ये उत्पादक क्रियाएं– प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक हैं।

जी.टी. रेनर (G.T. Renner) एवं अन्य विद्वानों के भाब्दों में, ''आर्थिक भूगोल मानव के आर्थिक क्रिया–कलापों के उपेक्षित पक्षों का अध्ययन है, जो वस्तुओं, स्थानों और उनके उत्पादन की दशाओं, परिवहन तथा उपयोग से सम्बन्धित हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्थिक भूगोल की प्रकृति को इन रूपों में देख सकते हैं–

1. आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत मानव की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। अतः मानव भूगोल के कारण ही भूगोल को सामाजिक विज्ञान में जगह दी गई जो कि कला और विज्ञान दोनों का ही मिला–जुला रूप होता है।
2. आर्थिक भूगोल में भू–क्षेत्रों के सम्बन्ध में आर्थिक तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है। अतः आर्थिक भूगोल में स्थानीय विभिन्नताओं को यथार्थ क्रमबद्ध तार्किक ढंग से स्पष्ट किया जाता है।
3. आर्थिक भूगोल का एकमात्र लक्ष्य केवल ज्ञान की प्राप्ति नहीं है बल्कि इसमें आर्थिक क्रियाओं व भौगोलिक प्रतिरूपों का अध्ययन सामाजिक कल्याण के उद्देश्य से किया जाता है।
4. आर्थिक भूगोल स्थानिक संघटन के कार्यात्मक स्वरूप का अध्ययन करता है।
5. आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित होने के कारण आर्थिक भूगोल मूलतः सामाजिक विज्ञान तो है ही परन्तु सामाजिक विज्ञान में भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध अर्थशास्त्र विषय से है।

1.3.1 आर्थिक भूगोल की आधारभूत संकल्पनायें

किसी भी विषय की मौलिक संकल्पनाओं का अर्थ है विषय का मूलभूत सिद्धान्त जिसे विषयक से अलग नहीं किया जा सकता है। यदि इनको विषय से अलग कर दिया जाय तो विषय का अस्तित्व ही समाप्त हो सकता है। किसी भी विषय का स्वरूप व्यक्त करने वाली कुछ एक मौलिक संकल्पनायें होती हैं। जो कि सिद्धांत अथवा परिभाषा से भिन्न होती हैं। आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत मृदा, जल, जैव तत्व, खनिज ऊर्जा आदि प्राकृतिक संसाधनों और आखेट मत्स्य पालन वनाद्योग, कृषि, पशुपालन, विनिर्माण उद्योग, परिवहन संचार, व्यापार, वाणिज्य आदि आर्थिक क्रियाओं तथा अन्य आर्थिक पक्षों एवं संगठनो के अध्ययन को सम्मिलित किया जाता है। आर्थिक भूगोल की मूलभूत संकल्पनायें निम्नलिखित हैं–

1. **आर्थिक क्रिया की संकल्पना**– जिस क्रिया द्वारा मनुष्य अपनी जीविका अर्जित करता है आर्थिक क्रिया

कहलाती है, जो कि व्यवसाय के समान होती है। मनुष्य जीविकोपार्जन हेतु सभ्यता के प्रारम्भ से ही विभिन्न क्रियायें करता आया है। जैसे– पाषाण काल में आखेट करना या जंगली उत्पादों को एकत्रित करना, फिर पशुपालन व कृषि कार्यों के बाद नगरीकरण व औद्योगिकीकरण आदि सब आर्थिक क्रियायें ही है। आर्थिक क्रियायें इस प्रकार हैं– 1. प्राथमिक, 2. द्वितीयक, 3. तृतीयक, 4. चतुर्थक।

2. **आर्थिक क्रियाओं की अवस्थिति की संकल्पना**– आर्थिक भूगोल में हम विभिन्न आर्थिक क्रियाओं की अवस्थिति का अध्ययन करते हैं। किसी स्थान विशेष पर अवस्थिति महत्त्वपूर्ण जैसे कृषि, उद्योग, व्यापार, परिवहन आदि की वॉनथ्यून का कृषि सिद्धान्त, वेबर का औद्योगिक सिद्धान्त, आर्थिक क्रियाओं की अवस्थिति का मौलिक सिद्धान्त है। इसके अतिरिक्त क्रास, हूबर, ईजार्ड आदि ने भी आर्थिक अवस्थिति को समझाया है।

3. **आर्थिक भू–दृश्य की संकल्पना**– यह आर्थिक भूगोल की प्रमुख संकल्पना है। किसी भी राज्य/प्रदेश की समस्त आर्थिक क्रियाओं के मिले–जुले स्वरूप को आर्थिक भू–दृश्य कहते हैं। किसी–किसी भू–दृश्य में 2 या अधिक क्रियाओं की प्रधानता होती है। जैसे– कृषि भू–दृश्य, व्यापारिक भू–दृश्य, औद्योगिक भू–दृश्य, परिवहन भूदृश्य आदि।

4. **आर्थिक विकास की संकल्पना**– निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर गति को विकास कहते हैं। जिसके सामाजिक, आर्थिक, भौतिक, राजनैतिक कई मानक होते हैं। आर्थिक विकास से अभिप्राय राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से है। आर्थिक विकास में बहुआयामी परिवर्तन होता है। यह आर्थिक वृद्धि से अलग क्योंकि आर्थिक वृद्धि में एक आयामी परिवर्तन होता है।

5. **संसाधन की संकल्पना**– संसाधन वे होते हैं जिनसे मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती हैं। दूसरे शब्दों में मानव जीवन की प्रगति, विकास तथा अस्तित्व संसाधनों पर ही निर्भर करता है। संसाधन मानव जीवन के लिए उपयोगी होते हैं लेकिन इनका उपयोग तकनीकी विकास, योग्यता और दक्षता पर निर्भर करता है। जिम्मरमैन ने कहा भी है ''संसाधन का अर्थ किसी उद्देश्य की प्राप्ति करना है, यह उद्देश्य व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति करता है।'' इस प्रकार संसाधन की निम्न विशेषताएँ सामने आती हैं–

   (i) उन वस्तुओं का उपयोग किया जा सके।

   (ii) वस्तुओं को उपयोगी और मूल्यवान बनाया जा सके।

   (iii) इससे उद्देश्यों की पूर्ति हो।

   (iv) दोहन की क्षमता और दक्षता हो।

6. **संसाधन प्रबंध या संरक्षण की संकल्पना**– संसाधन प्रबंध या संरक्षण एक–दूसरे के पूरक हैं। संसाधनों का ऐसा प्रबंध कि उनके अनुकूलतम उपयोग और अनावश्यक क्षति को रोका जा सके। संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग ही संसाधन संरक्षण है। इसमें जो वर्तमान सामाजिक–आर्थिक आवश्यकताओं तकनीकी ज्ञान, भावी उपयोगिता एवं आवश्यकता, पर्यावरण संरक्षण आदि को ध्यान में रखा जाता है।

7. **संपोषणीय विकास संकल्पना**– यह आर्थिक भूगोल की नवीन संकल्पना है जो 1980 के दशक में प्रकट हुई, जिसके अन्तर्गत भावी पीढी की आवश्यकता पूर्ति के बिना प्रभावित किये वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। इसका अर्थ ऐसे विकास से है जो मानवीय समाज की तात्कालिक आवश्यकताओं की ही पूर्ति न करे बल्कि भविष्य को भी ध्यान में रखकर विकास करे। इसे स्थायी विकास या सतत पोषणीय विकास भी कहते हैं।

8. **आर्थिक प्रदेश की संकल्पना**– समान प्रकार भू–दृश्यों वाला भू–भाग आर्थिक प्रदेश कहलाता है। आर्थिक प्रदेश ऐसे क्षेत्र होते हैं जहाँ आर्थिक–सामाजिक तथा विकास उत्पादन पद्धति में समानता होती है। इसमें आर्थिक भूदृश्य में समानता होती है।

9. **स्थानिक अन्तर्क्रिया की संकल्पना**–विभिन्न स्थानों के बीच वस्तुओं, विचारों एवं मनुष्यों की गतिशीलता को ही स्थानिक पारस्परिक क्रिया कहा जाता है।

10. **आर्थिक भूगोल की समय एवं क्षेत्रपरक संकल्पना**– आर्थिक क्रियाओं में पायी जाने वाली क्षेत्रीय भिन्नताओं का अध्ययन किया जाता है। समय के साथ–साथ प्रत्येक क्षेत्र या स्थान या प्रदेश की आर्थिक क्रियाओं के विकास में परिवर्तन होते हैं। यही कालिक परिवर्तन कहलाता है।

11. **भौगोलिक क्षेत्र और उसकी माप की परिकल्पना**–आर्थिक भूगोल में सापेक्षिक स्थिति का अध्ययन सबसे महत्त्वपूर्ण होता है। ज्योमितीय स्थिति उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं होती है।

1.4 आर्थिक भूगोल का विषय क्षेत्र

आर्थिक भूगोल की विभिन्न परिभाषाओं से हम जान चुके हैं कि आर्थिक भूगोल में प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरणीय दशाओं में आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। आर्थिक भूगोल में भौतिक, जैविक और सामाजिक–आर्थिक विज्ञान का अपना दर्शन पद्धति शास्त्र एवं कार्य क्षेत्र होता है। इसी प्रकार भूगोल में प्राकृतिक तथा मानव निर्मित तथ्यों का अध्ययन किया जाता है। इसके विषय क्षेत्र को परिभाषा और के आधार पर सीमांकित किया जा सकता है। आर्थिक भूगोल में भूतल पर मानवीय क्रियाओं द्वारा वस्तुओं के उत्पादन, विनिमय और उपभोग का अध्ययन करते हैं। इसके विषय क्षेत्र में मानव की आर्थिक गतिविधियों के वितरणों एवं उनके विभिन्न प्रतिरूपों की क्षेत्रीय विभिन्नताओं पर प्रकाश डालने वाले कारकों एवं प्रतिक्रियाओं को शामिल किया जा सकता है। इसके विषय क्षेत्र को निम्न तरीके से समझ सकते हैं–

(i) आर्थिक क्रियाओं के वितरण का अध्ययन

आर्थिक भूगोल के अध्ययन में आर्थिक क्रियाओं के वितरण प्रतिरूपों की सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। उदाहरण के लिए कृषि करना, मछली पकड़ना, खनन करना, उद्योग की स्थापना, परिवहन का विकास, व्यापार इत्यादि अपने स्पष्ट रूपों में सामने आती है।

(ii) प्राकृतिक संसाधनों का मूल्यांकन और उसकी मात्रा का निर्धारण

प्राकृतिक संसाधनों जैसे– जल, जंगल, जमीन, शक्ति एवं ऊर्जा संसाधन, खनिज संसाधन, पशु संसाधन इत्यादि का मूल्यांकन करके उसकी मात्रा का निर्धारण करता है।

(iii) अर्थव्यवस्था का वातावरण के साथ सम्बन्ध का अध्ययन

आर्थिक भूगोल में अर्थव्यवस्था तथा प्राकृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक वातावरण के साथ अन्तर सम्बन्धित है। इसमें अर्थतन्त्र पर पड़ने वाले प्रभाव से अन्य तन्त्र भी प्रभावित होते हैं और इसका प्रभाव पर्यावरण पर भी पड़ता है। इसीलिए पर्यावरण के साथ अर्थव्यवस्था का गहरा सम्बन्ध है।

(iv) स्थानिक विशेषताओं का अध्ययन

आर्थिक भूगोल में इन तथ्यों का अध्ययन किया जाता है कि कोई भी पदार्थ किसी स्थान विशेष पर ही क्यों पाया जाता है? उसके विकसित होने का क्या कारण है? उनकी विशेषतायें क्या हैं? और उनका स्थानीय लोगों से सम्पर्क का लाभ कितना मिला है? इत्यादि।

(v) मानवीय संसाधनों का मात्राकरण और सम्भावनायें

आर्थिक भूगोल में मानवीय संसाधन, उसकी संख्या, उसकी विशेषताएं, उनकी सम्भावनाओं का अध्ययन किया जाता है। इसके अलावा इन संसाधनों के गुणात्मक विकास हेतु प्रयास भी किया जाता है। लोगों में दक्षता को बढ़ाया जाता है। उन्हें कार्यकुशल बनाया जाता है।

(vi) आर्थिक भूगोल में आर्थिक क्रियाकलाप और प्रौद्योगिकी की अन्तःक्रिया का प्रादेशिक एवं कालक्रमिक भिन्नता के रूप में अध्ययन किया जाता है।

(vii) आर्थिक भूगोल में आर्थिक उन्नति स्तर, स्थानीय संगठन और प्रादेशिक नियोजन को भी शामिल किया जाता है।

इसके अलावा आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत निम्नलिखित विषयों को शामिल करके उसको मजबूत बनाया जाता है, जिसका विवरण इस प्रकार है–

1. प्राकृतिक संसाधन–

- स्थानिक स्थिति
- भूमि की बनावट या स्थलाकृति
- जलवायु सम्बन्धी दशायें
- मृदा एवं खनिज
- झीलें एवं तालाब
- वनस्पतियाँ एवं जीव जन्तु

2. मानवीय संसाधन–

- जनसंख्या वितरण एवं घनत्व
- जनांकिकीय विशेषतायें
- स्वास्थ्य एवं कार्यक्षमता
- सामाजिक कार्य क्षमता
- शिक्षा , प्रशिक्षण , शोध
- प्रौद्योगिकी

1.5 आर्थिक क्रियायें

आर्थिक भूगोल में आर्थिक क्रियाओं का भी अध्ययन किया जाता है। आर्थिक क्रियायें के अन्तर्गत उनका क्षेत्रीय वितरण, उत्पादन प्रक्रिया तथा कारकों का अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत मुख्यतः तीन प्रकार की उत्पादन क्रियायें आती है–

1.5.1 प्राथमिक उत्पादन

प्राथमिक उत्पादन में वे आर्थिक क्रियाये आती है जिनमें मनुष्य प्रकृति प्रदत्त संसाधनों को एकत्रित करसीधा उपयोग करता है। इस प्रक्रिया में संसाधनों के मूल स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है। इसके अन्तर्गत वन्य–वस्तु संग्रह, लकड़ी काटना, कृषि, मछली पकड़ना, पशुपालन, आखेट,उत्खनन आदि क्रियाये आती है।

1.5.2 द्वितीयक उत्पादन

प्रकृति से प्राप्त संसाधनों का जब मनुष्य अपने तकनीकि ज्ञान के द्वारा उसका स्वरूप बदल अधिक गुणवत्तापूर्ण और उपयोगी बना देता है तो यह प्रक्रिया द्वितीयक उत्पादन कहलाती है।वस्तु निमार्ण उद्योग एवं निमार्ण कार्य इसमें शामिल है। रेशे से वस्त्र निमार्ण, लौह अयस्क से इस्पात निमार्ण आदि द्वितीयक उद्योग के उदाहरण है।

1.5.3 तृतीयक उत्पादन

तृतीयक उत्पादन में वे आर्थिक क्रियाये आती है जो प्राथमिक एवं द्वितीयक उत्पादन को सेवा प्रदान करती है। प्राथमिक एवं द्वितीयक उत्पादन से प्राप्त वस्तुओं को बाजार के माध्यम से उपभोक्ता तक पहुंचाने का कार्य तृतीयक उत्पादन के अन्तर्गत आता है।व्यापार एवं वाणिज्य परिवहन एवं संचार, शिक्षा एवं प्रशासन, चिकित्सा एवं विधि सेवायें आदि तृतीयक उत्पादन के अन्तर्गत आता है।

1.6 आर्थिक भूगोल का विकास

आर्थिक भूगोल समय के साथ बदलता रहा है, अपनी विकासशील विशेषताओं के कारण आर्थिक भूगोल को समझने के लिए उसके विकास क्रम का ज्ञान आवश्यक है और इसका क्रमबद्ध अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है। आर्थिक भूगोल के वर्तमान स्वरूप का विकास एवं विषय क्षेत्र का विस्तार मुख्य रूप से 20वीं शताब्दी में ही हुआ है। इसका वर्तमान स्वरूप जो दिखाई पड़ता है वह मनुष्य के आर्थिक कार्यों के विस्तार एवं जटिलताओं से जुड़ा हुआ है। यही कारण है इसकी परिभाषाओं में परिवर्तन होता रहा है। आर्थिक भूगोल के विकास प्रमुख 3 चरणों में रखकर देखा जा सकता है–

1. प्रारम्भिक युग
2. अर्न्तयुद्ध काल
3. युद्धोत्तर काल

1.6.1 प्रारम्भिक युग

औद्योगिक क्रान्ति के शुरूआत से मानव के आर्थिक कार्यों में व्यापक परिवर्तन हुए। 19वीं सदी के खत्म होते–होते औद्योगीकरण तेजी से हुआ जिसके फलस्वरूप आर्थिक क्रियाकलाप में तेजी आयी और इसी समय आर्थिक भूगोल स्वतन्त्र विषय के रूप में सामने आया।

आर्थिक भूगोल का सबसे पहले उद्‌भव वाणिज्य भूगोल के रूप में हुआ। जी.सी. चिजोल्म ने 1839 में वाणिज्य भूगोल पर एक पुस्तक लिखी। 1862 में एण्ड्री (Andree) की ''विश्व व्यापार का भूगोल'' पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें विभिन्न देशों के व्यापार सम्बन्धी आँकड़ों एवं तथ्यों का सम्बन्ध था। इससे यूरोप में व्यापार का महत्त्व बढ़ने लगा। 1862 में जर्मनी के गोट्ज (Gotz) ने सबसे पहले आर्थिक भूगोल शब्द का प्रयोग किया और इस पर पुस्तक लिखी और इन्हें आर्थिक भूगोल का जनक कहा जाता है। इस तरह आर्थिक भूगोल का स्वतंत्र अस्तित्व सामने आया। इन्होंने आर्थिक भूगोल की निम्न परिभाषाएँ दी हैं–

''आर्थिक भूगोल में विश्व के विभिन्न भागों की प्राकृतिक विशेषताओं का वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है ये परिभाषा 'रसडल' की मान्यताओं पर आधारित रही, फिर भी इसमें विभिन्न भागों की प्राकृतिक विशेषताओं और आँकड़ों के संग्रह पर जोर दिया गया है। इसी समय ब्रिटेन में, चिशोम (हैण्ड बुक ऑन कॉमर्शियल ज्योग्राफी) तथा अमेरिका में 'डी.एम. स्मिथ' आदि में वाणिज्य भूगोल को ही प्रोत्साहित करते रहे, पहले विश्व युद्ध तक लगभग यही स्थिति बनी रही।

1.6.2 अर्न्तयुद्ध काल

इस काल में आर्थिक भूगोल वाणिज्य भूगोल से अलग हो गया। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रवाह में बाधा पड़ी। इसके फलस्वरूप औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों के कच्ची सामग्री के नए उत्पादन स्रोतों की ओर ध्यान देना पड़ा। इससे गोट्ज के आर्थिक भूगोल की मान्यता बढ़ी और अब उत्पादन पर ध्यान दिया जाने लगा।

20वीं शताब्दी के पश्चात् नियतिवाद के स्थान पर सम्भववाद के सिद्धान्त को मान्यता मिली और भूगोल में मानवीय पक्ष को महत्त्व मिलने लगा। इसमें पृथ्वी और मानव के सम्बन्ध को नए ढंग से स्थापित करने का प्रयास किया गया। 1925 के बाद आर्थिक भूगोल के अध्ययन में तीव्रता आयी, अमेरिका में कार्ल सावर एवं जर्मनी में अल्फ्रेड हैटनर के प्रभाव में भूगोल को क्षेत्रीय विश्लेषण के रूप में स्थापित किया गया। इसी समय आर्थिक भूगोल (Economy Geography) नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। 'व्हिटलसी' ने विश्व के लिए प्रदेशों का सीमांकन किया, द्वितीय विश्व युद्ध तक प्राथमिक उत्पादन का भी विशेष अध्ययन होता रहा। ब्राउन ''आर्थिक भूगोल का वह पहलू है जिसके अन्तर्गत वातावरण (जैविक व अजैविक) के द्वारा मानवीय क्रिया कलापों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।''

1.6.3 युद्धोत्तर काल

इस काल में दुनिया के लगभग सारे देश औपनिवेशिक काल से मुक्त हो चुके थे। इसके फलस्वरूप

उत्पादन की नयी प्रणाली का विकास हुआ, औद्योगीकरण और विनिर्माण का तेजी से विकास प्रारम्भ हो गया। इसके परिणाम स्वरूप व्यापार एवं परिवहन का भी विकास हुआ। 1950 के दशक के मध्य से प्रत्यक्षवाद के प्रभाव में भूगोल को अधिक वैज्ञानिक बनाने में सांख्यिकीय विधियों तथा मॉडल निर्माण का प्रयोग बढ़ने लगा। साथ ही साथ औद्योगिक उत्पादन की कुशलता भी बढ़ने लगी। 1970 के दशक तक विकसित देशों में आर्थिक विकास के मार्ग पर तेजी से बढ़ने की होड़ लगी रही। इसके परिणाम स्वरूप विश्व के प्राकृतिक संसाधनों पर बहुत अधिक दबाव पड़ने लगा। इस समय आर्थिक भूगोल की परिभाषाएं इस प्रकार रही–

1. R.E. Murphy- ''आर्थिक भूगोल मनुष्य के जीविकोपार्जन की विधियों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर मिलने वाली समानता एवं विषमता का अध्ययन करता है।''

2. C.F. Jones- ''आर्थिक भूगोल उत्पादक व्यवसायों का अध्ययन करता है, कुछ प्रदेश विशेष क्यों विविध, वस्तुओं के उत्पादन तथा निर्यात में अग्रणी है तथा क्यों कुछ दूसरे प्रदेश इन वस्तुओं के आयात तथा उपभोग में प्रमुख हैं इसकी व्याख्या करता है। इस काल की परिभाषाओं को विकसित बनाने में हैटनर, हार्टशोर्न, अलेक्जेण्डर आदि प्रमुख थे।''

आधुनिक काल में आर्थिक विकास की प्रक्रिया में विभिन्न देशों के अर्थतन्त्र में व्यापक संरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं। इस समय जटिल सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग होने लगा, साथ ही औद्योगिक उत्पादन की तकनीकी कुशलता भी बढ़ने लगी। इसके परिणामस्वरूप बड़ी मात्रा में उत्पादक तथा उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण होने लगा। इसी समय निर्वनीकरण, मृदा समस्याएँ, प्रदूषण, ओजोन परत का क्षरण एवं मरुस्थलीय करण की समस्याएँ सामने आने लगी। अंधाधुन्ध आर्थिक विकास की सार्थकता पर प्रश्न खड़े होने लगे। अतः भूगोलवेत्ता संसाधन संरक्षण सतत विकास जैसे आर्थिक मॉडलों की ओर आगे बढ़ा, स्मिथ के शब्दों में भूगोल कौन, कहाँ, क्या पता है, का अध्ययन करने वाला विषय बन गया। डी0एम0 स्मिथ, ''आर्थिक भूगोल आर्थिक प्रक्रियाओं की स्थानिक अभिव्यक्ति का अध्ययन है जो वैकल्पिक स्थानों में वैकल्पिक उद्देश्यों हेतु संसाधनों का आबंटन करता है।'' इसी को ध्यान में रखते हुए रूसी भूगोलवेत्ता साउस्किन की परिभाषा इस प्रकार है, ''आर्थिक भूगोल का गहरा सम्बन्ध क्षेत्रीय, सामाजिक आर्थिक तन्त्र से है।'' प्रो0 बुकानन, ''आर्थिक भूगोल में मानव के आर्थिक प्रयत्नों का उसके निवास स्थान के सम्बन्ध में अध्ययन करते है।'' प्रो0 ए0दास0 गुप्ता, ''मानव की आर्थिक क्रियाओं पर प्राकृतिक परिस्थितियों के प्रभाव का अध्ययन आर्थिक भूगोल कहलाता है।''

मात्रात्मक क्रान्ति से उत्पन्न असंतुष्टि के चलते 1970 के बाद मानव एवं आर्थिक भूगोल में अनेक दार्शनिक विचारधाराओं का सम्बन्ध लोगों के सामाजिक कल्याण में विभिन्न पक्षों से जुड़ा हुआ है जिसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, रोजगार आदि शामिल हैं। क्रांतिकारी विचारधारा ने निर्धनता के कारण बंधन और सामाजिक असमानता के लिए मार्क्स को आधार माना था। व्यवहार के अनुसार मनुष्य आर्थिक क्रियाएँ करते समय हमेशा आर्थिक लाभ का ही विचार नहीं करता बल्कि वह यथार्थ पर्यावरण से जुड़ता चला जाता है। आर्थिक विचारों में बदलाव आंशिक रूप से विश्लेषण के मापदण्डों में परिवर्तन के कारण आते हैं। 21वीं शदी में आर्थिक भूगोल में सामान्य निकाय सिद्धान्त तथा मानवीय दशाओं की व्याख्या करने वाले वैश्विक सिद्धांतों की उपयोगिता पर प्रश्न चिन्ह उठने लगे। वर्तमान समय में स्थानीय संदर्भ की समझ के महत्त्व पर जोर दिया जा रहा है।

अतः स्थानीय के लिए मुखरता (Vocal for Local) की बात सामने आ रही है। 21वीं सदी का आर्थिक भूगोल एक स्वस्थ, समृद्ध और सामंजस्यपूर्ण दुनिया की माँग कर रहा है। इसमें तकनीकी दक्षता, जैव प्रौद्योगिकी और सूचना प्रौद्योगिकी से सब कुछ बदलने का प्रयास किया जावेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज के उदारीकरण, निजीकरण, भूमण्डलीकरण के युग में विश्व आपस में वैश्विक गाँव के रूप में बदल गया है और उसकी आर्थिक क्रियाएँ भी एक–दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इन परिभाषाओं से आर्थिक भूगोल का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। आज आर्थिक भूगोल न केवल विभिन्न आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करने लगा है बल्कि उसके प्रभावों तथा पर्यावरण संरक्षण, सतत विकास जलवायु परिवर्तन को भी अपने अध्ययन में शामिल कर लिया है।

1.7 सारांश

आज के दौर में आर्थिक भूगोल एक गन्यात्मक विषय बन गया है। एक ओर जहाँ आर्थिक भूगोल में

संसाधनों और उसके वितरण का अध्ययन किया जाता है। वहीं दूसरी ओर संसाधनों के संरक्षण, उपभोग, उद्योग, व्यापार, संचार, बाजार, परिवहन, आर्थिक क्रियाओं का भी अध्ययन किया जाता है। आर्थिक भूगोल में कच्चे मालों, तैयार मालों के उत्पादन तथा उसके व्यापार का भी अध्ययन होता है। इस अध्याय में इन्हीं सब बातों की जानकारी प्राप्त होती है। आज आर्थिक भूगोल का क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है। इसीलिए आर्थिक भूगोल विकसित होता जा रहा है और उसकी परिभाषाओं में भी परिवर्तन हो रहा है।

1.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. आर्थिक भूगोल की आधारशिला रखने का श्रेय किस विद्वान को जाता है

   अ. कार्लसावर   ब. गोट्ज

   स. हेटनर   द. रेटजेल

2. आर्थिक भूगोल का अध्ययन प्रारम्भ हुआ था

   अ. 17वीं शताब्दी   ब. 18वीं शताब्दी

   स. 19वीं शताब्दी   द. 20 वीं शताब्दी

3. प्राथमिक उत्पादन में कौन से आर्थिक क्रियाएं नहीं आती है

   अ. आखेट   ब. परिवहन एवं संचार

   स. कृशि   द. खनन

1.9 बोध प्रश्न

1. आर्थिक भूगोल की परिभाषा एवं विषय क्षेत्र की विवेचना कीजिए।
2. आर्थिक भूगोल के विकास क्रम की व्याख्या कीजिए।
3. आर्थिक भूगोल के उपागमों का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न का उत्तर

1. ब 2. स 3. ब

1.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. सिंह, जगदीश, एवं सिंह, के.एन.(2010) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।
2. मौर्य, एस. डी. (2022), आर्थिक भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
3. श्रीवास्तव, वी.के. एवं राव, बी.पी. (2002), आर्थिक भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
4. गौतम, अलका, (2019) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
5. अलेक्जेंडर, जे.डब्लू. (1979) इकोनॉमिक ज्योग्राफी, प्रेंटिस हाल,
6. लांगमैन, जी.सी. एण्ड मार्गन, जी.सी. (1982) हयूमन एण्ड इकोनॉमिक ज्योग्राफी,आक्सफोर्ड प्रेस.

इकाई–02 आर्थिक भूगोल एवं अर्थशास्त्र, अध्ययन के उपागम– सामान्य विशय वस्तु,प्रादेशिक उपागम, सैद्वान्तिक उपागम, आर्थिक भूगोल के अध्ययन की विधियाँ

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 आर्थिक भूगोल एवं अर्थशास्त्र

2.4 अध्ययन के उपागम

2.4.1 क्रतबद्ध उपागम

2.4.2 प्रादेशिक उपागम

2.4.3 सैद्धान्तिक उपागम

2.4.4 संसाधन–उपयोग–प्रक्रिया उपागम

2.4.5 तन्त्र विश्लेषण उपागम

2.4.6 व्यवहारपरक उपागम

2.4.7 कल्याणपरक उपागम

2.5 आर्थिक भूगोल की अध्ययन की विधियाँ

2.6 सारांश

2.7 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

2.8 बोध प्रश्न

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

2.1 प्रस्तावना

आर्थिक भूगोल घनिष्ठ रूप से अर्थशास्त्र से जुड़ा हुआ है।अर्थशास्त्र में वस्तुओं का उत्पादन, वितरण और उपभोग का अध्ययन किया जाता है तथा आर्थिक भूगोल इनका अध्ययन स्थान के संदर्भ में करता है। आर्थिक भूदृश्यों का विश्लेषण आर्थिक भूगोल में अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित मॉडलों एवं सिद्वान्तों का उपयोग कर किया जाता है। आर्थिक भूगोल का अध्ययन विभिन्न उपागमों के द्वारा किया जाता है।

2.1 उद्देश्य

1. आर्थिक भूगोल और अर्थशास्त्र के साथ समानताओं को समझेंगे।
2. आर्थिक भूगोल के अध्ययन के उपागम एवं विधियों को जानेंगे।
3. आर्थिक भूगोल की अध्ययन विधियों को समझ कर अभिव्यक्त कर सकेंगे।

2.3 आर्थिक भूगोल एवं अर्थशास्त्र

आर्थिक भूगोल का विकास भूगोल की एक प्रमुख शाखा के रूप में हुआ है जिसकी गणना सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत की जाती है। विभिन्न सामाजिक विज्ञान मानव की विभिन्न क्रियाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण स्वस्व विषयानुकूल करते हैं। विभिन्न सामाजिक पक्षों के विकास में आर्थिक कारकों का महत्वपूर्ण योगदान पाया जाता है। अतः आर्थिक भूगोल का विभिन्न सामाजिक विज्ञानों विशेष रूप से अर्थशास्त्र से घनिष्ट सम्बन्ध पाया

जाता है।

एडम स्मिथ आदि परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र को धन की व्याख्या करने वाला विज्ञान बताया है। उनके अनुसार अर्थशास्त्र यह विज्ञान है जो धन का अध्ययन करता है। इनके अनुसार अर्थशास्त्र का अध्ययन केवल इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि सामान्य जनता द्वारा किस प्रकार धनोपार्जन किया जाता है और किस प्रकार उनका व्यय किया जाता है।

राबिन्श (1932) ने अर्थशास्त्र की कल्याण मूलक परिभाषाओं की कठोर आलोचना करते हुए बताया कि अर्थशास्त्र उन समस्याओं का अध्ययन करता है जो साधनों की सीमितता के कारण उत्पन्न होती हैं। प्रकृति प्रदत साधन सीमित होने के कारण मानव जाति की समस्त आवश्यकताओं और साधनों के चुनाव की समस्या उत्पन्न होती है। इसी चुनाव की समस्या का अध्ययन अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है। चुनाव की समस्या उत्पन्न होने के प्रमुख कारण हैं–

1. मानवीय आवश्यकताओं का असीमित होना
2. साधनों का सीमित होना
3. साधनों के वैकल्पिक उपयोग की संभावना
4. आवश्यकताओं की तीव्रता में अन्तर का पाया जाना

जहाँ एक ओर मार्शल ने अर्थशास्त्र को सामाजिक विज्ञान बताया है वहीं दूसरी ओर राबिन्श ने इसे मानव विज्ञान माना है। मानव विज्ञान के रूप में अर्थशास्त्र सभी व्यक्तियों की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करता है चाहे ये समाज के सदस्य हो अथवा न हो।

अर्थशास्त्र के अन्तर्गत मनुष्य की सामान्य आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। अर्थशास्त्र की विषयवस्तु को मुख्यतः 5 वर्गों में विभाजित किया जाता है–

1. उपभोग
2. उत्पादन
3. विनिमय
4. वितरण
5. राजस्व

आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत इन सभी आर्थिक वर्गों का अध्ययन स्थान या क्षेत्र के सन्दर्भ में किया जाता है। वर्तमान समय में किसी प्रदेश को वस्तु विशेष के उत्पादन, वितरण, विनिमय तथा उसके आर्थिक विकास पर उस क्षेत्र या उसके समीप स्थित क्षेत्रों की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा पर्यावरणीय दशाओं का ही नहीं बल्कि विश्व के अन्य भागों में उस वस्तु के उत्पादन एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक परिस्थितियों का भी प्रभाव पाया जाता है। इस प्रकार के आर्थिक सम्बन्ध अर्थशास्त्र और आर्थिक भूगोल के पारस्परिक सम्बन्धों को व्यक्त करते हैं।

2.4 आर्थिक भूगोल के उपागम

आर्थिक भूगोल की अध्ययन विधियों एवं उपागम का तात्पर्य यह है कि विषय का अध्ययन किन–किन तरीकों एवं आधारों पर किया जा रहा है।

आर्थिक भूगोल की विषय सामग्री में विविधता एवं गत्यात्मकता है। इसकी विषय सामग्री को कई रूपों में देखा एवं विश्लेषित किया जाता है। विषय विश्लेषण के इस दृष्टिकोण को ही उपागम (Approache) या अध्ययन की विधिकहा जाता है। विषय की गत्यात्मक प्रवृत्ति होने के कारण इसके अध्ययन की उपागमों एवं विधियों में परिवर्तन होता रहा है।

2.4.1 क्रमबद्ध उपागम (Systematic Approach)

क्रमबद्ध उपागम के अन्तर्गत किसी भी वस्तु एवं तत्त्व (Phenomenon) विशेष के विश्व वितरण सम्बन्धी सामान्य विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है। ये तत्त्व प्राकृतिक, गैर प्राकृतिक अथवा इनका अन्तर्सम्बन्धित समुदाय हो सकता है। क्रमबद्ध उपागम में प्रत्येक तत्व का अलग–अलग अध्ययन होता है एवं उसके विश्व वितरण प्रतिरूप का विश्लेषण करते हैं। कृषि एवं औद्योगिक उत्पादों के प्रतिरूपों के अध्ययन को वस्तुपरक उपागम (Commodity Approach) कहा जाता है, क्योंकि इसमें अलग–अलग पदार्थों (Commoditiė) का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। इस उपागम का आर्थिक भूगोल के अध्ययन में काफी महत्त्व है।क्रमबद्ध एवं वस्तुपरक अध्ययनों का क्षेत्र सम्पूर्ण विश्व होता है। वास्तव में तत्त्वों के वितरण के प्रतिरूप के आधार पर इस उपागम में भी प्रदेश बनाये जाते हैं। इसे इस तरह कह सकते हैं कि क्रमबद्ध उपागम के तत्वों की प्रादेशिक विभिन्नता का विश्लेषण किया जाता है।

2.4.2 प्रादेशिक उपागम (Regional Approach)

प्रादेशिक उपागम द्वारा किसी प्रदेश को अध्ययन की एक इकाई मानकर उसके सम्पूर्ण संसाधनों का वितरण प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरणार्थ, भारत को संसाधन अध्ययन की इकाई मानने पर उसमें खनिज व शक्ति संसाधनों, जैविक संसाधनों, कृषि फसलों, जल एवं मृदा संसाधनों के मानवीय उपयोग तथा जनसंख्या का क्रमबद्ध (प्रकरणात्मक) अध्ययन किया जायेगा। अध्ययन की प्रादेशिक विधि भूगोल के साथ आर्थिक भूगोल में भी काफी महत्त्वपूर्ण रही है एवं आर्थिक भूगोल के प्रारम्भिक युग में प्रादेशिक उपागम का अधिक उपयोग होता था।

प्रादेशिक अध्ययनों में विश्लेषण मात्र एक क्षेत्र तक ही होता है परन्तु यह विश्लेषण एक तत्त्व का न होकर सम्पूर्ण आर्थिक भू–दृश्य का होता है। सामान्यतः ऐसे अध्ययन में एक ही अंग की दशाओं का विश्लेषण होता है, लेकिन कभी–कभी प्रादेशिक विशिष्टता एवं असन्तुलन सम्बन्धी अध्ययनों में कई क्षेत्रों पर भी विचार किया जाता है। कभी–कभी प्रादेशिक अध्ययनों में सभी विषयों को नरखकर एक वस्तु का अध्ययन किया जाता है जिसे वस्तुपरक प्रादेशिक अध्ययन (Commodity Regional Study) कहा जाता है।

स्पष्टतया कहा जा सकता है कि प्रादेशिक उपागम में सर्वप्रथम, सम्पूर्ण विश्व को कुछ प्रदेशों में विभाजित करने का प्रयत्न किया जाता है उसके बाद प्रत्येक प्रदेश में सभी तत्त्वों के वितरण एवं उनके अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है। क्रमबद्ध या प्रादेशिक उपागम को सम्मिलित रूप से वितरणात्मक या संस्थागत अध्ययन पद्धति कहा जाता है। (चित्र–1)

क्रमबद्ध	प्रादेशिक उपागम				
उपागम	चीन	भारत	इण्डोनेशिया	बांग्लादेश वियतनाम	थाइलैण्ड
गेहूँ					
चावल					
मक्का					
गन्ना					
चाय					
कहवा					

विश्व में चावल उत्पादन : प्रादेशिक अध्ययन   भारत का कृषि भूगोल : क्रमबद्ध अध्ययन

चित्र–1 : क्रमबद्ध बनाम प्रादेशिक उपागम

2.4.3 सैद्धान्तिक उपागम (Theoretical Approach)

आर्थिक भूगोल को अधिक वैज्ञानिक बनाने की इच्छा रखने वाले भूगोलवेत्ताओं का मत है कि क्षेत्रीय विभिन्नता को स्पष्ट करने के लिये आर्थिक कार्यों के स्थानीयकरण सम्बन्धी सिद्धान्त (Theories of Location)

तथा नियम विकसित करना अधिक उचित होगा। इसके प्रतिपादन में प्रादेशिक उपागम अक्षम है इसी कारण सैद्धान्तिक उपागम में कृषि, उद्योग आदि के स्थानीयकरण, उसके वर्गीकरण तथा वितरण की व्याख्या के नियम एवं सिद्धान्तों को बनाने पर जोर दिया जाता है। मॉडल भी इसकी एक आवश्यकता है।

सैद्धान्तिक भूगोलवेत्ता स्थानीयकरण की व्याख्या में चरों (Variable) के साहचर्य (Combination) पर विशेष जोर देते हैं एवं स्थानीयकरण के कारणों पर कम ध्यान देते हैं। सैद्धान्तिकरण में गणितीय एवं सांख्यिकी पद्धतियों का उपयोग अधिक हुआ है। अल्फ्रेड वेबर का औद्योगिक अवस्थिति सिद्धान्त, वॉन थ्यूनेन का कृषि अवस्थिति सिद्धान्त एवं क्रिस्टालर का केन्द्रीय स्थान सिद्धान्त आदि मॉडल प्रमुख हैं, जिनका आर्थिक भूगोल में प्रयोग होता है। सैद्धान्तिक उपागम से अध्ययन में एक आदर्श स्थिति की कल्पना की जाती है।

2.4.4 संसाधन–उपयोग–प्रक्रिया उपागम (Resources Use Process Approach)

स्पेंसर नामक आर्थिक भूगोलवेत्ता ने आर्थिक भूगोल के अध्ययन पर एक अन्य उपागम संसाधन उपयोग–प्रक्रिया उपागम बताया। उनके अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी के संसाधन उपयोग हेतु प्रक्रियाओं को दो मूलभूत वर्गों में रखा जा सकता है–

(अ) वे प्रक्रियाएँ जो संसाधन उपयोग से सम्बन्धित हैं तथा

(ब) वे प्रक्रियाएँ जो तत्त्वों के क्षेत्रीय या स्थितिक अन्तराल (Intervening Space) को समाप्त करने से सम्बन्धित हैं।

2.4.5 तन्त्र–विश्लेषण उपागम (System Analysis Approach)

इसमें किसी अर्थतन्त्र के क्षेत्रीय संगठन का ज्ञान प्राप्त करने के लिये अधिक कार्यों की अन्योन्याश्रितता (Interdependence) तथा समग्रता पर विशेष बल दिया जाता है। वास्तव में प्रणाली या तन्त्र का एक समूह होता है जिसमें तत्त्व एवं उनसे सम्बद्ध विशेषतायें परस्पर अन्तर्सम्बन्धित व आश्रित होती हैं। हॉल (Hall) एवं हैगेन (Hagen) के अनुसार तन्त्र, तत्त्वों का एक समूह है जिसमें तत्त्व एवं उनसे सम्बद्ध विशेषतायें परस्पर अन्तर्सम्बन्धित होती हैं। (System is a set of objects together with the relationship between the objects and their attributes) ल्यूडवीग वॉन बेस्टालेन्फी ने सन् 1951 में सामान्य तन्त्र सिद्धान्त (General Systems Theory) का प्रतिपादन किया था जिससे प्रभावित होकर सन् 1966 में हॉल व हैगन ने प्रणाली उपागम के महत्त्व पर प्रकाश डाला।

2.4.6 व्यवहारपरक उपागम (Behavioural Approach)

इसे आचारपरक उपागम भी कहा जाता है। मानव भूगोल की अन्य प्रमुख शाखाओं की भाँति आर्थिक भूगोल में भी व्यवहारपक उपागम का विशिष्ट स्थान है। यह भूगोल में प्रयुक्त एक नूतन उपागम है जिसका प्रयोग 1980वें दशक से होने लगा है। भौगोलिक अध्ययनों में व्यवहारपरक उपागम के बढ़ते प्रयोग से भूगोल में एक क्रांतिकारी एवं गुणात्मक परिवर्तन का सूत्रपात हुआ है। इस अध्ययन विधि में मानव व्यवहार को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता हैऔर तथ्यों के विश्लेषण में मनुष्य के व्यक्तिगत तथा सामूहिक आचरण (व्यवहार) को प्राथमिकता प्रदान की जाती है। अध्ययन की इस विधा में यह खोज करने का प्रयत्न किया जाता है कि किसी कार्य के करने या न करने में अथवा क्षेत्र विशेष के आर्थिक–सामाजिक विकास में मनुष्य के निर्णय को उसका व्यक्तिगत या सामूहिक व्यवहार किस प्रकार और किस सीमा तक प्रभावित करता है।

उदाहरण के लिए एशियाई देशों में निर्वाहमूलक कृषि और अमेरिकी देशों की व्यापारिक कृषि के विश्लेषण में दोनों प्रदेशों के मनुष्य के दृष्टिकोणों, सामाजिक–आर्थिक दशाओं, मान्यताओं आदि को समझना अत्यंत आवश्यक है। इसी प्रकार प्राकृतिक वनों तथा पशुओं के प्रति जनता के व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में ही वन प्रदेशों का भौगोलिक अध्ययन सफल हो सकता है। पाश्चात्य विकसित देशों के आर्थिक विकास में भौतिकवादी दृष्टिकोण को प्रबलता का प्रमुख हाथ है जबकि ईश्वरवादी या भाग्यवादी एशियाई देश विकास की दौड़ में पीछे रह गये हैं।

2.4.7 कल्याण परक उपागम (Welfare Approach)

कल्याणपरक उपागम मानव–पर्यावरण की ऐसी अन्तक्रिया पर बल देता है जिससे किसी प्रदेश या क्षेत्र के निवासी जनों की प्रमुख आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहे और वहाँ का पर्यावरण संतुलन भी बना रहे। इस उपागम के अंतर्गत विभिन्न प्रकार की मानवीय सुविधाओं यथा प्रतिव्यक्ति आय, आवास, पेय जल, शिक्षा, स्वास्थ्य,

सफाई, मनोरंजन आदि की सुविधाओं के वितरण में सामाजिक तथा प्रादेशिक न्याय के सिद्धांत पर विशेष बल दिया जाता है।

2.5 आर्थिक भूगोल के अध्ययन की विधियाँ

आर्थिक भूगोल के विषय वस्तु की विविधता एवं उद्देश्य के अनुरूप अधोलिखित अध्ययन विधियां अपनायी जाती है–

2.5.1 अवस्थिति तथा वितरण प्रतिरूप

भूगोल के अध्ययन में अवस्थिति एवं वितरण प्रतिरूप अत्यंत महत्वपूर्ण है। आर्थिक क्रियाकलाप के लिए वस्तुओं की अवस्थिति कहां है उसका वितरण प्रतिरूप कैसा है, इसका ज्ञान आवश्यक है। यदि जनसंख्या का अध्ययन करना हो तो सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि उसका वैश्विक एवं प्रादेशिक वितरण प्रतिरूप कैसा है। जनसंख्या का वितरण किन–किन क्षेत्रों में मिलता है और उनकी पारस्परिक स्थिति क्या है। जनसंख्या के वितरण में कोई तंत्र, क्रम या व्यवस्था पाया जा रहा है क्योंकि इन तीनों के समिश्र को ही वितरण प्रतिरूप कहां जाता है। वितरण प्रतिरूप से ही हमे वस्तु विशेष की मात्रा एवं प्रादेशिक भिन्नताकी पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है। वितरण प्रतिरूप के ही आधार पर स्थलों को क्षेत्र, इलाका, पेटी, खण्ड आदि का निर्धारण करते है।

2.5.2 विशेषतायें तथा विशिष्टतायें

आर्थिक भूगोल में तत्वों व वस्तुओं का स्थानिक प्रतिरूप समझने के लिए उनकी महत्वपूर्ण विशेषताओं एवं विशिष्टताओं अध्ययन आवश्यक होता है। इनमें तत्वों एवं वस्तुओं के विभिन्न पक्षों एवं प्रक्रियाओं की ओर ध्यान दिया जाता हैजो प्रादेशिक भिन्नता उत्पन्न करने के लिए सक्षम होते है। यदि फसलों का अध्ययन करना है तो उनके वितरण प्रतिरूप को जानने के बाद हम अमुक फसल किस प्रदेश में बोया जाता है, उसकी किस्में कौन–कौन सी है, उसकी उपज कितनी है, उत्पादन लागत कितनी आ रही है आदिविशेषतायें अर्थतन्त्र को प्रभावित करती है।

2.5.3 कार्य–कारण सम्बन्ध

किसी भी विषय के अध्ययन में कार्य–कारण सम्बन्ध बहुत महत्वपूर्ण होते है। इसमें उन अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है जो किसी आर्थिक तत्व के वितरण प्रतिरूप में मुख्य भूमिका अदा करते है।उदाहरणार्थ किसी फसल के विकास के लिए तापमान और वर्षा की मात्रा आदि की आवश्यकता होती है, जहां ये आदर्श परिस्थितियां पायी जाती है, वहां फसल का उत्पादन होगा परन्तु जहां यह परिस्थितियां नहीं पायी जायेगी वहां उनका उत्पादन सम्भव नहीं होगा। जैसे प्राकृतिक रबर के उत्पादन के लिए आदर्श दशाएं भूमध्यरेखीय एवं आस–पास के क्षेत्रों में ही पायी जाती है। इसलिए उनका उत्पादन भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में ही पाया जाता है। मध्य अक्षांशीय क्षेत्रों में रबर के उत्पादन हेतु आदर्श दशाएं नहीं पायी जाती इसलिए वहां इसका उत्पादन सम्भव नहीं है। जब तक रबर के उपयोग के बारे में हमें जानकारी नहीं थी तब तक भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में भी उसका उत्पादन नहीं होता था। परन्तु जब टायर पर चलने वाली गाड़ियों का प्रचलन बढ़ा तब टायर निर्मित करने के लिए रबर की मांग बढ़ी।

2.5.4 कार्यात्मक अन्तर्सम्बन्ध

किसी प्रदेश में आर्थिक तत्व, वस्तु एवं कार्य में कार्यात्मक अन्तर्सम्बन्ध पाया जाता है। किसी वस्तु के उत्पादन में परिवर्तन का सभी पर प्रभाव पड़ता है। यदि कोई एक तत्व समाप्त हो जाता है या उसके वितरण प्रतिरूप अथवा उसकी विशेषताएं परिवर्तित हो जाती है तो दूसरे तत्व में भी अन्तर्सम्बन्ध के कारण समान परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण स्वरूप यदि किसी क्षेत्र में बहुमूल्य खनिज प्राप्त हो जाता है तो उसके उत्खनन हेतु यातायात के साधन, मार्ग, नगर एवं अन्य व्यवसाय विकसित हो जाते है। परन्तु खनिज का भंडार खत्म होने पर अन्य सभी चीजे स्वतः समाप्त होने लगती है। इसी प्रकार से संयुक्त राज्य अमेरिका में मक्का की खेती एवं सुअर पालन में कार्यात्मक अन्तर्सम्बन्ध पाया जाता है। यदि सुअर का पालन बन्द हो जाय तो मक्का की खेती स्वतः कम हो जायेगी। इस प्रकार आर्थिक भूगोल के अध्ययन में कार्यात्मक अन्तर्सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

2.5.5 क्षेत्रीय अन्तर्सम्बन्ध

आर्थिक भूगोल में किसी प्रदेश के कृषि या औद्योगिक वस्तुओं का उत्पादनप्रतिरूप, वितरण, अवस्थिति एवं विशेषताओं में क्षेत्रीय अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है।इस अन्तर्सम्बन्ध में प्राकृतिक एवं मानवीय कारकों का भी प्रभाव पड़ता है। विश्व के अन्य भागों में भी उस वस्तु के उत्पादन में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ता है। क्षेत्रीय अन्तर्सम्बन्ध भी क्रियात्मक सम्बन्ध जैसा होता है परन्तु इसमें एक ही क्षेत्र के दो वस्तुओं अथवा कार्यों के क्रियात्मक सम्बन्ध की जगह दो क्षेत्रों के मध्य सम्बन्ध स्थापित होता है। किसी अर्थतंत्र में एक तत्व अथवा कार्य का विविध तत्वों से जटिल अन्तर्सम्बन्ध होता है। जिसका विश्लेषण आर्थिक भूगोल में सांख्यकीय विधियों का उपयोग कर किया जाता है।

2.6 सारांश

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आर्थिक भूगोल की अध्ययन विधियों के माध्यम से यह जानकारी मिलती है कि आर्थिक भूगोल के अध्ययन के तरीके क्या—क्या हो सकते हैं। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की आर्थिक क्रियाओं के वितरण प्रतिरूपों तथा उन कारकों एवं प्रक्रमों का अध्ययन किया जाता है जो भूतल पर भिन्नता को दर्शाते हैं। इसी प्रकार आर्थिक भूगोल और अर्थशास्त्र में घनिष्ट सम्बन्ध है दोनों ही विषय अर्थ का अध्ययन करते हैं। आर्थिक भूगोल में जितनी भी वस्तुओं, संसाधनों का अध्ययन करते उनका परिप्रेक्ष्य भूमण्डलीकृत ही है। क्योंकि इसमें भेदभाव रहित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है।

2.7 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

2.8 बोध प्रश्न

1. आर्थिक भूगोल की अध्ययन विधियों की विवेचना कीजिए।
2. आर्थिक भूगोल का अर्थशास्त्र से सम्बन्धों को बताइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न का उत्तर

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. सिंह, जगदीश, एवं सिंह, के.एन.(2010) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।
2. मौर्य, एस. डी. (2022), आर्थिक भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
3. श्रीवास्तव, वी.के. एवं राव, बी.पी. (2002), आर्थिक भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
4. गौतम, अलका, (2019) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
5. अलेक्जेंडर, जे.डब्लू. (1979) इकोनॉमिक ज्योग्राफी, प्रेंटिस हाल,
6. लांगमैन, जी.सी. एण्ड मार्गन, जी.सी. (1982) हयूमन एण्ड इकोनॉमिक ज्योग्राफी,आक्सफोर्ड प्रेस.

इकाई–3 संसाधन की संकल्पना,मानव संसाधन– जनसंख्या, शिक्षा, संस्कृति

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 संसाधन की संकल्पना

3.4 मानव संसाधन

3.5 जनसंख्या

3.5.1 जनाधिक्य की अवधरणा

3.5.2जनाभाव या अल्प जनसंख्या की अवधारणा

3.5.3 अनुकूलतम (आदर्श) जनसंख्या

3.6 शिक्षा एवं संस्कृति

3.7 सारांश

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

3.9 बोध प्रश्न

3.10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

3.1 प्रस्तावना

मानव अपना श्रेष्ठजीवन व्यतीत करने के लिए आर्थिक क्रियाकलाप करता है। मानव के ये आर्थिक क्रियाकलाप संसाधनों पर निर्भर करते है। भूगोल में संसाधनों का अध्ययन आर्थिक भूगोल में होता रहा है लेकिन संसाधन भूगोल का एक पृथक शाखा के रूप में विकास हुआ है। इस इकाई में संसाधन भूगोल में संसाधनों की उत्पति, वितरण, विशेषताएं संसाधनों का विकासक्रम के साथ संसाधन भूगोल का विकास मानव का उद्विकास एवं संसाधन आधार का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

3.2. उद्देश्य

इस इकाई में संसाधन का तात्पर्य एवं परिभाषा का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसके उद्देष्य निम्नलिखित हैः–

(अ) संसाधन भूगोल की विषय वस्तु को स्पष्ट करना।

(ब) शिक्षार्थी संसाधन भूगोल का तात्पर्य एवं संसाधन की संकल्पना विषय में स्पष्ट कर सकेंगे।

(स) संसाधन भूगोल को परिभाषाओं के माध्यम से स्पष्ट करना।

(द) संसाधन भूगोल के बारें में समझन एवं भूगोल की एक शाखा के रूप में विकास की सारगर्भिता को बढ़ाना।

3.3. संसाधन की संकल्पना

संसाधन एक ऐसी प्राकृतिक और मानवीय सम्पदा है, जिसका उपयोग हम अपनी आवयश्कताओं की पूर्ति में करते हैं। दूसरे शब्दों में मानवीय जीवन की प्रगति, विकास तथा अस्तित्व साधनों पर निर्भर करता है। प्रत्येक प्राकृतिक संसाधन मानव–जीवन के लिए उपयोगी है, किन्तु उसका उपयोग उपयुक्त तकनीकी विकास द्वारा ही सम्भव है। भूमि, सूर्यातप, पवन, जल, वन एवं वन्य प्रणाली मानव–जीवन की उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान थे। इनका क्रमिक विकास तकनीकी के विकास के साथ ही हुआ। इस प्रकार मनुष्य ने अपनी आवश्यकतानुसार संसाधनों का

विकास कर लिया है। स्पष्ट है पृथ्वी पर विद्यमान तत्वों को जो मानव द्वारा ग्रहण किये जाने योग्य हों, संसाधन कहते हैं। **जिम्मरमैन** ने लिखा है कि, "संसाधन का अर्थ किसी उद्देश्य की प्राप्ति करना है, यह उद्देश्य व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति करना है।"इस पृथ्वी पर कोई भी वस्तु संसाधन की श्रेणी में तभी आती है जब वह निम्नलिखित दशाओं में खरी उतरती हैः–

(अ) वस्तु का उपयोग सम्भव हो।

(ब) इसका रूपान्तरण अधिक मूल्यवान तथा उपयोगी वस्तु के रूप में किया जा सके।

(स) जिसमें निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति की क्षमता हो।

(द) इन वस्तुओं के दोहन की योग्यता रखने वाला मानव संसाधन उपलब्ध हो।

संसाधन शब्द अंग्रेजी भाषा के 'Resource'शब्द का पर्याय है जो दो शब्दों Re तथा Source से मिलकर बना है जिसका आशय क्रमशः Re= **दीर्घ अवधि** या **पुनः**(Again) तथा **Source= संधान** या **उपाय** (Device) है। अर्थात् प्रकृति में उपलब्ध वे तत्व या साधन जिन पर कोई जैविक समुदाय दीर्घ अवधि तक निर्भर रह सके तथा पुनः पूर्ति या पुनर्निर्माण की क्षमता हो। उदाहरण के लिए प्रकृति में वायु तथा सूर्य का प्रकाश दीर्घ अवधि तक मिलते रहेंगे जबकि वनस्पति को पुनः उत्पादित किया जा सकता है। स्पष्ट है संसाधन प्रकृति में पाया जाने वाला ऐसा पदार्थ, गुण या तत्व होता' है जो मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता रखता हो। संसाधन दृष्टिगत (Visible) व अदृश्य (Invisible) दोनों रूपों में पाये जाते हैं। दृश्यमान संसाधनों में जल, भूमि, खनिज, वनस्पति आदि प्रमुख है। मानव जीवन, उसका स्वास्थ्य, इच्छा, ज्ञान, सामाजिक, सामंजस्य, आर्थिक उन्नति आदि महत्वपूर्ण अदृश्य संसाधन हैं।

संसाधन को विभिन्न विद्वानों ने पारिभाषित किया है, इनमें **जिम्मरमेन, स्मिथ एवं फिलिप्स (Smith&Philips**), मैकनाल (Macnall), हैमिल्टन (Hamilton), जे. फिशर (J.S.Fisher) तथा डडले स्टेम्प **(StamD.)**प्रमुख हैं।

समाज विज्ञान कोष के अनुसार, "संसाधन मानवीय पर्यावरण के वे पक्ष है, जिनके द्वारा मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति में सुविधा होती है तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति होती **है।" (Resources are those aspects of man's environment which render possible or facilitate the satisfaction of human wants and the attainment of social objectives)**

जिम्मरमेन के अनुसार," संसाधन पर्यावरण की वे विशेषताएँ हैं जो मनुष्य की आवश्कताओं की पूर्ति में सक्षम मानी जाती हैं। उन्हे मनुष्य की आवश्यकताओं और क्षमताओं द्वारा उपयोगिता प्रदान की जाती है।" (Features of the environment which are, or are considered to be capable of serving man's needs; they are given utility by the capabilities and wants of men.)

जोहन्स्टन के अनुसार, "एक संकल्पना जो मानवीय सन्तुष्टि, संम्पन्नता तथा शाक्ति प्रदान करने वाले स्त्रोतों को निर्दिष्ट करती है। श्रम, उद्यमी, कौशल, विनिवेश, स्थिर पूँजीगत ढाँचा, तकनीकी, ज्ञान, सामाजिक स्थिरता तथा सांस्कृतिक एवं भैतिक विशेषताएँ किसी देश के संसाधन माने जा सकते हैं।" **(। concept used to denote sources of human satisfaction, wealth or strength, Labour, entre-preneurial skill, investment funds, fixed capital assets, technology, knowledge, social stability and cultural and physical attributes may be referred to as the resources of a country)**

जेम्स फिशर (Fisher J.S.)के अनुसार, "संसाधन ऐसी कोई वस्तु है जो मानवीय आवश्यकताओं तथा इच्छाओं की पूर्ति करता है।" (**Resources are anything that can be used to satisfy a need or desire**.)

स्मिथ एवं फिलिप्स के मतानुसार, "मूलतः संसाधन केवल पर्यावरणीय कार्यषीलता है, जो मानवीय उपयोग में आती है।" (**Fundamentally, resources are merely environment functioning in the service of man.)**

डडले स्टाम्प के अनुसार, "संसाधन किसी आवष्यकता या कमी की पूर्ति करने वाला साधन होता है। यह एक संग्रह या आरक्षित राषि होती है, जिसकी कोई भी आवष्यकता होने पर दोहन किया जाता है।" (**A means of some want of deficiency;stock or reserve upon which one can draw when necessary) I**

संसाधनों को कुछ विद्वानों ने एक पक्षीय रूप में परिभाशित करते हुए केवल संसाधन को प्राकृतिक संसाधन के रूप में माना है। **फेलमेल (Fellmann.J.)**ने बताया कि, "संसाधन या प्राकृतिक संसाधन प्राकृतिक रूप में पाये जाने वाले पदार्थ हैं, जो किसी भी दषा में मानव के आर्थिक विकास या कल्याण **(Well being)**में प्रयुक्त रहता है। पर्यावरण में संसाधनों की उपलब्धता तथा वितरण, भौतिक प्रक्रिया का परिणाम है जिन पर मानव का कमोबेष नियन्त्रण पाया जाता है। इसी प्रकार **मैकनाल (Macnall.P.E.)**ने भी संसाधन को प्राकृतिक संसाधन बताया है। जो प्रकृति द्वारा प्रदान किया जाता है तथा मानवीय उपयोग के योग्य होता है। स्पश्ट है कि संसाधनों की प्रकृति प्राकृतिक न होकर मानवीय भी होती है। बिना मानवीय प्रयास के प्रकृति में उपलब्ध कोई तत्व, पदार्थ या दषा संसाधन का रूप नहीं ले सकती है उदाहरणार्थ भूगर्भ में स्थित खनिज उस समय तक संसाधन नहीं कहलाते है। जब तक कि उनकी स्थिति दोहन के उपरान्त मानवीय उपयोग के योग्य न हो जाये तथा यह मानवीय प्रयासों से ही सम्भव है। प्रकृति में कुछ संसाधन ही ऐसे हैं जो बिना मानवीय प्रयास के स्वतन्त्र रूप में उपलब्ध हो जाते हैं ‍ैश को मानवीय प्रयासों से ही उपयोगी बनाया जाता है। इसी आधार पर जिम्मरमेन ने कहा है कि, "संसाधन होते नहीं वे बनते हैं।" इसे **यीट्स** ने स्पश्ट किया है कि संसाधनों को आप किस रूप में बनाना चाहते हैं, वैसे ही बन जाते हैं। इस दृश्टि से मनुश्य का ज्ञान सबसे बड़ा संसाधन है, क्योंकि यही संसाधनों के स्वरूप को परिवर्तित करने की क्षमता रखता है। **मिचेल** के अनुसार, ''मनुष्य का ज्ञान सभी संसाधनों की जननी है।''**जैलिन्सकी** (**W.Zelinsky**) के अनुसार, ''संसाधन वे तत्त्व या गुण होते हैं जो मानव आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते हैं और जो अपनी आर्थिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों तथा अपनी संसाधन दोहन की क्षमता के अनुसार लोगों के उद्देश्यों, प्रतिभावों तथा प्रयत्नों के साथ– साथ स्पष्ट रूप से बढ़ते जाते हैं।'' (Resources are substances or properties which satisfy human needs and obviously they increase with the aims, talents and efforts of people on their economic and cultural attainments and on their ability to exploit resources.)मानवीय आवष्यकताओं के स्वरूप में परिवर्तन के अनुसार ही संसाधन की महत्ता बढ़ जाती है। 19वीं ‍ताब्दी में यूरेनियम का उपयोग केवल रंगीन काँच में किया जाता था लेकिन आणविक तकनीकी का आविष्कार होते ही इसका सामरिक एवं ऊर्जा संसाधन के रूप महत्व बढ़ गया।

प्रकृति में विद्यमान संसाधनों के विभिन्न पक्षों को मद्देनजर रखते हुए भूगोलविदों ने संसाधनों की कुछ संकल्पनाएँ स्पष्ट की हैं, जो निम्नलिखित हैं:–

(1) संसाधन होते नहीं, बनाये जाते हैं (Resources are not present- They have to be made)– इस संकल्पना के अनुसार संसाधन मूलतः होते नहीं, उन्हें मानव अपनी आवश्यकतानुसार निर्मित करता है। प्रकृति में विद्यमान कोई तत्त्व वर्तमान में संसाधन नहीं है, लेकिन भविष्य में मानवीय कौशल एवं कार्यकुशलता से संसाधन बन सकता है। नदियों में प्रवाहित जल से विद्युत का उत्पादन कर उसे विभिन्न कार्यों के उपयोग में लिया जाता है। इस सन्दर्भ में ईसा बोमेन ने लिखा है कि, ''पर्यावरण के भौतिक तत्त्व सीमित मात्रा में स्थैतिक हैं। ज्यों ही मानवीय तत्त्वों से सम्पर्क होता है ये तत्त्व मानवीय विशेषताओं की तरह ही गतिशील हो जाते हैं।'' स्पष्ट है संसाधन होते नहीं बनते हैं। प्रकृति में विविध रूपों में वितरित पदार्थों को मनुष्य ने अपने कौशल एवं दक्षता से उपयोग के योग्य बना लिया है।

(2) संसाधन एक गतिशील संकल्पना है, स्थिर नहीं (Resources is a dynamic concept and not a static) .इस अवधारणा के अनुसार कुछ संसाधन वर्तमान में अनेक प्रतिरोधों **(Resistances)**के कारण मानवीय उपयोग के योग्य नहीं हैं, वे ही कालान्तर में , संसाधन का रूप लेकर मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। इस प्रक्रिया में मानवीय ज्ञान की प्रमुख भूमिका होती है। जिम्मरमैन ने बताया कि ''संसाधन मानवीय ज्ञान व कुशलता में वृद्धि के साथ बढ़ते हैं तथा दोष एवं गलतियों से कम होते हैं।'' एक शताब्दी पूर्व मानव अनेक खनिजों से अनभिज्ञ था एवं मानवीय कौशल एवं वृद्धि के साथ इनकी उपलब्धता बड़ी है।

(3) संसाधन एक कार्यात्मक संकल्पना है (Resource is a functional concept)– संसाधन का प्रमुख लक्षण उसकी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता है। अतः कोई भी प्राकृतिक तत्व मानवीय उपयोग के योग्य संक्रियात्मक **(Functional)**रूप में बनता है। भूगर्भ में स्थित कोयला एवं पेट्रोलियम खनन करके ही दोहन योग्य बनता है तथा संसाधन कहलाता है, भूगर्भ में नहीं। इसी प्रकार पृथ्वी तल पर विभिन्न नदियों से प्रवाहित जल भी कार्यात्मक रूप में ही उपयोगी बन पाता है। मनुष्य संसाधनों में कार्यात्मकता उत्पन्न करता है। प्राकृतिक वस्तुओं के उपलब्ध होने से मानव की कार्यात्मक क्षमता में वृद्धि हुई है जिससे नदियों, खनिजों, जंगल तथा मृदा

जीवीय संसाधनों में परिवर्तन किये हैं।

(4) संसाधन प्रतिरोधों तथा तटस्थ तत्त्वों के साथ मिलते हैं (Resources exist side by with Resistance and Neutral stuff) प्रकृति में संसाधनों की उपलब्धता के साथ ही प्रतिरोध एवं तटस्थ तत्त्व भी रहते हैं। इन्हें पृथक् कर पाना कठिन है। प्रकृति द्वारा प्रदान किये गये प्रतिरोधक तत्त्वों को हानिकारक तत्त्व कहते हैं। इनमें बंजर भूमि, बाढ, बीमारियाँ तथा भूकम्प एवं तूफान जैसी प्राकृतिक आपदायें प्रमुख हैं। इसी प्रकार शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक भावनायें आदि मानवीय क्षेत्र के संसाधन एवं प्रतिरोधक हैं। इनकी अनुकूलता संसाधन है तथा प्रतिकूलता प्रतिरोध है। शिक्षा प्राप्त व्यक्ति महत्त्वपूर्ण संसाधन है जबकि अज्ञानता एक प्रतिरोधक तत्त्व है। कुछ तत्त्व दोनों ही स्थितियों में स्वतन्त्र रहते हैं, जिन्हें मूक तत्त्व या तटस्थ कहते हैं। प्राविधिक ज्ञान में वृद्धि करके तटस्थ एवं प्रतिरोध तत्त्वों को संसाधन बनाया जा सकता है।

(5) मनुष्य के रहन–सहन का स्तर संसाधनों के उपयोग का परिणाम है(The standard of man's living is the result of the utilization of resources) मानव ने 'विभिन्न संसाधनों का उपयोग करके अपने जीवनस्तर में सुधार किया है। प्राचीन मानव जब प्रकृति में विद्यमान संसाधनों के दोहन से अनभिज्ञ था तो जंगली अवस्था में जीवन व्यतीत करता था लेकिन जैसे–जैसे संसाधनों का उपयोग प्रारम्भ हुआ मानवीय जीवन का स्वरूप बदल गया। इस दृष्टिकोण से यदि मानव सन्तुलित रूप में संसाधनों का उपयोग करके जीवन स्तर में सुधार लाता है तो प्रकृति में सन्तुलन बना रहता है अन्यथा अविवेकपूर्ण एवं अतिदोहन से प्रकृति में अनेक संकट उत्पन्न हो जाते हैं। वर्तमान में ओजोन परत में अल्पता संसाधनों का दोहन कर जीवन स्तर में सुधार का ही परिणाम है।

(6) संसाधनों के संरक्षण की संकल्पना(Concept of resources conservation)- जिस प्रकार संसाधन होते नहीं बनते हैं उसी प्रकार संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन होते है। जो ह्रास का कारण बनता है संसाधनो के संरक्षण से अभिप्राय है उनका इस सीमा तक उपयोग किया जाये कि उनकी प्रकृति में दीर्घकाल तक उपलब्धता बनी रहे। इस प्रकार संसाधनों का विवेकपूर्ण दोहन ही उनका संरक्षण है। अतः मानव जिसे संसाधनों का निर्माणकर्ता बताया है उसे प्रकृति में उपलब्ध संसाधनों के लिए भी कठोर कदम उठाने चाहिए।

प्राकृतिक वातावरण में विद्यमान तत्त्वों को मानव संसाधन का रूप देता है जिसमें उसके कौशल व दक्षता का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मनुष्य ने आदिकाल से ही प्राकृतिक वातावरण के साथ जीवनयापन करते हुए सांस्कृ तिक विकास किया है जिसका आधार संसाधन ही रहा है। इस प्रक्रिया में सामाजिक संगठन के साथ ज्ञान की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मानव द्वारा प्राकृतिक वातावरण का उपयोग करके तकनीकी ज्ञान एवं सभ्यता का विकास किया है, जिसके फलस्वरूप संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि हुई है। प्रकृति में जैसे ही संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि होती है, संसाधनों की प्रकृति में परिवर्तन हो जाता है। स्पष्ट है कि संसाधनों की प्रकृति भी परिवर्तनशील है। साथ ही संसाधनों की प्रकृति, भौगोलिक स्थिति, उपलब्धता, आर्थिक महत्त्व, उपयोग के समय स्वरूप आदि के अनुसार बदलती रहती है।

3.4 मानव संसाधन(Human Resources)

संस्कृति का निर्माता मानव स्वयं एक शक्तिशाली संसाधन है, जो प्राकृतिक तत्त्वों को अपने ज्ञान एवं कौशल के विकास के द्वारा संसाधन रूप में उपयोग करता है। यह संसाधनों का निर्माता एवं उपभोक्ता दोनों है, जो एक भौगोलिक कारक व संसाधन के रूप में सम्मिलित होकर कार्य करता है। मानव संसाधन में किसी इकाई क्षेत्र में रहने वाली मानव जनसंख्या, उसकी शारीरिक व मानसिक क्षमता, स्वास्थ्य, जनसंख्या के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृ तिक और राजनीतिक संगठन तथा वैज्ञानिक व तकनीकी स्थिति जैसी विशेषताएँ सम्मिलित हैं। प्राकृतिक वातावरण में जब तक मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है तब तक मानव संसाधन कोई समस्या का रूप नहीं लेता है, लेकिन इनकी संख्या बढ़ने पर आवश्यकताओं की आपूर्ति घटने लगती है तथा स्वयं मानव संसाधन भी समस्या बन जाता है।मानव एक सक्रिय प्रणाली के रूप में पृथ्वी पर विद्यमान संसाधनों एवं प्राकृतिक परिवेश का उपभोग करते हुए उसके साथ समायोजन (।करनेजउमदज) करता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में वह अपनी बौद्धिक क्षमता के अनुसार प्रकृति प्रदत्त तत्त्वों में श्रेष्ठ का चयन करता है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पृथ्वी तल को अनेक रूपों में परिवर्तित करता है। कृषि विकास के लिए पहाड़ी क्षेत्रों में सीढ़ीनुमा खेत बनाता है। नदी घाटियों पर बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं का विकास करता है। एक ओर आर्थिक समृद्धि के लिए प्राकृतिक वनस्पति का विनाश करता है, वहीं दूसरी ओर इसके संरक्षण की सोच उत्पन्न कर वृक्षारोपण करता है।

संसाधनों के उपयोग की दृष्टि से मानव केन्द्रीय स्थिति रखता है तथा निरन्तर प्राकृतिक परिवेश को परिवर्तित कर उसके अनुरूप अनुकूलन करता है। प्राकृतिक घटकों के रूपान्तरण की प्रकृति एवं दर मनुष्य की बौद्धिक, आर्थिक एवं सामाजिक विकास पर निर्भर करती है। मानव ने पृथ्वी पर अपने सांस्कृतिक अभ्युदय के साथ–साथ भू–भागों का उपयोग किया है। जहाँ सर्वप्रथम कृषि एवं पशुपालन का विकास किया तथा धीरे–धीरे मृदा के उपयोग, जल एवं खनिज संसाधनों के महत्त्व को पहचानकर भौगोलिक एवं आर्थिक समायोजन करके संसाधन उपयोग के तरीके सीखे। संसाधन उपयोग का प्रारम्भिक स्वरूप केवल आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित था लेकिन धीरे– धीरे इसका स्वरूप आर्थिक विकास ने ले लिया तथा मानव ने संसाधनों के दोहन की दर में वृद्धि की जिसके फलस्वरूप उनकी कमी महसूस होने लगी तथा मानव को इसके.

3.5 जनसंख्या

जनसंख्या एवं संसाधनों में परस्पराश्रित सम्बन्ध पाये जाते हैं। प्रकृति में विद्यमान विभिन्न प्रकार के संसाधनों को मानव उपयोग योग्य स्वरूप में विकसित करता है। इस प्रकार क्षमता रखने के कारण स्वयं मानव भी एक संसाधन है। मानव इस पृथ्वी पर संसाधनों के सृजन कर्ता के साथ ही उनका उपभोगकर्ता भी है। पीटर हैगेट ने कहा है कि, ''कोई भी पदार्थ या शक्ति तब तक संसाधन नहीं बनता जब तक कि वह मानव की आवश्यकताओं पूर्ति न करे।''मनुष्य के प्राविधिक ज्ञान में विकास के साथ ही संसाधनों को बढ़ाने व नवीन संसाधनों का सृजन करने की क्षमता में वृद्धि होती है। इस सम्बन्ध में जैलिंस्की ने कहा है कि ''मनुष्य का ज्ञान ही सबसे बड़ा संसाधन है।''जनसंख्या और संसाधन के मध्य सन्तुलन की स्थिति उस समय उद्भूत होती है जब प्रकृति में विद्यमान संसाधनों की तुलना में जनसंख्या अनुकूलतम हो। संसाधनों की तुलना में जनसंख्या अधिक होने पर उसे जनाधिक्य (Over Population) तथा कम होने पर जनाभाव (Under Population) कहते हैं लेकिन जनसंख्या एवं संसाधनों के मध्य सन्तुलन की दशा बहुत कम दृष्टिगत होती है। इस प्रकार किसी क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या तथा उस क्षेत्र के संसाधनों में उपयुक्त समायोजन नहीं पाया जाता है। जिस कारण अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन विसंगतियों की दशा को ही जनसंख्या दबाव कहते हैं। टायूबर (Taeuber, B1970) के अनुसार, ''जनसंख्या के अधिक दबाव के कारण जनसंख्या और संसाधनों के बिगड़ने को जनसंख्या दबाव कहते हैं। क्लॉर्क (Clarke, C.G.,1970) के मतानुसार, "जनसंख्या दबाव उस समय उत्पन्न होता है जब मानव की संख्या और उसकी आवश्यकताओं तथा क्षेत्र भू विशेष के भौतिक व मानवीय संसाधनों के मध्य का संतुलन बिगड़ जाता है।'' Browning. H.L.(1970) ने संसाधनों की पृथक् प्रवृत्ति के सन्दर्भ में स्पष्ट किया है किसी समुदाय के संसाधनों तथा उसकी जनसंख्या के मध्य असन्तुलन से जनसंख्य दबाव उत्पन्न होता है। इसमें जनसंख्या एवं संसाधनों को मानवीय आधिपत्य में सीमा बद्ध किया गया है। माबोगुंजे ने बताया कि जनसंख्या दबाव भूमि संसाधन, जनसंख्या और लोगों की आकांक्षाओं के मध्य होने वाली अन्तःक्रिया के परिणाम होते हैं। इसे निम्नांकित कारकों की सहायता से ज्ञात कर सकते हैं।

(i) संसाधनों की उपलब्धता और उनका गुणात्मक स्वरूप।

(ii) जनसंख्या की आकांक्षाएँ, उनकी सीमा तथा स्वरूप।

माबोगुंजे ने स्पष्ट किया कि संसाधन व जनसंख्या दोनों कम हों तथा आकांक्षाएँ ऊँची हों या संसाधन तथा आकांक्षाएँ कम हों व जनसंख्या अधिक हो तो जनसंख्या दबाव उत्पन्न होता है

3.5.1 जनाधिक्य की अवधारणा(Concept of Over Population)

जनसंख्या के सामान्य सन्तुलन की अवस्था से विचलित होकर तेजी से बढ़ने की अवस्था को सामान्यतया जनसंख्या आधिक्य या जनाधिक्य कहा जाता है। किसी निश्चित प्रदेश के अन्तर्गत उपलब्ध समस्त प्राकृतिक संसाधनों की तुलना में वहाँ निवासित जनसंख्या अधिकतम होती है तथा जनसंख्या वृद्धि भी तीव्र होती है जिसके कारण उस क्षेत्र की पोषण क्षमता की तुलना में जनसंख्या अधिक हो जाती है। ऐसी अवस्था के कारण उस क्षेत्र विशेष के लोगों का जीवन स्तर निम्न, बेरोजगारी की समस्या आदि तत्त्वों में निरन्तर वृद्धि होती जाती है तथा आर्थिक एवं सामाजिक जीवन स्तर निरन्तर निम्न स्तर की ओर अग्रसर होता जाता है। यह अवस्था उस क्षेत्र विशेष की अति जनसंख्या, जनाधिक्य या जनातिरेक की अवस्था कहलाती है।

जनाधिक्य के कारण भूमि एवं प्राकृतिक संसाधनों पर निरन्तर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जाता निर्धनता,

बेरोजगारी, निम्न जीवन स्तर, प्रति व्यक्ति आय में गिरावट, स्वास्थ्य सम्बन्धी विधाओं में कमी इसके प्रमुख लक्षण हैं। जनाधिक्य का प्रमुख कारण तो उस क्षेत्र में जनसंख्या में तीव्र वृद्धि को ही माना जाता लेकिन कभी–कभी संसाधनों का अभाव, श्रम की माँग में कमी, मुद्रास्फीति में तीव्र वृद्धि आदि कारणों से भी जनसंख्या सन्तुलन में जनाधिक्य की स्थिति आ जाती है। जनाधिक्य के कारण उपलब्ध भौतिक संसाधनों का उपयोग भी आवश्यकतानुसार एवं उचित रूप से नहीं हो पता है। क्योंकि जनसंख्या वृद्धि की तुलना में संसाधनों की मात्रा में वृद्धि नहीं हो पाती है। ● जनसंख्या एवं संसाधनों के आपसी सम्बन्धों के आधार पर जनाधिक्य को दो भागों में जाता है–

(i) पूर्ण जनाधिक्य

(ii) सापेक्ष जनाधिक्य

(i) पूर्ण जनाधिक्य

विकसित एवं ज्ञात तकनीकी के अनुसार किसी क्षेत्र विशेष में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग अधिकतम एवं उच्च स्तर तक हो जाता है तथा उससे आगे आर्थिक विकास की गति लगभग अवरुद्ध हो जाती है लेकिन विकास की गति के विपरीत जनसंख्या के बढ़ने की गति निरन्तर जारी रहती है। जिसके कारण प्रति व्यक्ति संसाधनों की प्राप्ति में गिरावट आने से प्रति व्यक्ति आय गिरने लगती है और जीवन स्तर निम्नतम होता जाता है। ऐसी जनसंख्या की अवस्था को पूर्ण जनाधिक्य की अवस्था कहा जाता है।

क्लार्क महोदय ने कहा है कि ''निरपेक्ष जनाधिक्य जनसंख्या वृद्धि की वह अवस्था है। जिसमें संसाधनों के चरम विकास के बावजूद भी जीवन के रहन–सहन का स्तर निम्न रहता है।'' वर्तमान समय में ऐसी दशा ग्रेट ब्रिटेन, जापान आदि कुछ विकसित देशों में पायी जाती है।

(ii) सापेक्ष जनाधिक्य

जब किसी क्षेत्र विशेष में निवासित कुल जनसंख्या के भरण–पोषण के लिए वहाँ उत्पादित सभी वस्तुएँ अपर्याप्त एवं कम होती हैं तो ऐसी स्थिति सापेक्ष जनाधिक्य कहलाती हैं। सापेक्ष जनाधिक्य की स्थिति में क्षेत्र विशेष में उपलब्ध सम्पूर्ण संसाधनों का विदोहन तकनीकी सुविधाओं की कमी के कारण नहीं हो पाता है। लेकिन भविष्य में प्रौद्योगिकी के विकसित होने पर संसाधनों के उपयोग एवं उत्पादन वृद्धि की सम्भावनाएँ कायम रहती हैं। जिसके कारण जनाधिक्य की स्थिति भी सन्तुलित होने की पूर्ण सम्भावना विद्यमान रहती है। प्रो. क्लार्क महोदय ने कहा है कि, ''सापेक्ष जनसंख्या आधिक्य संसाधनों में सन्तुलन की वह स्थिति है जिसमें उत्पादन का वर्तमान स्तर जनसंख्या के लिए अपर्याप्त होता है। उत्पादन स्तर को बढ़ाकर इस स्थिति से निजात पाया जा सकता है।''संसाधन वर्तमान समय में सापेक्ष जनाधिक्य की स्थिति विश्व के उन छोटे–छोटे देशों में पायी जाती है जहाँ उत्पादन का स्तर जनसंख्या वृद्धि की तुलना में निम्न पाया जाता हैं। जनाधिक्य की स्थिति अधिकतर सम्पूर्ण देश या किसी देश के प्रदेश विशेष में पायी है। किसी देश के एक प्रदेश विशेष में जनाधिक्य की स्थिति पायी जा सकती है। जब की सम्पूर्ण देश के अन्य भागों में जनसंख्या सामान्य हो सकती है। उदाहरण के लिए भारत के उत्तरी भाग में, चीन के पूर्वी भाग में तथा इण्डोनेशिया के जावा द्वीप में जनाधिक्य की स्थिति अन्य भागों में जनसंख्या वितरण सामान्य पाया जाता है । जनसंख्या आधिक्य को ग्रामीण एवं औद्योगिक जनसंख्या आधिक्य के रूप में विभाजित किया जाता है। जब किसी औद्योगिक क्षेत्र में जनसंख्या आवश्यकता से अधिक पायी जाती है तो वह औद्योगिक जनसंख्या आधिक्य की स्थिति कहलाती है। इसके विपरीत ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या भार अधिक होता है तो वह ग्रामीण जनसंख्या आधिक्य कहलाता है।

3.5.2 जनाभाव या अल्प जनसंख्या की अवधारणा

जनाभाव की स्थिति उस समय उत्पन्न होती है जब जनसंख्या संसाधनों को तुलना कम हो। अर्थात् जब किसी देश या क्षेत्र विशेष में निवास करने वाली जनसंख्या उस देश या क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों की तुलना में अत्यल्प या न्यून पायी जाती है तो ऐसी स्थिति को जनभाव न्यून जनसंख्या या जनाल्पता की स्थिति कहा जाता है। जनाभाव वाले क्षेत्रों में संसाधनों तो अधिक मात्रा में पाये जाते हैं लेकिन जनाभाव होने के कारण उन संसाधनों का पूर्ण उपयोग नहीं हो पा है जिसके कारण उस देश या क्षेत्र विशेष का सन्तुलित आर्थिक विकास नहीं हो पाता है। ऐसे से विद्यमान जनसंख्या से अधिक जनसंख्या के पालन–पोषण में सहायक हो सकते हैं। इस वाले जनसभाव क्षेत्र ऐसे प्रदेश होते हैं जहाँ जनसंख्या को बढ़ाकर ही आर्थिक विकास एवं प्रति आय का स्तर उच्च किया जा

सकता है।

जे.आई. क्लार्क महोदय ने कहा है कि,''जनाभाव वाले क्षेत्रों में संसाधनों का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है अथवा जहाँ संसाधन जीवन स्तर में कमी के बिना अथवा रोजगार में वृद्धि किये बिना ही वृहत्तर जनसंख्या का पोषण करने में समर्थ होते हैं।'' जनाभाव की स्थिति को भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(i) **पूर्ण जनाभाव** जहाँ सम्पूर्ण क्षेत्र में संसाधनों के उपयोग की तुलना में जनसंख्या कम पायी जाती है। वह पूर्ण जनाभाव कहलाता है।

(ii) **सापेक्ष जनाभाव**–महामारी या अन्य प्राकृतिक एवं कृत्रिम कारणों से किसी क्षेत्र विशेष में मृत्युदर के जन्मदर से अधिक होने के कारण उत्पन्न जनाभाव की स्थिति को सापेक्ष भाव कहा जाता है। अधिकांशतः जनाभाव की स्थिति पिछड़े समाजों में पायी जाती है। वर्तमान समय में प्रेयरी, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि क्षेत्रों के कुछ सीमित भागों में जनाभाव स्थिति पायी जाती है। वर्तमान समय में न्यून जनसंख्या की स्थिति अधिकतर उन भागों में पायी जाती है। जहाँ प्रौद्योगिकी के विकास का स्तर निम्न होता है जबकि वहाँ विस्तृत भूमि एवं पर्याप्त मात्रा में संसाधन उपलब्ध होते हैं तथा वहाँ निवास करने वाली जनसंख्या अशिक्षित एवं अकुशल पायी जाती है जिसके कारण वे लोग उपलब्ध संसाधनों का उपयोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में नहीं कर पाते हैं। जनाभाव की स्थिति को आधुनिक प्रौद्योगिकी के विकास एवं जनसंख्या स्थानान्तरण के द्वारा दूर किया जा सकता है।

3.5.3 अनुकूलतम (आदर्श) जनसंख्या

अनुकूलतम या ईष्टतम जनसंख्या किसी प्रदेश विशेष में स्थित उस कुल जनसंख्या को कहते हैं जो उस क्षेत्र विशेष में उपलब्ध कुल आर्थिक एवं सामाजिक संसाधन उपयोग के अनुकूल हो। अर्थात् किसी क्षेत्र विशेष में स्थित कुल जनसंख्या का आधुनिक प्रौद्योगिकी की सहायता से पूर्ण विकसित करने तथा उसका उत्पादन एवं उपभोग करने के लिए अनुकूलतम आवश्यक जनसंख्या हो जो उस क्षेत्र विशेष में उपलब्ध संसाधनों का उच्चतम जीवन स्तर का जीवन निर्वाह करती हो। उस क्षेत्र विशेष की कुल जनसंख्या को अनुकूलतम जनसंख्या कहा जाता है। अतः किसी क्षेत्र विशेष में निवास करने वाली जनसंख्या को उत्तम जीवन स्तर प्राप्त हो अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकतानुसार भोजन, वस्त्र, ऊर्जा, शुद्ध जल एवं वायु, उत्पादन हेतु पर्याप्त कच्चा माल, स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी सुविधाये तथा सांस्कृतिक तत्त्वों का पर्याप्त एवं अनुकूल मात्रा में उपलब्ध हो। अनुकूलतम जनसंख्या से तात्पर्य अधिकतर जनसंख्या से सम्बन्धित विद्वान आर्थिक–सामाजिक दृष्टिकोण के की उच्चस्तर उपलब्धता को मानते हैं। अर्थात् उपलब्ध संसाधनों का मनुष्य की सामान्य आवश्य की पूर्ति हेतु अधिकतम उपयोग एवं उच्चतर जीवन स्तर की प्राप्ति ।

अनुकूलतम जनसंख्या के निर्धारण के मापदण्ड

किसी क्षेत्र विशेष में निर्वासित जनसंख्या अनुकूलतम है या नहीं इसका आकलन निम्नांकित मापदण्डों की सहायता से किया जा सकता है–

1. **सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Production, GNP)**– किसी क्षेत्र विशेष के कुल उत्पादन का आकलन सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहलाता है।GNPका उच्च स्वर अनुकूलतम जनसंख्या का परिचायक माना जाता है। लेकिन क्षेत्र विशेष में निर्वासित जनसंख्या में व्यक्ति विशेष की प्रति व्यक्ति आय के अन्तर का ज्ञान इसके द्वारा नहीं हो पाता है।''
2. **पूर्ण रोजगार**– किसी क्षेत्र विशेष में निवास करने वाले लोगों को उनकी योग्यता के अनुसार सभी को रोजगार प्राप्त करना भी अनुकूलतम जनसंख्या का मापदण्ड माना जाता है।
3. **उच्चतम जीवन स्तर** तीव्र आर्थिक विकास, उच्चतम आय एवं पूर्ण रोजगार प्राप्त क्षेत्र में सामाजिक एवं सांस्कृतिक जैविक आवश्यकताएँ भी उच्च ही पायी जाती हैं। अतः उच्चतम जीवन स्तर की प्राप्ति उत्तम स्वास्थ्य एवं सभी सुविधाओं की पूर्ण व्यवस्था पर आधारित है।
4. **संसाधनों का पूर्ण उपयोग**– अनुकूलतम जनसंख्या होने पर उपलब्ध संसाधनों का आधुनिक प्रौद्योगिकी की सहायता से पूर्ण उपयोग होता है। प्रौद्योगिकी विकास के साथ नवीन संसाधनों की जानकारी होती रहती है तथा उनका आवश्यकतानुसार उपयोग होता रहता है।

5. **जनांकिकीय संरचना** – अनुकूलतम जनसंख्या में आयु, लिंग आदि सभी सन्तुलित अवस्था में पाये जाते हैं। जन्मदर एवं मृत्युदर में सन्तुलन पाया जाता है जिसके कारण जनसंख्या वृद्धि भी बहुत कम एवं सन्तुलित रहती है। जनसंख्या लगभग स्थायी पायी जाती है।

6. **प्रदूषण रहित विकास** – अनुकूलतम जनसंख्या युक्त क्षेत्र में जलवायु, पर्यावरणीय प्रदूषण की मात्रा बहुत कम पायी जाती है। टेलर ने कहा है कि अनुकूलतम जनसंख्या का अधिकतम वह है जो पर्यावरण अथवा समाज या पोषण की कमी से व्यक्ति के स्वास्थ्य को क्षति पहुँचाये बिना ही अनिश्चित काल तक कायम रह सके।

3.6 शिक्षा एवं संस्कृति

संसाधन की प्रकृति गतिशील है, जो निरन्तर परिवर्तनशील रहते हुए नवीन स्वरूप प्राप्त करती रहती है तथा इसमें समय महत्वपूर्ण घटक है। पृथ्वी पर प्रारम्भिक रूप में जलवायु परिवर्तन से सघन वनस्पति आवरण विकसित हुआ, जिसका कालान्तर में भूगर्भिक उलट–फेर के उपरान्त कायान्तारण हुआ तथा कोयला एव पेट्रोलियम बना। स्पष्ट है पूर्व में विकसित प्राकृतिक वनस्पति जीवाश्मीय ईंधन बन गई। इसके अतिरिक्त पर्यावरण के उपयोग द्वारा मानव ने संसाधनों की प्रकृति को बदला है। संसाधनों की बदलती हुई प्रकृति निम्नलिखित है–

प्राकृतिक वातावरण

↓

मानव द्वारा उपयोग

↓

तकनीकी ज्ञान एवं सभ्यता का विकास

↓

संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि

↓

प्राकृतिक वातावरण में विद्यमान तत्त्वों को मानव संसाधन का रूप देता है। जिसमें उसके कौशल व दक्षता का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मनुष्य ने आदिकाल से ही प्राकृतिक वातावरण के साथ जीवनयापन करते हुए सांस्कृतिक विकास किया है जिसका आधार संसाधन ही रहा है। इस प्रक्रिया में सामाजिक संगठन के समय ज्ञान की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मानव द्वारा प्राकृतिक वातावरण का उपयोग करके तकनीकी ज्ञान एवं सभ्यता विकास किया है, जिसके फलस्वरूप संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि हुई है। प्रकृति में जैसे ही संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि होती है, संसाधनों की प्रकृति में भी परिवर्तन होता है। साथ ही संसाधनों की प्रकृति भौगोलिक स्थिति, उपलब्धता, आर्थिक महत्त्व, उपयोग के समय स्वरूप आदि के अनुसार बदलती रहती है। समय के साथ संसाधनों की कमी से प्रकृति भी परिवर्तनशील रहती है। कोयला समय के साथ विभिन्न स्वरूपों, पीट, लिग्नाईट, बिटुमिन्स–एन्थ्रेसाइट में बदलता है। इसी प्रकार लौह अयस्क, ताँबा, बॉक्साइट आदि खनिज संसाधन धात्विक सम्पन्नता के आधार पर भिन्न प्रकृति रखते हैं। स्थिति का भी संसाधनों की प्रकृति पर प्रभाव पड़ता है। भूमध्यरेखीय प्रदेश की जैविक सम्पदा शीतोष्ण कटिबन्धीय या ध्रुवीय प्रदेशों से भिन्न प्रकृति की होती है। स्पष्ट है कि प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक भूदृश्य जो विभिन्न वर्गों के संसाधन हैं, परिवर्तनशील रहते हुए अपनी प्रकृति भी बदलते हैं जिसमें प्राकृतिक प्रक्रियाओं के साथ ही मानवीय क्रियाकलाप भी उत्तरदायी हैं।

3.7 सारांश

संसाधन एक प्राकृतिक एवं मानवीय सम्पदा है जिसका प्रयोग अपनी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए करते है। संसाधन की प्रकृति मे विघमानता के आधार पर अनेक संकल्पनाएं प्रस्तुत की गई है। यह इकाई संसाधन का तात्पर्य एवं संकल्पनाओं कों समझनें में सहायक होगी। संसाधनों के निर्माण की जन्मदायिनी प्रकृति को माना जाता है। प्रकृति के अनेक तत्त्व स्वयं संसाधन तथा संसाधन निर्माणकारी कारक दोनों रूपों में पाये जाते हैं। लेकिन मानवीय प्रभाव से इनकी प्रकृति बदल जाती है। इनमें वायु, जल, वनस्पति, मृदा आदि प्रमुख हैं। ये सभी

तत्त्व जब तक मानव प्रभाव से अप्रभावित रहते हैं, संसाधन के रूप में उपलब्ध रहते हैं। जल एक प्राकृतिक संसाधन है तथा संसाधन निर्माणकारी कारक के रूप में इससे जल–विद्युत अर्थात् ऊर्जा संसाधन का निर्माण किया जाता है। इन तत्त्वों द्वारा संसाधन निर्माण में समय की प्रमुख भूमिका होती है। उदाहरण के लिए जल तथा पवन से ऊर्जा निर्माण अल्प समय में किया जा सकता है, लेकिन प्राकृतिक वनस्पति तथा जीवाश्मों के कायान्तरण से कोयला एवं पेट्रोलियम के निर्माण में काफी लम्बा समय (करोड़ों वर्ष) लगता है। प्रकृति एक ऐसा भौतिक आधार है जिस पर मानव अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं तकनीक दक्षता से प्राकृतिक पर्यावरण का उपयोग करके संसाधन निर्माण में अपनी भूमिका निभाता है मानवीय ज्ञान में वृद्धि से प्राकृतिक तत्त्वों की कार्यदक्षता में वृद्धि होती है। सन् 1750 से पूर्व मानव जीवाश्मीय ईंधन (कोयला एवं पेट्रोलियम) का सही ढंग से उपयोग करना नहीं जानता था, लेकिन धीरे–धीरे मानवीय ज्ञान में वृद्धि होती गई तथा सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ–साथ मानव विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों से अवगत हुआ तथा उनके उपयोग के उन्नति के तरीके तलाशने लगा फलस्वरूप संसाधनों में वृद्धि हुई।

3.8 बोध प्रश्न

1. संसाधनों की संकल्पनाओ को सविस्तार समझाइये।
2. संसाधन की परिभाषा लिखो।
3. संसाधन की कार्यात्मक संकल्पना को बताइये।
4. संसाधन गतिशील है सविस्तार समझाइये।
5. संसाधन के महत्व की विवेचना कीजिए।

3.9 बहुविकल्पीय प्रश्न

प्रश्न–1– मानव सभ्यता के आधुनिक युग को किस नाम से जाना जाता है।

(अ) कास्य युग　　**(ब)** लौहयुग

(स) ताम्र युग　　**(द)** पाषाण युग,

प्रश्न–2– प्राथमिक व्यवसाय है?

(अ) पशु धारण, आखेट, वनकटाई　　**(ब)** दुग्घ, परिवहन, वन कार्य।

(स) आखेट, शिक्षा, पशुधारण　　**(द)** आखेट, कृषि, परिवहन।

प्रश्न–3– "संसाधन ऐसी कोई वस्तु है जो मानवीय आवश्यकताओं तथा इच्छाओ की पूर्ति करता है"

(अ) जेम्स, केशर　　**(ब)** डडलें स्टाम्प

(स) जिम्मरमेंन।　　**(द)** मैकनाल

वस्तुनिष्ठ प्रश्न का उत्तर 1. ब 2. अ 3. स

3.10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, जगदीश, एवं सिंह, के.एन.(2010) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।
2. मौर्य, एस. डी. (2022), आर्थिक भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
3. श्रीवास्तव, वी.के. एवं राव, बी.पी. (2002), आर्थिक भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
4. गौतम, अलका, (2019) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
5. अलेक्जेंडर, जे.डब्लू. (1979) इकोनॉमिक ज्योग्राफी, प्रेंटिस हाल
7. लांगमैन, जी.सी. एण्ड मार्गन, जी.सी. (1982) हयूमन एण्ड इकोनॉमिक ज्योग्राफी,आक्सफोर्ड प्रेस.

इकाई–04 प्राकृतिक संसाधन– प्राकृतिक संसाधनों का बहुपक्षीय वर्गीकरण, संसाधन उपयोग को प्रभावित करने वाले कारक, संसाधन संरक्षण का अर्थ, आवश्यकता एवं नियम

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 प्राकृतिक संसाधन

4.4 प्राकृतिक संसाधनों का बहुपक्षीय वर्गीकरण

4.4.1 उपयोग की सततता पर आधारित वर्गीकरण

4.4.2 उत्पत्ति के आधार पर वर्गीकरण

4.4.3 उद्देश्य पर आधारित वर्गीकरण

4.4.4 उपलब्धता के आधार पर

4.5 संसाधन संरक्षण अर्थ एवं

4.6 संसाधन संरक्षण की आवश्यकता

4.7 संसाधन संरक्षण के नियम

4.8 सारांश

4.9 बोध प्रश्न

4.10 बस्तुनिष्ठ प्रश्न

4.11 संदर्भ ग्रंथ

4.1 प्रस्तावना

मानव स्वयं संसाधन होने के साथ संसाधनों की प्रकृति बदल देता है। मानव अपने श्रम वं तकनीकी ज्ञान द्वारा किसी भी पदार्थ को मानव उपयोगी बनाकर संसाधन बना सकता है। संसाधन प्रकृति के सम्पूर्ण जैव जगत का आधार है। संसाधनों की उपलब्धता, समाज के सामाजिक आर्थिक समृद्धि का आधार है लेकिन संसाधनों के गलत उपयोग के कारण पर्यावरण संकट उत्पन्न हो रहे हैं। संसाधनों का अति दोहन मानवीय अवनति भी कर सकता है। इस इकाई का अध्ययन आपको संसाधनों की संकल्पना, संस्कृति संसाधनों के वर्गीकरण, मानव संसाधनों एवं प्राकृतिक संसाधनों को समझने में सहायक होगा।

4.2 उद्देश्य

(i) प्राकृतिक संसाधन प्राकृतिक वातावरण के प्रमुख घटक हैं।

(ii) ये मनुष्य के लिए प्रकृति प्रदत्त हैं अर्थात् प्रकृति का उपहार हैं।

(iii) ये संसाधन प्रकृति में चिना मानवीय अनुक्रिया के स्वयं निष्क्रिय रहते हैं लेकिन जब मनुष्य इन्हें उपयोग में लेता है तो ये सक्रिय रूप में आर्थिक विकास में सहयोग करते हैं।

(iv) इनकी प्रकृति भिन्न–भिन्न होती है, जिसमें कुछ समाप्य तथा कुछ असमाप्य या नव्यकरणीय होते हैं।

(v) प्राकृतिक संसाधनों में विविधता पायी जाती है।

4.3 प्राकृतिक संसाधन

प्रकृति प्रदत्त संसाधनों को प्राकृतिक संसाधन कहते हैं। नार्टन एस. जिन्नसबर्ग ने बताया कि, ''प्रकृति द्वारा स्वतन्त्र रूप से प्रदान किये गये पदार्थ जब मानवीय क्रियाओं से आवृत्त होते हैं तो उनों प्राकृतिक संसाधन कहते हैं।'' गाडी (Goudie A.2000) के अनुसार ''प्राकृतिक पर्यावरण के मानवीय उपयोग योग्य घटक प्राकृतिक संसाधन कहलाते हैं।'' भौतिक सन्दर्भ में जीवमण्डल तथा स्थलमण्डल में संसाधनों के प्राकृतिक वितरण, प्रकार तथा उनके उपयोग के प्रभावों के आधार पर इनको प्रकृति का निर्धारण किया जाता है। इस आधार पर किसी देश को भौगोलिक स्थिति, आकार, धरातल, जलवायु, वनस्पति, मृदा, पवन, जल, पशु, खनिज, सूर्य का प्रकाश आदि तत्त्व प्राकृतिक संसाधन हैं। इनमें कुछ संसाधन संधूत या दीर्घ पोषणीय (Sustainable) हैं जो लम्बे समय तक उपलब्ध रहेंगे। जैसे–जल, पवन आदि जबकि कुछ संसाधन जैसे–कोयला, पेट्रोलियम जिनके सौमित भण्डार हैं–लम्बी अवधि तक उपलब्ध नहीं रहेंगे।

4.4 प्राकृतिक संसाधनों का बहुपक्षीय वर्गीकरण

प्रकृति में विभिन्न प्रकार के संसाधन पाये जाते हैं, जिनके निर्माण का मूल प्रकृति है तथा ये सभी मानवीय प्रभाव से नवीन स्वरूप में स्थापित हो जाते हैं। इस प्रकार प्रकृति मानव के लिए संसाधनों का निर्माण करती है जिनको मानव अपने प्रयासों, इच्छाओं और तकनीकी दक्षता से अपने उपयोग योग्य बनाता है लेकिन इसका वास्तविक भौतिक आधार तो प्रकृति प्रदान करती है। मनुष्य अपने वातावरण से संसाधनों का दोहन करके आर्थिक तन्त्र को मजबूत करता है। वह भौतिक वातावरण को परिवर्तित करता रहता है जो उसकी रुचि, कौशल तथा शक्तियों पर निर्भर करता है। लेकिन मानव द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण में परिवर्तन की एक सीमा होती है जिसके बाहर जाने पर संसाधनों के सृजन के स्थान पर ह्रास प्रारम्भ हो जाता है।

मानव ने संसाधनों को (प्रकृति का उपहार) इनका स्वरूप बदल कर अत्यधिक उपयोगी बनाया है। प्राकृ तिक वातावरण के साथ समायोजन कर मनुष्य ने अनेक स्थानों पर प्रगति की है तथा मानवीय उपयोग के क्षेत्र विकसित किये हैं। इस क्रम में पृथ्वी पर भूमध्यरेखीय प्रदेशों में प्राकृतिक बनस्पति का दोहन किया गया, पश्चिमी यूरोप, पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, अर्जेन्टीना, दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड में पशुचारण किया गया। इसी प्रकार खनन कार्य तथा मत्स्य पालन भी विकसित किया गया। स्पष्ट है कि प्रकृति में विद्यामन विविध लक्षणों वाले प्राकृतिक परिवेशों के अनुसार विभिन्न प्रकार के संसाधनों का दोहन प्रारम्भ हुआ जिससे उनकी प्रकृ ति निरन्तर बदलती रही। संसाधनों की बदलती प्रकृति तथा मानवीय क्रियाओं में विविधता के कारण संसाधनों में विविधता आ गई। अतः इन्हें स्वतंन्त्र रूप में पहचानने के लिए वर्गीकरण की आवश्यकता महसूस की गई है।

मानव द्वारा प्रकृति में विद्यामान संसाधनों को अपने उपयोग में लेकर उद्देश्य पूर्ति को विकास का आधार माना जाता है। मनुष्य इनका दोहन प्राचीनकाल से करता रहा है। धीरे–धीरे इनके तीव्र दोहन में संधृत या पोषणीय ̈(नेजंपदंइसम) विकास की आवश्यकता महसूस की जाने लगी तथा वर्तमान समय में इनके आनुपातिक उपयोग हेतु इन्हें वर्गीकृत कर योजना बनाई जाने लगी है। संसाधन अनेक प्रकार के होते हैं जिनके वर्गीकरण के आधार भी भिन्न–भिन्न हैं। स्वामित्व की दृष्टि से संसाधन तीन प्रकार के होते हैं, जो क्रमशः व्यक्तिगत, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय हैं। धरातल पर उपलब्धता की दृष्टि से चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। प्रथम–सर्वत्र उपलब्ध संसाधन, जैसे–वायु, द्वीतीय–सामान्य रूप से उपलब्ध संसाधन, जैसे–कृषि भूमि, मृदा चारागाह भूमि आदि, तृतीय–सीमित उपलब्धता वाले संसाधन, जैसे–यूरेनियम, सोना आदि, चतुर्थ–संकेन्द्रित संसाधन–जो संसाधन केवल कुछ ही स्थानों पर मिलते हैं, जैसे–केरल तट पर थोरियम आदि। उपरोक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है कि किसी भी संसाधन को किस वर्ग विशेष में रखा जाए, यह इस तथ्य पर निर्भर करता है कि आप उसे किस दृष्टि से देखते हैं। विभिन्न सर्वमान्य आधारों पर संसाधनों का वर्गीकरण निम्न रूपों में किया जा सकता है–

1. उपयोग की सततता पर आधारित वर्गीकरण

(1) नवीनीकरण या नव्यकरणीय संसाधन

(2) अनवीनीकरण या अनव्यकरणीय संसाधन

(3) चक्रीय संसाधन

2. उत्पत्ति के आधार पर वर्गीकरण

(1) जैविक संसाधन

(2) अजैविक संसाधन

3. उद्देश्य पर आधारित वर्गीकरण

(1) ऊर्जा संसाधन

(2) कच्चा माल

(3) खाद्य पदार्थ

4. उपलब्धता के आधार पर

1. सर्वसुलभ संसाधन

2. सामान्य सुलभ संसाधन

3. दुलर्भ संसाधन

4. एकल संसाधन

4.4.1. उपयोग की सततता पर आधारित वर्गीकरण

किसी भी संसाधन के उपयोग की एक अवधि होती है। कुछ संसाधन न्यून अवधि के अन्दर समाप्त हो जाते हैं, जबकि कुछ का सतत उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार उपयोग की निरन्तरता या सततता के आधार पर संसाधनों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैः–

(1) नवीनीकरण या नव्यकरणीय संसाधन

इस श्रेणी में वे सभी संसाधन आते हैं जिनको पुनः उत्पादित किया जा सकता है। इस हेतु भौतिक, यान्त्रिक तथा रासायनिक प्रक्रियाएँ अपनाई जाती हैं। अतः ये संसाधन असमाप्य होते हैं व इनकी जीवन धारणीय पुनरावृत्ति सम्भव है। उदाहरणार्थ, वनों के क्षेत्र में काटे जाने के उपरान्त नये क्षेत्र में इन्हें पुनः उत्पादित किया जा सकता है। वन्य प्राणियों की संख्या में वृद्धि की जा सकती है। इसके अन्य उदाहरण सौर ऊर्जा, पवन जल, मृदा, कृषि, उपजें तथा मानव संसाधन हैं।

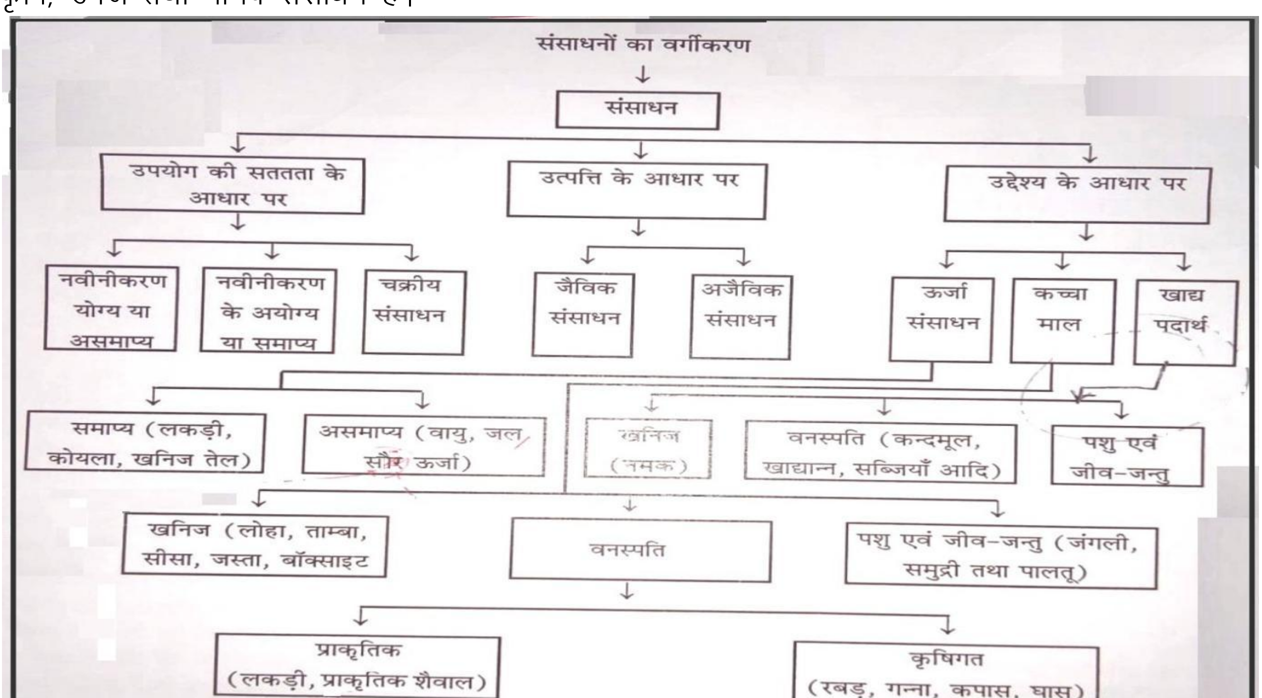

(2) अनव्यकरणीय संसाधन

संसाधनों के सतत् उद्योग का श्रेणी में ऐसे संसाधन जिनका एक बार दोहन के उपरान्त उनकी पुनः पूर्ति संभव नहीं है। इनकी मात्रा सीमित रहती है तथा निर्माण अवधि भी लम्बी होती है। अतः इस श्रेणी में संसाधनों का दोहन तीव्र गति से करने पर ये समाप्त हो जाते हैं। भूगर्भ में खनिज संसाधन इस श्रेणी के अन्तर्गत हैं। कोयले का दोहन एक ही बार किया जा सकता है, जबकि इसके निर्माण में करोड़ों वर्ष लगे हैं। पेट्रोलियम, प्रकृतिक गैस, तांबा, बॉक्साइट, यूरेनियम, थोरियम आदि संसाधन भी अनव्यकरणीय या समाप्य हैं।

(3) चक्रीय संसाधन

पृथ्वी पर कुछ ऐसे संसाधन पाये जाते हैं जिनका बार–बार प्रयोग किया जा सकता है, जल संसाधन को विभिन्न समय में विभिन्न रूपों में प्रयुक्त किया जा सकता है। इसी प्रकार लोहा भी विभिन्न रूपों में उपयोग में आता है।

4.4.2. उत्पति के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण

विभिन्न प्रकार के संसाधन अलग–अलग अवस्थाआँं में उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार उत्पत्ति के आधार पर संसाधनों का दो श्रेणियों में वर्गीकरण किया गया है–प्रथम भौतिक या अजैविक तथा द्वितीय जैविक संसाधन। भैातिक तथा जैविक संसाधन परस्पर एक–दूसरे से सम्बन्धित हैं। स्वयं मानव एक जैविक संसाधन है जो पृथ्वी के स्थलीय स्वरूपों में परिवर्तन करते हुए क्रियाशील रहता है। इसी आधार पर मनुष्य ने सांस्कृतिक विकास किया है। इनके एक–दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित रहने पर भी अनेक भिन्नताएँ हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है :–

(1) अजैविक संसाधन –

इस श्रेणी के अन्तर्गत अजैविक या अकार्बनिक संसाधन आते हैं जिनमें जीवन–क्रिया नहीं होती है तथा इनका नवीनीकरण सम्भव नहीं है। ये एक बार उपयोग में लेने के उपरान्त समाप्तप्रायः हो जोते हैं। अतः इनके समाप्त संसाधनों की श्रेणी में होने के कारण पोषणीय या आनुपातिक दोहन ही अनिवार्य है। जल, जमीन तथा खनिज इसके उदाहरण हैं। अजैविक संसाधनों के वितरण में असमानता पायी जाती है। कुछ संसाधन, जैसे–लोहा, एल्युमिनियम आदि विस्तृत क्षेत्रों में वितरित हैं। जबकि सोना, चाँदी, आणविक, खनिज सीमित क्षेत्रों में वितरित हैं। गिन्सबर्ग ने पृथ्वी तल पर स्थित धरातलीय स्वरूपों, शैलों, मृदाओं, खनिज सम्पदा, जल संसाधन आदि को भैतिक संसाधन माना है। ये सभी संसाधन प्रकृति प्रदत्त हैं जो पृथ्वी पर विभिन्न स्वरूपों में विभिन्न मात्रा में पाये जाते हैं। मानवीय सभ्यता के अभ्युदय में इनका विभिन्न रूपों में उपयोग हुआ है। भौतिक संसाधनों को मानव ने अनेक रूपों में परिवर्तित किया है। यह परिवर्तन ऐसे स्थानों पर नहीं हों पाया है जहाँ मानव ने अनेक रूपों में परिवर्तित किया है। यह परिवर्तन ऐसे स्थानों पर नहीं हो पाया जहाँ मानव ने प्रकृति के साथ समायोजन कर लिया है। ऐसे ग्रीनलैण्ड एवं अण्टार्कटिका में हुआ है।

(2) जैविक संसाधन –

जैव मण्डल में स्थित अनेक निश्चित जीवन–चक्र वाले संसाधन जैविक संसाधन कहलाते हैं। वन, वन्य प्रणाली, पशु, पक्षी, वनस्पति तथा अन्य छोटे तथा सूक्ष्म जीव जैव संसाधनों के उदाहरण हैं। जीवाश्मों के कायान्तरण के परिणामस्वरूप उन्पन्न होने के कारण कोयला तथा खनिज तेल को भी जैविक संसाधन ही कहते हैं। इनमें कुछ का नवीनीकरण हो सकता है, जैसे–वनस्पति वर्ग। जबकि कुछ नवीनीकरण के अयोग्य हैं, जेसे–खनिज तेल। इन संसाधनों को मानवीय क्रियाओं में प्रभावित किया है। ऐसे संसाधनों की मात्रा में वृद्धि या कमी भी की जा सकती है। पशुपालन, मत्स्यपालन, वृक्षारोपण आदि कार्यो से जैविक संसाधनों को बढ़ा सकते हैं जबकि वनोन्मूलन, संकटापन्न जीवों का शिकार करके कमी लायी जा सकती है। जैविक संसाधनो के दोहन में तकनीकी ज्ञान तथा उपयोग के ढंग का प्रभाव पड़ता है। ये चल साधन माने जाते हैं। जैविक संसाधनों के वितरण में भैागोलिक घटकों की प्रमुख भूमिका रहती है। उदाहरण के लिए उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र जलवायु में सघन वनस्पति मिलती है जबकि टुण्ड्रा क्षेत्रों में इसका अभाव पाया जाता है।

जैविक संसाधनों में अजैविक संसाधनों की तुलना में अधिक विविधता मिलती है। लेकिन ये कम कठोर होते हैं। साथ ही इनका विकास शीघ्र हो सकता है जबकि भैतिक संसाधनों के विकास मे दीर्घ अवधि लगती है। भौतिक संसाधनों की मात्रा निश्चित होती है तथा इसे घटा–बढ़ा नहीं सकते, लेकिन जैविक संसाधनों की मात्रा

में वृद्धि कर सकते हैं। मनुष्य मृदा या जल का निर्माण नहीं कर सकता जबकि वह वृक्षारोपण कर सकता है, जीवों की संख्या में भी वृद्धि कर सकता है। इस प्रकार भौतिक एवं जैविक संसाधनों का आधार एक ही (पृथ्वी) होते हुए भी इनमें अनेक भिन्नताएँ पायी जाती हैं।

4.4.3 उद्देश्य पर आधारित वर्गीकरण

प्रकृति में विभिन्न रूपों में वितरित संसाधनों का दोहन विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है। इस प्रकार उद्देश्यों के आधार पर **वर्गीकरण** निम्नवत है।

(1) ऊर्जा संसाधन

ऊर्जा संसाधनों द्वारा शक्ति के साधनों का विकास किया जाता है। यातायात के साधनों के संचालन में, उद्योगों व अन्य यान्त्रिक कार्यों में इस शक्ति का उपयोग किया जाता है। वर्तमान समय में ऊर्जा संसाधनों को किसी भी देश के विकास का मानक माना जाने लगा है। ऊर्जा संसाधनों में समाप्य तथा असमाप्य दोनों ही प्रकृ ति के संसाधन पाये जाते हैं। समाप्य या नवीनीकरण के अयोग्य संसाधनों की श्रेणी में कोयला, पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस आदि हैं। वन, जल विद्युत, पवन ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा तथा ज्वारीय ऊर्जा आदि को नवीकरणीय या असमाप्य ऊर्जा की श्रेणी में रखा गया है। ऊर्जा संसाधनों की बढ़ती महत्ता के कारण इनके जीवन धारणीय विकास की मूल भावना का विकास किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। इस हेतु उपयुक्त प्रौद्योगिकी का विकास किया जाना अनिवार्य प्रतीत होता है।

(2) कच्चा माल

कच्चा माल औद्योगिक विकास का प्रमुख आधार हैं। ये निम्नलिखित प्रकार के होते हैः—

1. **खनिज पदार्थ**

   भूगर्भ से खोदकर निकाले गये पदार्थों को इस श्रेणी में रखते हैं। इनमें लौह अयस्क, अलौह धातुएँ, गंधक, नमक, चूना—पत्थर, चीका, बालू, इमारती पत्थर तथा अन्य मिश्रित धातुएँ समाहित हैं।

2. **वनस्पति**—

   प्राकृतिक वनस्पति से प्राप्त प्रमुख एवं गौण, उपजें इस श्रेणी में आते हैं। इनमें लकड़ी, रेशेदार उत्पाद, गोंद, रबर, तेल, बीज, छालें, कार्क, शैवाल तथा अनेक प्रकार के कृषि उत्पाद सम्मिलित हैं।

3. **पशु**

   पशुओं को भी कच्चे माल की श्रेणी में रखते हैं। पशुओं से कच्चे माल के रूप में खालें, समूर, सींग, तेल, चर्बी, ऊन, बाल, रेशाम तथा हड्डियाँ प्राप्त होती हैं। ये उत्पाद जंगली, सामूहिक तथा पालतू पशुओं से प्राप्त किये जाते हैं।

4. **उत्पादित पदार्थ**—

   इसमें रेशे (कपास, सन, पटसन, हेम्स) बागानी रबर, तिलहन, बीज तथा इत्र निकलने वाले फूल आदि सम्मिलित हैं।

(3) खाद्य पदार्थ

मनुष्य प्राचीनकाल से खाद्य संग्रहक रहा है। खाद्य पदार्थ मुख्य रूप से तीन प्रकार के संसाधनों से प्राप्त किए जाते हैः—

1. खनिज—

हमारे भोजन में अधिकांश चट्टानों से प्राप्त नमक समाहित है जो मुख्यतया खाद्य पदार्थों के रूप में प्रयुक्त होता है।

2. वनस्पति—

हम भोजन का अधिकांश भाग वनस्पति उत्पादों से प्राप्त करते हैं। वनस्पति उत्पादों में फल, कन्दमूल,

पत्तियाँ एवं खुंबी (डनेीतववउ) आदि प्रमुख हैं।

3. पशु एवं जीव–जन्तु–

पशुओं एवं जीव–जन्तुओं से प्रमुख तथा गौण उपजें प्राप्त करते हैं। मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन, मत्स्य व्यवसाय आदि इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

4.4.4 उपलब्धता के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण –

संसाधनों का वितरण भूमण्डल पर बहुत ही असमान पाया जाता है। इस आधार पर जिम्मरमैन महोदय ने संसाधनों को चार वर्गों में बाँटा है जो निम्नलिखित है–

1. सर्वसुलभ संसाधन –

ऐसे संसाधन जो भूमण्डल के प्रत्येक भाग में पाये जाते है, सर्वसुलभ संसाधन कहे जाते है। जैसे – वायु में आक्सीजन, प्रकाश, जल इत्यादि। इनकी उपलब्धता न्यूनाधिक ही सही पर सर्वत्र पाये जाते है।

2. सामान्य सुलभ संसाधन

सामान्यतया अधिकांश क्षेत्रों में कम या अधिक मात्रा में पाये जाने वाले संसाधन सामान्य सुलभ संसाधन कहलाते है। कृषि योग्य मिट्टी, वनस्पति, पशु आदि इसके उदाहरण है।

3. दुर्लभ संसाधन

किसी–किसी क्षेत्र में पाये जाने वाले संसाधन दुर्लभ या विरल संसाधन कहे जाते है, जैसे सोना, हीरा, चाँदी आदि।

4. एकल संसाधन

ऐसे संसाधन जो पृथ्वी पर किसी एकाध स्थान पर ही पाये जाते है, एकल संसाधन कहलाते है। जैसे क्रियोलाइट खनिज जो केवल ग्रीनलैण्ड में ही पाये जाते है।

4.5 संसाधन संरक्षण का अर्थ

संसाधन संरक्षण का अर्थ संसाधनों के अभीष्ट उपयोग से है। संरक्षण का अर्थ संसाधनों का उपयोग न करना कदापि नहीं है, न ही संसाधनों के उपयोग में कंजूसी करना है और न ही संसाधनों की आवश्यकता पड़ने पर उसे अलग करके संचित करना है। अपितु संसाधन संरक्षण का अर्थ उसका सार्थक सदुपयोग, क्षरण से बचाना और क्षरण हाने पर उसका पुर्नस्थापन करना है। संसाधन संरक्षण किसी देश–काल में प्राकृतिक संसाधन आधार, जनसंख्या एवं उनके जीवन स्तर के मध्य अनुकूलन को प्रतिपादित करता है। यह तात्कालिक सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कल्याण के कार्यो में प्रगति के लिए संसाधनों के सर्वश्रेष्ठ उपयोग का पक्षधर है। अतः संसाधन संरक्षण का अर्थ संसाधनों का अधिक समय तक अधिक से अधिक मनुष्यों की आवश्यकता पूर्ति हेतु अभीष्ट उपयोग करना है। इस प्रकार संसाधन संरक्षण से तात्पर्य संसाधनों के अधिकाधिक समय तक अधिकाधिक मनुष्यों की अनुकूलतम आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अनुकूलतम उपयोग करना है। अतः संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग ही संसाधन संरक्षण कहलाता है। यह संसाधनों को टिकाऊ या संसाधन संपोषणीय बनाने की उत्तम विधि है। विभिन्न विद्वानों ने संसाधन संरक्षण को निम्नानुसार परिभाषा किया है–

चार्ल्स वान हेज के अनुसार " संरक्षण का आशय यह है कि संसाधनों का प्रयोग इस प्रकार से किया जाय जिससे कि वे प्राकृतिक पैतृक सम्पत्ति पूरे परिमाण में भावी पीढ़ी के लिए भी उपलब्ध हो सके। "

जिम्मरमैन (1955) के अनुसार " दीर्घकालीन भावी लाभ प्राप्त करने के लिए उत्तरकालीन स्वीकृत उद्देश्यों के उपयोग की वर्तमान आवश्यकता को कम करने की कोई भी विधि संरक्षण कही जा सकती है।"

पारकिन्सन के अनुसार " संरक्षण हमारे संसाधनों के प्रयोग द्वारा अधिकतम लाभ प्राप्त करके सामाजिक सुरक्षा की खोज है। इसमें चल सम्पत्ति के निमार्ण, रक्षा के प्रयत्नों, अधिक प्रभावी विधियों की खोज, समुचित रोजगार, तथा संसाधनों के नवीकरण को पूर्ववत बनाये रखना।"

एली के अनुसार " वर्तमान पीढ़ी का भावी पीढ़ी के लिए त्याग ही संरक्षण है।"

अतः उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संसाधनों का विवेकपूर्ण अभीष्ट उपयोग, पुनर्स्थापन तथा जनहित के कार्यो में उसके उपयोग को संरक्षण कहा जाता है। इसका अर्थ संसाधनों के संचय से नहीं है अपितु उत्पादन कार्यों के लिए विवेकपूर्ण उपयोग और क्षरणशील संसाधनों के पुनर्स्थापन से है।

4.6 संरक्षण की आवश्यकता

संसाधन संरक्षण की आवश्यकता इसके अन्धाधुन्ध उपयोग के कारण पड़ी क्योंकि संसाधन सीमित है। सदियों से मनुष्य संसाधनों का उपयोग करता चला आ रहा है, उसकी आवश्यकतायें निरन्तर बढ़ती जा रही है। जनसंख्या भी बढ़ती चली जा रही है। इस तरह जनसंख्या एवं उसकी आवश्यकतायें बढ़ जाने से संसाधनों का उपभोग तेजी से बढ़ा है। बीसवीं सदी के अन्तिम दो–तीन दशकों में संसाधनों के अन्धाधुंध दोहन से संरक्षण की समस्या गम्भीर हो गयी। इसी दौरान विश्व में जनसंख्या में भी सर्वाधिक वृद्धि हुई। जिसके कारण जनसंख्या की आवश्यकताओं में भी तीव्र वृद्धि हुई। भोजन, वस्त्र, आवास, यातायात के साधनों और विविध प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संसाधनों का अत्यंत तीव्र गति से विदोहन होने लगा। संसाधनों के अत्यधिक विदोहन के कारण अनेक विश्वव्यापी पर्यावरणीय समस्यायें पैदा हो गयी है। तब जाकर मनुष्य को ज्ञान हुआ कि संसाधनों पर बढ़ते दबाव पारिस्थैतिकी तंत्र कमजोर हुआ है। इन कारणों से लोगों का ध्यान संरक्षण की ओर आकृष्ट हुआ है।

4.7 संरक्षणके नियम

मानव सभ्यता प्राकृतिक संसाधनों के अन्धाधुन्ध शोषण से अधिक दिन तक टिकाऊ नहीं रह सकती है। प्राकृतिक संसाधन पूंजी की तरह है, जिनका समुचित ढ़ग से उपयोग होना चाहिए।इसलिए संसाधन संरक्षण से सम्बन्धित नियमों का पालन करना आवश्यक हो जाता है। संरक्षण के नियम अधोलिखित है–

1. सबसे पहले किसी देश या प्रदेश के समस्त संसाधनों का ज्ञान और उसका पूर्ण लेखा–जोखा, विशेषताएं एवं गुण मालूम होना चाहिए। इसके लिए वातावरण के तत्वों के पारस्परिक अर्न्तसम्बन्धों का ज्ञान भी आवश्यक है।
2. तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कम आर्थिक महत्व के संसाधनों का विनष्ट करना अनुचित है। क्योंकि भविष्य में तकनीकि ज्ञान में अथव्द्धि एवं अनुकूल परिस्थितियों में उसका लाभदायक उपयोग हो सकता है।
3. ऐसे संसाधन जिसको बढ़ाया या समुन्नत किया जा सकता है, उसके लिए पूरा प्रयास किया जाना चाहिए। जैसे मिट्टी को लम्बे समय तक उर्वर बनाये रखने हेतु उर्वरकों का ढ़ग से उपयोग तथा फसलों में हेर–फेर कर किया जा सकता है।परन्तु गलत भूमि उपयोग से इसे कुछ वर्षों में ही नष्ट किया जा सकता है।
4. समाप्य एवं सीमित मात्रा में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग वैज्ञानिक ढ़ग से तथा आवश्यक कार्यों में ही किया जाना चाहिए।
5. तकनीकि ज्ञान–संवर्द्धन द्वारा ऐसे अनुसंधान का होना आवश्यक है कि जिससे सीमित मात्रा में उपलब्ध संसाधनों का नया–नया विकल्प मिलता रहे। इससे न केवल संसाधनों की उपलब्धता बनी रहेगी अपितु नये संसाधनों का सुजन भी होता रहेगा। जैसे सीमित मात्रा में प्राप्त कोयला एवं पेट्रोलियम की जगह पनबिजली या सौर ऊर्जा का वैकल्पिक उपयोग श्रेयकर है।
6. संसाधन समष्टियों का उपयोग संतुलित, समुचित और बहुउद्देशीय होना चाहिए।
7. समाजिक–आर्थिक कल्याण के लिए संतुलित विकास के साथ संसाधनों का उपयोग करना चाहिए।

   ऐसे संसाधनों जिनका अत्यधिक शोषण हो गया है उनके पुर्नस्थापन और विकास पर ध्यान देना चाहिए।
8. संसाधन संरक्षण के सरकार के साथ स्वयसेवी संगठनों तथा गैर–सरकारी स्तरों पर जागरूकता व सहयोग देना आवश्यक है।

4.8 सारांश

मानव स्वयं संसाधन होने के साथ संसाधनों की प्रकृति बदल देता है। मानव अपने श्रम वं तकनीकी ज्ञान द्वारा किसी भी पदार्थ को मानव उपयोगी बनाकर संसाधन बना सकता है। संसाधन प्रकृति के सम्पूर्ण जैव जगत का आधार है। संसाधनों की उपलब्धता, समाज के सामाजिक आर्थिक समृद्धि का आधार है लेकिन संसाधनों के गलत उपयोग के कारण पर्यावरण संकट उत्पन्न हो रहे हैं। संसाधनों का अति दोहन मानवीय अवनति भी कर सकता है। इस इकाई का अध्ययन आपको संसाधनों की संकल्पना, संस्कृति संसाधनों के वर्गीकरण, मानव संसाधनों एवं प्राकृतिक संसाधनों को समझने में सहायक होगा।

4.9 बोध प्रश्न

1. संसाधनों की संकल्पनाओं वर्णन कीजिए।

2. संसाधन कावर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

3. संसाधन संरक्षण का अर्थ, आवष्यकता एवं नियम का वर्णन कीजिए।

4.10 बहुविकल्पीय प्रश्न

1. जिन संसाधनों का एक से अधिक बार उपयोग किया जा सकता है उन्हें कहते हैं–

(अ) जैविक संसाधन (ब) चक्रीय संसाधन

(स) अजैविक संसाधन (द) ऊर्जा संसाधन

2. जैविक संसाधन है –

(अ) वन (ब) पशु–पक्षी

(स) वन्यजीव (द) उपरोक्त सभी

3. संसाधन शब्द बना है–

(अ) अंग्रेजी (ब) हिन्दी

(स) ग्रीक (द) लैटिन

4. संसाधन होते नहीं बनाये जाते है" संकल्पना किसने दी–

(अ) जिम्मरमैन (ब) गाउडी

(स) एस जिन्स वर्ग (द) उपरोक्त सभी

5. उत्पाति के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण है।

(अ) जैविक संसाधन (ब) अजैविक संसाधन

(स) समाप्य संसाधन (द) (अ) व (ब) दोनों

बहुविकल्पीय प्रश्न का उत्तर – 1. ब 2. द 3. अ 4. अ 5. द

4.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, जगदीश, एवं सिंह, के.एन.(2010) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।
2. मौर्य, एस. डी. (2022), आर्थिक भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
3. श्रीवास्तव, वी.के. एवं राव, बी.पी. (2002), आर्थिक भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
4. गौतम, अलका, (2019) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
5. अलेक्जेंडर, जे.डब्लू. (1979) इकोनॉमिक ज्योग्राफी, प्रेंटिस हाल,
6. लांगमैन, जी.सी. एण्ड मार्गन, जी.सी. (1982) हयूमन एण्ड इकोनॉमिक ज्योग्राफी,आक्सफोर्ड प्रेस.

इकाई–05 खनिज संसाधन–खनिजों का महत्व एवं उपयोग, खनिजों के प्रकार, धात्विक एवं अधात्विक खनिज

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 खनिज संसाधन

5.4 खनिजों की उत्पत्ति

5.4.1 जलतापीय विधि

5.4.2 चुम्बकीय वियोजन विधि

5.4.3 सम्पर्क निक्षेपण विधि

5.4.4 अवसाद विधि

5.4.5 अवशिष्ट अपक्षयण विधि

5.5.6 उर्ध्वापतन विधि

5.5 खनिजों का महत्व

5.6 खनिजों का उपयोग

5.7 खनिजों के प्रकार

5.7.1 धात्विक खनिज

5.7.2 अधात्विक खनिज

5.8 सारांश

5.9 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

5.10 बोध प्रश्न

5.11 संन्दर्भ ग्रन्थ

5.1 प्रस्तावना

मानव सभ्यता का विकास सोपान पाषाण संस्कृति, ताम्र संस्कृति, कास्य संस्कृति एवं लौह संस्कृति होते हुए वर्तमान स्थिति में पहुंचा है। विभिन्न संस्कृतियों के विकास में खनिज संसाधनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसीलिए इस विकासक्रम को खनिजों के नाम से ही जाना जाता है। मनुष्य एक संसाधन के रूप में व्यसायिक कुशलता, तकनीकि आदि के माध्यम से विभिन्न खनिजों का उपयोग करआर्थिक क्रियाओं को सम्पादित करता है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का निम्नलिखित उद्देश्य है–

1. खनिजों के बारे में जान सकेंगे।
2. खनिजों के महत्व को समझ सकेंगे।
3. खनिजों की उत्पत्ति के बारे अभिव्यक्ति कर सकेंगे।

5.3 खनिज संसाधन

खनिज एक प्रकार का रासायनिक यौगिक है जो प्राकृतिक रूप से अजैविक प्रक्रियाओं के द्वारा निर्मित होते है। खनिजों की संरचना रवेदार होती है। कुछ खनिज एक ही तत्व के बने होते है जैसे हीरा। अधिकांश दो या दो से अधिक खनिजों के बने होते हैं। खनिजों के गुण में रवेदार आकृति, कठोरता, घनत्व, रंग, चमक, आदि होते है। सभी खनिजों के गुण अलग होते है। वैज्ञानिको के अनुमान के अनुसार पृथ्वी में 1600 से अधिक खनिज पाये जाते है। परन्तु इनमें से 200 खनिज आर्थिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है।

20वीं सदी में मनुष्य द्वारा ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों यथा कोयला, पेट्रोलियम, गैस एवं विद्युत के प्रयोग से खनिजों का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया गया। मानव संसाधन एवं खनिज संसाधन के सम्बन्ध से ही मानव संस्कृति के विकास का स्तर निर्धारित होता है। इसे हम निम्न रेखाचित्र के माध्यम से समझ सकते है–

मानव संसाधन (व्यवसायिक कु''लता, तकनीकि एवं सूचना तंत्र)	**खनिज संसाधन** (संज्ञान, उत्खनन, परिष्करण, उपयोग)	= **मानव के सांस्कृतिक विकास का स्तर**

मनुष्य एक संसाधन के रूप में व्यवसायिक कुशलता, तकनीकि विकास एवं सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से खनिज संसाधनों के सम्बन्ध में अपने संज्ञान में वृद्धि करता है। खनिजों के उत्खनन विधि में परिष्कार करके उसकी सहज उपलब्धता सुनिश्चित कराके औद्योगिक क्रियाओं को गति प्रदान करता है। इस प्रकार से खनिजों के प्रयोग से मनुष्य उसकी आर्थिक संसाधनों में वृद्धि करके समाज के जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि करता है। परिणामस्वरूप मनुष्य के सांस्कृतिक विकास का स्तर बढ़ जाता है। अतः खनिज संसाधन मनुष्य के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के उपादान कहे जा सकते है।

5.4 खनिजों की उत्पत्ति

खनिजो की उत्पत्ति पृथ्वी पर अनेक प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप होती है जिनमें प्रमुख विधियों का विश्लेषण अधोलिखित है–

5.4.1 जलतापीय विधि

पृथ्वी के अन्तरतम से जब मैगमा पटल विरूपणी शक्तियों द्वारा ऊपर की तरफ उत्क्षेपित होता है तो उसके बड़ी मात्रा में गैस एवं द्रव भी चलायमान हो जाते है। ये द्रव एवं गैस रास्ते में सम्पर्क में आने वाली विभिन्न गुणधर्म वाली खनिजों को घुलाते एवं समेटते हुए ऊपर की ओर चलते है। लम्बे समय से इन क्रियाओं के माध्यम से द्रवीभूत शैलों के अवशीतलन प्रक्रिया में खनिज गुण–धर्म के अनुसार एकत्रित होते है। इस प्रकार से खनिजों के निक्षेपीकरण को जल तापीय विधि कहते है।

5.4.2 चुम्बकीय वियोजन विधि

जल तापीय विधि द्वारा विभिन्न तापमान पर विभिन्न गुणधर्म वाले खनिजों का रवीकरण भिन्न आकार में होता रहता है। सबसे कम घुलनशील खनिजों का रवीकरण सबसे पहले होता है। सबसे अधिक घुलनशील खनिजों का रवीकरण सबसे बाद में होता है। रवीकरण की प्रक्रिया के दौरान इनका निक्षेपीकरण भी होता है। निक्षेप के समय विभिन्न गुणधर्म के खनिज अलग होते रहते है। लौह खनिज का रवीकरण सबसे अंत में होता है। द्रवीभूत शैलों में ऐसे खनिजों के यौगिक विद्यमान रहते है जो अवशिष्ट द्रवों के शीतल होने के दौरान प्रचुर मात्रा में मोटी परतों के रूप में एकत्रित हो जाते है।

5.4.3 सम्पर्क निक्षेपण विधि

जब द्रवीभूत शैलों के वाष्प एवं गैस पार्श्ववर्ती चट्टानों मे चले जाते है तो वे विभिन्न प्रकार के खनिजों के सम्पर्क में आते है। जिसके कारण सम्पर्क में आने वाले वाष्प एव गैसों का अवपतन होता रहता है और यह निक्षेपित होकर जमा हाते रहते है। ऐसे निक्षेप आग्नेय चट्टानों के समीपस्थ होते है।

5.4.4 अवसाद विधि

अवसादन विधि में खनिजों की उत्पत्ति दो प्रक्रियाओं से होती है—प्रथम रासायनिक अवसादन दूसरा यांत्रिक अवसादन। रासायनिक अवसादन में घुलनशील विलयन के माध्यम से खनिज का एक स्थान से दूसरे स्थान पर अवपतन के कारण निक्षेपण होता है। यांत्रिक अवसादन में हवा, जल, हिमनद आदि के द्वारा खिसकते हुए विभिन्न स्थानों पर इनका जमाव होता रहता है। पेट्रोलियम एवं अन्य ऊर्जा संसाधनों की उत्पत्ति इसी विधि से हुई है।

5.4.5 अवशिश्ट अपक्षयण विधि

इस विधि में अम्ल की प्रमुख भूमिका होती है। अम्ल युक्त विलयन जब चट्टानों के सम्पर्क में आते है तो घुलनशील तत्व अपनी प्रकृति के अनुसार घुल कर उन चट्टानों से अलग हो जाते है। जिसके फलस्वरूप सिर्फ अघुलनशील खनिज ही शेष बचते है। इस प्रकार अशुद्धियों के घुलकर बह जाने के कारण खनिज की धातु सम्पन्नता बढ़ जाती है। बाक्साइट खनिज का निमार्ण इसी विधि द्वारा होता है।

5.5.6 उघ्र्वपातन विधि

ज्वालामुखी द्वारा निःसृत गैस रास्तें में सम्पर्क में आये खनिजों को अपने साथ सम्बद्ध होकर भूपटल पर आती है तो उर्घ्वपातन क्रिया के फलस्वरूप खनिजों का एकत्रीकरण आस—पास के क्षेत्रों में हो जाता है।

5.5.7 कायान्तरण प्रक्रिया

अधिक दबाव, ताप एवं लम्बी कालावधि में चट्टानों का रूप परिवर्तित हो जाता है, जिससे उनमें स्थित तत्व खनिजों के रूप में बदल जाते है। इसी प्रक्रिया के द्धारा सिलिका से सिलिमनाइट खनिज बनता है।

5.6 खनिजों की विशेशताएं

खनिज संसाधनों की आधारभूत विशेषताएं होती है जिसके आधार पर उसका निष्कर्षण किया जाता है। इनकी विशेषताएं अधोलिखित है—

5.6.1 खनिज निक्षेप का वितरण सीमित क्षेत्र में होता है—

अन्य प्राकृतिक संसाधनों की अपेछा इनका वितरण सीमित क्षेत्र में होता है। यह बिखरे हुए छोटे—छोटे क्षेत्रों में मिलते है। कोयला, लौह अयस्क, पेट्रालियम आदि के क्षेत्र काफी विस्तृत होते है परन्तु इनका वितरण विशिष्ट क्षेंत्रों में ही पाया जाता है। कुछ खनिज तो बड्डुत ही सीमित क्षेत्र में पाये जाते है जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में मॉलिब्डेनम धातु का निक्षेप केवल एक वर्गमील में ही पाया जाता है परन्तु विश्व का 22 प्रतिशत मॉलिब्डेनम धातु का उत्पादन यही पर होता है। भारत में भी खनिजों का क्षेत्र बिखरा हुआ पाया जाता है।

5.6.2 खनिज निक्षेप भूगर्भ में छिपे रहते है —

अधिकांश खनिज भूगर्भ में गहराई में छिपे रहते है जिससे इनका आकलन एवं पता लगाना कठिनसाध्य होता है। इसके सर्वेक्षण एवं उत्पादन में बड़ें स्तर पर पूंजी, श्रम एवं बड़े—बड़े संयत्र लागाना पड़ता है। पेट्रोलियम की खोज के लिए एक हजार फुट गहरे कूप का भेदन करना होता है।उपग्रह आधारित दूरसंवेदन की तकनीकि ने इस काम को काफी आसान कर दिया है।

5.6.3 खनिज निक्षेप का निश्चित भंडार और वे अनव्यीकरण है—

खनिज संसाधनों की निमार्ण प्रक्रिया में करोड़ों वर्ष का समय लगता है। इनके निमार्ण में ताप, दबाव व भूगर्भिक प्रक्रियाओं का योगदान रहता है। खनिज निक्षेपों का भण्डार सीमित होता है, एक बार उत्खनन कर निकाल लेने के बाद ये भंडार हमेशा के लिए समाप्त हो जाते है। कोयला, खनिज तेल, गैस आदि ऐसे खनिजों के भंडार एक बार उपयोग के बाद समाप्त हो जाते है।लोहा, सोना, चांदी आदि कुछ ऐसे खनिज है जिनका पुनः उपयोग हो जाता है।

5.6.4 खनिज धातुओं से बनी वस्तुएं काफी टिकाऊ होती है—

धात्विक खनिजों से बनी वस्तुएं टिकाऊ होती है। इन्हे वस्तुओं या पिण्डों के रूप सुरक्षित रखा जा सकता है।

5.6.5 खदानों से खनिजों का उत्खनन खर्चीली होती जाती है–

उत्खनन प्रक्रिया के दौरान खनिजों का भंडार कम हो जाने और निरन्तर खदानों की गहराई बढ़ जाने के कारण उसका उत्पादन श्रमसाध्य और खर्चीला हो जाता है। जिसके कारण आर्थिक दृष्टि से खर्चीली खदानों से उत्खनन बंद कर दिया जाता है। इसलिए अधिक धातुसम्पन्न खदानों की खोज होती रहती है।

5.6.6 खनिज का उत्पादन बाजार तथा मांग के अनुसार घटता–बढ़ता है–

बाजार की मांग के अनुरूप ही खदानों से खनिजों का उत्खनन होता है। अधिक उँचे मूल्य वाले खनिजों के लिए कम धातु सम्पन्नता वाले खदानों से भी उतखनन किया जाता है। परन्तु मांग में कमी होने के कारण ऐसे खदानों से उत्खनन बंद कर दिया जाता है। मूल्य में कमी होने से केवल उच्च धातु सम्पन्नता वाले खदानों से ही उत्पादन किया जाता है। ऐसे खनिज जो सामरिक या राष्ट्रीय महत्व के होते है मँहगे होने के बाद भी उन्का उत्पादन किया जाता है जैसे यूरेनियम, थोरियम, सोना आदि ।

5.7 खनिज का संचित भंडार

खनिजों के संचित भंडार का आशय यह है कि धरातल में खनिजों के जमाव का ज्ञात परिमाण जो आर्थिक दृष्टि से निष्कर्षणीय हो। खनिज पदार्थों का संचित भंडार ज्ञात करना बहुत दुष्कर कार्य है। धातु सम्पन्नता, उत्पादनशीलता, भौतिक–भूगर्भिक विशेषताओं आदि का पूर्ण ज्ञान आज के समुन्नत प्राविधिक युग में भी ज्ञात करना कठिन कार्य है। खनिजों के ज्ञात भंडार जो प्राविधिकी या आर्थिक दृष्टि से अनिष्कर्षणीय जमाव को संसाधन कहते है। संचित भंडार का आकलन हर अध्ययन के बाद बदलता रहता है। संचित भंडार के आकलन में उत्खनन की लागत, शुद्धिकरण की मात्रा, धात्विक सम्पन्नता, प्राविद्यिकी, भौगोलिक स्थिति, परिवहन खर्च, मांग आदि महत्वपूर्ण तथ्य होते है। संचित भंडार मात्र अनुमान होता है जो उक्त तथ्यों के आधार पर परिवर्तित होता रहता है। इसके लिए अधोलिखित शब्दावलियों का प्रयोग किया जाता है–

5.7.1 मापित संचित राशि

खनिजों की प्राथमिक खुदाई या उत्खनन तथा कई क्षेत्रों से चट्टानों के नमूने एकत्रित कर जमाव की धातु सम्पन्नता का आकलन टनों में किया जाता है तो उसे मापित संचित राशि कहते है।

5.7.2 ज्ञापित संचित राशि

जब संचित राशि का आकलन चट्टानों की संरचना, भूगर्भिक इतिहास एवं अंशतः नमूने आदि के आधार पर किया जाता है तो उसे ज्ञापित संचित राशि कहते है।

5.7.3 आकलित संचित राशि

स्थानीय एवं प्रादेशिक भूगर्भिक दशाओं के आधार पर आकलित खनिज भंडार को आकलित संचित भंडार कहते है।

5.7.4 प्रमाणितनिक्षेप

खनिजों के ऐसे निक्षेप जो तीन तरफ से स्पष्ट दिखते हो तथा उनकी सीमाएं निर्धारित हो तो उसे प्रमाणित निक्षेप कहते है।

5.7.5 सम्भावितनिक्षेप

जब खनिजों के निक्षेप दो तरफ से दृष्टव्य हो तथा उसकी सीमा रेखाएं निर्धारित न हो तो उसे सम्भावित निक्षेप कहते है।

5.7.6 सम्भाव्यनिक्षेप

जिन क्षेत्रों में वहां की भूगर्भिक संरचना के अनुसार खनिजों के निक्षेप पाये जाने की सम्भावना प्रतीत हो उसे सम्भाव्य जमाव की संज्ञा दी जाती है।

5.8 खनिज उत्खनन को प्रभावित करने वाली दशाएं एवं कारक

खनिज संसाधनों की मात्र उपलब्धता से ही उसका उत्खनन नहीं सम्भव नहीं हो पाता है। इसके लिए उत्ख्नन के लिए विभिन्न कारक एवं दशायें उत्तरदायी है, जिसका विवेचन अधोलिखित दो आधारों पर किया गया है–

5.8.1 प्राकृतिक दशायें–

खनिजों के उत्खनन में प्राकृतिक दशाएं अत्यंत महत्पूर्ण है। जो खनिज सर्वाधिक महत्व के एवं मूल्यवान होते है, ऐसे खनिजों के उत्खनन के प्रयास सबसे ज्यादा किये जाते है। मूल्यवान खनिजों के लिए कठोर प्राकृतिक दशाओं के बावजूद उत्खनन किया जाता है। जैसे आस्ट्रेलिया के मरूस्थल में सोने की खानों से उत्पादन हो रहा है। आर्थिक दृष्टि से खनिजों की सम्पन्नता भी उसके उत्खनन को प्रोत्साहित करने का महत्वपूर्ण कारक है क्योंकि सम्पन्नता प्रकृति प्रदत्त होती है। सीमित भंडार वाले खानों की अपेछा विशाल राशि वालों खानों से उत्खनन पर अधिक ध्यान दिया जाता है। दुर्गम भौगोलिक स्थिति वाले खनिज भंडार की अपेछा सुगम स्थिति वाले भंडार उत्खनन को प्रोत्साहित करते है। यदि खनिज का जमाव पतली पेटी या विदीर्ण अवस्था में प्राप्त है तो यह उत्पादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है।

5.8.2 आर्थिक दशायें–

प्राकृतिक दशाओं के अनुकूल होने बावजूद भी यदि प्राविधिक ज्ञान एवं औद्योगिक विकास की अनुकूल दशाओं के ना होने पर भी खनिजों का उत्पादन सम्भव नहीं होता है।औद्योगिक अर्थतंत्र खनिजों की महत्ता अधिक और कृषि अर्थव्यवस्था में कम होती है। यही कारण है विकसित अर्थव्यवस्था वाले देशों में खनिजों की मांग अधिक होने से खनिज संसाधनों का उत्पादन अधिक होता है। जब तक खनिज उत्खनन की प्राविधिकी विकसित न हो तब तक उत्खनन बाधित होता है। खनिज उत्खनन में सामाजिक–राजनीतिक स्थिरता भी एक प्रमुख कारक है। पिछड़े समाज में खनिजों की आवश्यकता सीमित होती है, जिससे वहां उसके उत्पादन का समुचित विकास नहीं हो पाता है। विकसित और उच्च्य जीवन–स्तर के समाज की जीवन पद्धति प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से खनिजों का अधिक उपयोग करती है। पिछड़े देशों में उच्च्य स्तर का खनिज होने के बावजूद पिछड़े जीवन–स्तर के कारण खनिजों के दोहन के संसाधन जुटाना कठिन हो जाता है। उदाहरण स्वरूप हम अफ्रीका को ले सकते जहां बहूमूल्य संसाधनों का भंडार पड़ा हुआ है लेकिन उनका तकनीकि विकास अभी पिछड़ी अवस्था में है। जिसके कारण विदेशी कम्पनियां अपने लाभ के लिए उत्खनन का कार्य कराती है।

5.9 खनिजों का महत्व

खनिज आधुनिक युग में अत्यंत महत्वपूर्ण है। आज का औद्योगिक अर्थतंत्र पूर्णरूपेण खनिज पर आधारित है। संयत्रों का निमार्ण, कच्चे माल एवं ऊर्जा की पूर्ति खनिजों से ही होती है। उद्योग–घन्धें के स्थापना से लेकर वस्तुओं के उत्पादन, परिवहन एवं व्यापार के हर स्तर पर आधारभूत संसाधनो के रूप में इनका उपयोग है। खनिजों के बिना आर्थिक क्रियाकलाप की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। किसी देश की आर्थिक स्थिति खनिज के दोहन पर निर्भर है। जिन देशों के पास खनिजों को प्राप्त करने से लेकर दोहन तक की उच्च प्रौद्योगिकी है, उन्हीं का वर्चस्व पूरे विश्व में पाया जाता है। कृषि, उद्योग,परिवहन, संचार, आयुध आदि सभी का विकास खनिज पर ही आधारित है। औषधि निमार्ण, भवन निमार्ण, मनोरंजन, सौन्दर्य प्रसाधन,शिक्षा आदि के क्षेत्रों में इनका उपयोग किया जाता है। यह किसी भी देश के लिए अमूल्य प्राकृतिक सम्पदा होते है एवं राष्ट्रीय समृद्धि के प्रतीक है।

खनिजों में कुछ व्यवसायमूलक होते है तो कुछ गैर–व्यवसाय मूलक होते है। जिन खनिजों का उपयोग व्यावसायिक कार्यों में किया जाता है उन्हें व्यावसायमूलक खनिज के अन्तर्गतरखते है। जिन खनिजों का महत्त्व वर्तमान उत्खनन स्थिति के अनुसार लाभप्रद नहीं है, उन्हें गैर व्यावसायिक मूलक के अन्तर्गत रखते है। ऐसा इसलिए होता है जब खनिज की गुणवत्ता निम्न कोटि की होती है या खनिज की मात्रा कम पायी जाती है या दुर्गम स्थिति के कारण उत्खनन सम्भव नहीं हो पाता तो वे गैर व्यावसायिककी श्रेणी में आ जाते है। यही कारण है कि विश्व में खनिजों के उत्खनन का विकास उन्हीं क्षेत्रों में हुआ है जहां खनिज उत्तम कोटि के है और आवागमन के उचित साधन एवं उत्खनन हेतु समुन्नत प्रौद्योगिकी उपलब्ध है। भारत में खनिज तेल की नितांत

आवश्यकता है परन्तु खनिज तेल के निष्कर्षण की समुन्नत तकनीकि के लिए विदेश पर निर्भर रहने के कारण बड़े स्तर पर उत्त्खनन का कार्य सम्पन्न नहीं हो पा रहा है, जिसके कारण खनिज तेल के लिए विदेश पर निर्भर रहना पड़ रहा है।

5.10 खनिजों का उपयोग

मनुष्य के जीवन स्तर में वृद्धि के साथ विविध खनिजों के उपयोग की मांग बढ़ती रहती है। इसी प्रकार से खनिजों का उत्पादन और उपभोग के लिए नई मशीनों, नये तकनीकों का विकास होते रहना जरूरी होता है। खनिजों में लौह धातु आधुनिक यांत्रिक सभ्यता की धुरी है। अधिकांश मशीनों का ढ़ाचा और पार्ट बनाने में लौह धातु का उपयोग होता है। लौह पूरक धातुओं जैसे क्रोमियम, कोबाल्ट, मैगनीज, निकेल आदि का भीउपयोग करके विशिष्ट गुणधर्म वाले धातुएं बनायी जाती है। मैगनीज को लौह अयस्क के साथ मिश्रित कर घर्षण अवरोधी इस्पात बनाया जाता है। टंगस्टन का उपयोग बिजली के बल्बों के तन्तु एवं जेट इंजन निमार्ण में होता है क्योंकि इनका गलनांक अधिक होता है।

लोहे के बाद औद्योगिक उत्पादन में सबसे अधिक महत्व एवं उपयोग ताँबा का है। आदि काल से ही मानव ने इसका उपयोग औजार, सिक्के आदि के रूप में उपयोग करता रहा है। विधुत का सुचालक होने के कारणइलेक्ट्रानिक यंत्रों में इसका बहुतायत उपयोग होता है। तांबा के जस्ता एवं सीसा मिलाकर पीतल बनाया जाता है जिसका उपयोग बर्तन बनानें में किया जाता है। तांबे के टिन को मिला कर कांस्य बनाया जाता है जिसका उपयोग प्रागैतिहासिक काल से ही हो रहा है। टिन हल्की एवं धातुवर्द्धक धातु है। इसकी अत्यंत पतली चादर बनाई जा सकती है। वायुयान तथा विद्युत उद्योगों में टिन का उपयोग होता है। एल्युमीनियम का निर्माण बाक्साइट खनिज से होता है जिसका उपयोग इलेक्ट्रानिक उद्योगों में होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि खनिजों के उपयोग से विभिन्न मानवोपयोगी वस्तुओं के निमार्ण होता है। कल–कारखानों की स्थापना से लेकर वस्तुओं के उत्पादन तक में खनिज संसाधनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

5.11 खनिजों के प्रकार

भूपटल में लगभग 1600 से अधिक खनिज पदार्थ पाये जाते है। जिनमें से 200 खनिजों का उत्पादन औद्योगिक क्रियाकलाप के लिए हो रहा है। इनमें से लगभग 80 खनिज पदार्थ अर्थतंत्र के लिए महत्वपूर्ण समझे जाते है। खनिजों का वर्गीकरण अधोलिखित प्रकार से किया जाता है –

5.11.1 गुण के आधार पर

गुण के आधार पर खनिज पदार्थों को दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है–

5.11.1.1 धात्विक खनिज

धात्विक खनिजों से धातु का उत्पादन होता है। इन खनिजों में धातु अयस्क के रूप में विभिन्न अनुपातों में पाया जाता है। खनिजों में कई धातुओं की मात्रा एवं अनुपात अन्य पदार्थों के साथ मिश्रित रूप में पाया जाता है। धातुओं का अपना गुणधर्म होता है। इनमें विशिष्ट चमक होता है। यह उच्च तापमानों पर पिघलती है। यह कठोर तथा आघात वर्द्धनीय होते है, जिससे इन्हें किसी भी आकार–प्रकार के आकृति में ढ़ाला जा सकता है। ये विघुत के सुचालक होते है। कई धातुओं को विभिन्न मात्रा में मिश्रित कर अधिक टिकाऊ, मजबूत और विशेष गुणधर्मी बनाया जा सकता है।धात्विक खनिज आग्नेय एवं रूपांतरित चट्टानों में पाये जाते है। चटधात्विक खनिजों को विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता ह–

1. **बहुमूल्य एवं विरल धातुएं**

   इसके अन्तर्गत सोना, चॉदी, प्लैटिनम, इरीडियम आदि धातुएं आती है।

2. **हल्की धातुएं**

   एल्यूमीनियम, टाइटेनियम, मैगनीशियम आदि धातुएं आती है।

3. **आधारभूत धातुएं**

लोहा, तांबा, जस्ता, टिन, सीसा, निकिल आदि।

4. **लौह मिश्र धातुएं**

क्रोमियम, कोबाल्ट, मैगनीज, निकिल, टंगस्टन, टाइटेनियम आदि लौह मिश्र धातुएं है।

5. **अलौह धातुएं**

तांबा, सीसा, टिन, जस्ता आदि अलौह धातुएं है।

5.11.2 अधात्विक खनिज

अधात्विक खनिज में धातु की मात्रा उपस्थित नहीं रहती है। इनका गुणधर्म धात्विक खनिजों से भिन्न होता है। कठोरता एवं आघातवर्द्धता कम पायी जाती है, जिसके कारण ये टकराने पर टुकड़ों में टूट जाते है। भूपटल पर इनकी मात्रा धात्विक खनिजों से अधिक पायी जाती है। अधात्विक खनिजों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **ऊर्जा खनिज**

इसके अन्तर्गत कोयला, पेट्रोलियम,प्राकृतिक गैस, यूरेनियम आदि आते है।

2. **उर्वरक खनिज**

नाइट्रेट, फास्फेट, पोटास, गन्धक आदि उर्वरक खनिज है।

3. **बहुमूल्य रत्न**

हीरा, पन्ना, नीलम, रूबी, ओपल आदि बहुमूल्य रत्न है।

4. **भू–द्रव्य**

इनमें जिप्सम, नमक, अभ्रक, मृतिका, बालू आदि खनिज आते है।

5.11.2 उपयोगिता के आधार पर

उपयोगिता के आधार पर खनिजों को दो वर्गो में विभाजित किया जाता है–

5.11.2.1आधारभूत खनिज

आधारभूत खनिजों में लौह अयस्क, तांबा और कोयला जैसे महत्वपूर्ण खनिज शामिल है। इन खनिजों के सहयोग से ही मनुष्य ने संसाधनों का दोहन कर वह शक्ति अर्जित की है, जिससे उसने प्रकृति पर अधिकार करने का आधार प्राप्त हुआ है।

5.11.2.2परिपूरक खनिज

टंगस्टन, क्रोमियम, मैगनीज, प्राकृतिक गैस, कोयला एवं खनिज तेल आदि परिपूरक खनिज है। परिपूरक खनिजों का उपयोग कर विशिष्ट गुण–धर्म वाले धातु बनाये जाते है। लौह पूरक खनिजों के उपयोग से इस्पात की गुणवत्ता बढ़ जाती है। उदाहरणस्वरूप इस्पात को मजबूत बनाने के लिए मैगनीज का उपयोग किया जाता है।

5.12 सारांश

खनिज संसाधन का आधुनिक जीवन शैली में विविधरूप में उपयोग होता है। यह प्राकृतिक रूप में भूगर्भ में पाये जाते है। जिसको उन्नत प्राविधिकी द्वारा उत्खनन कर प्राप्त किया जाता है। उत्खनन द्वारा प्राप्त खनिज में कई अशुद्धियां मिली रहती है जिसे कारखानों में विभिन्न विधियों से दूर कर शुद्ध खनिज प्राप्त किये जाते है। प्राप्त शुद्ध खनिजों से मानवोंपयोगी वस्तुएं निर्मित की जाती है।

5.13 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. धात्विक खनिज में कौन से खनिज पदार्थ नहीं आते है –

   अ. लोहा ब. तांबा

   स. जस्ता द. पेट्रोलियम

2. अधात्विक खनिज की श्रेणी में आते है–

   अ. जिप्सम ब. संगमरमर

   स. बलुआ पत्थर द. उक्त सभी

3. भारत के सर्वाधिक खनिज सम्पन्न राज्य है –

   अ. उ0प्र0 ब. मध्य प्रदेश

   स. छतीसगढ़ द. बिहार

5.14 बोध प्रश्न

1. खनिज संसाधनों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. खनिजों के उत्खनन को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।
3. खनिज संसाधनों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

5.15 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सिंह, जगदीश, एवं सिंह, के.एन.(2010) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।
2. मौर्य, एस. डी. (2022), आर्थिक भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
3. श्रीवास्तव, वी.के. एवं राव, बी.पी. (2002), आर्थिक भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
4. गौतम, अलका, (2019) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
5. अलेक्जेंडर, जे.डब्लू. (1979) इकोनॉमिक ज्योग्राफी, प्रेंटिस हाल,
6. लांगमैन, जी.सी. एण्ड मार्गन, जी.सी. (1982) हयूमन एण्ड इकोनॉमिक ज्योग्राफी,आक्सफोर्ड प्रेस.

इकाई–06 विभिन्न खनिजों का विश्व में वितरण, उत्पादन एवं व्यापार प्रतिरूप–लौह अयस्क, मैगनीज,तांबा, बाक्साइट

इकाई का रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 लौह अयस्क

6.4 मैगनीज

6.5 तांबा

6.6 बाक्साइट

6.7 सारांश

6.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

6.9 बोध प्रश्न

6.10 संदर्भ ग्रन्थ

6.1 प्रस्तावना

इकाई 5 में हमने खनिजों के बारे में अध्ययन किया है। इस इकाई में हम महत्वपूर्ण खनिजों के उत्पादन, व्यापार एवं विश्ववितरण प्रतिरूप को समझेगें। लौह अयस्क का प्राचीन काल से मनुष्य उपयोग करता आया है। इसकी कठोरता, टिकाऊपन और अन्य धातुओं के साथ मिलकर मजबूत बनाने की क्षमता के कारण इसका उपयोग बढ़ता ही जा रहा है। मैगनीज भी महत्वपूर्ण खनिज है जिसका उपयोग लोहे को मजबूत बनाने के लिए किया जाता है। शुष्क बैट्री, रासायनिक मिश्रण, रंग–रोधन एवं चीनी की मिट्टी के बर्तनों को बनाने में इसका उपयोग होता है। तांबे का उपयोग भी प्राचीन काल से चला आ रहा है। पहले के लोग बर्तन एवं हथियार बनाने में इसका उपयोग करते थे। बिजली के उपकरण एवं मोटरगाड़ी के विभिन्न भागों के निर्माण में तांबे का उपयोग किया जाता है। बाक्साइट खनिज से ही एल्युमिना की प्राप्ति होती है जो एल्युमीनियम खनिज के नाम से जाना जाता है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य निम्नलिखित है–

1. खनिजों के विश्व वितरण को प्रतिरूप को समझ सकेगें।
2. लौह अयस्क के बारे में जानकारी प्राप्त कर उसका अभिव्यक्ति कर सकेगें।
3. तांबा का उत्पादन, उपयोग एवं वितरण तथा व्यापार का अध्ययन कर सकेगें।
4. बॉक्साइट खनिज की उपयोगिता एवं उसके महत्व को जानकर हम उसका अभिव्यक्ति कर सकेगें।

6.3 लौह अयस्क

आधुनिक युग मशीनों का युग है। लोहे का प्रयोग सभी मशीनों, उपकरणों, वाहनों, रेफ्रिजरेटरी, इमारतों, पुलों आदि के निर्माण में किया जाता है। वस्तुतः लोहे का महत्व अन्य धातुओं की अपेक्षा इसकी मजबूती तथा टिकाऊपन के कारण है। विभिन्न अनुपातों में अन्य धातुओं के साथ मिश्रित करके अधिक टिकाऊ, मजबूत तथा विशेष गुणधर्मी बनाया जा सकता है।

लौह अयस्क के प्रकार–

1. हेमेटाइट (Hametite – Fe_2O_3)–लोहांश50% से 65% तक
2. मैग्नेटाइट (Magnetite – Fe_3O_4) –लोहांश70% तक
3. लिमोनाइट (Limonite – $2Fe_2O_3H_2O$) –लोहांश50% तक
4. सिडेराइट (Siderite – $FeCO_3$) –लोहांश20% से 30% तक

संचित राशि–

पृथ्वी के ऊपरी भाग अर्थात् भू–पटल के निर्माण में लौह का 5 प्रतिशत भाग होता है। लेकिन सम्पूर्ण पृथ्वी के निर्माण में लौह का प्रथम स्थान (35 प्रतिशत) है। उच्च धातु सम्पन्नतायुक्त लौह का संचित भण्डार लगभग 170 अरब मीटरी टन है। इसका लगभग 25 प्रतिशत भाग पश्चिमी यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका में, 25 प्रतिशत भाग रूस एवं पूर्वी यूरोपीय देशों में, 20 प्रतिशत दक्षिणी अमेरिकी देशों में एवं शेष 20 प्रतिशत दक्षिणी–पूर्वी एवं पूर्वी एशिया के देशों में पाया जाता है। कच्चे लौह अयस्क जमाव की दृष्टि से आस्ट्रेलिया प्रथम तथा रूस द्वितीय स्थान पर है।

सारणी–विश्व के प्रमुख देशों में लौह अयस्क का संचित भण्डार (मिलियन मीट्रिक टन) 2017

देश	संचित भण्डार	
	कच्चा अयस्क	लौह तत्त्व
1. संयुक्त राज्य अमेरिका	2900	760
2. आस्ट्रेलिया	50000	24000
3. ब्राजील	23000	12000
4. कनाडा	6000	2300
5. चीन	21000	7200
6. भारत	8100	5200
7. इरान	2700	1500
8. कजाखस्तान	2500	900
9. रूस	25000	14000
10. द0 अफ्रीका	1200	770
11. स्वीडेन	3500	2200
12. यूक्रेन	6500	2300
13. अन्य देश	18000	9500
कुल विश्व	**170000**	**83000**

Source: U.S. Department of Mineral Summary, 2018

6.3.1 लौह अयस्क का विश्व वितरण एवं उत्पादन प्रतिरूप

लौह अयस्क के उत्पादन में 20वीं शताब्दी के मध्यावधि से तीव्रता आयी है। सन् 1948 में विश्व में कुल लौह अयस्क का उत्पादन 1035 करोड़ टन था जो बढ़कर 1990 में 58.70 करोड़ टन हो गया। सन् 1998 में विश्व में 104.50 करोड़ टन तथा सन् 2017 में 240 करोड़ टन लौह अयस्क का उत्पादन हुआ है। विगत दशक में रूस, ब्राजील, कनाड़ा, संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, चीन, स्वीडेन, भारत और फ्रांस क्रमशः सर्वाधिक उत्पादन करने वाले राष्ट्र थे। लेकिन वर्तमान दशक में यूरोपीय व अमेरिकी देशों की जगह एशियाई एवं अफ्रीकी देश उत्पादन में आगे निकले हैं। वर्तमान में आस्ट्रेलिया सर्वाधिक लौह अयस्क उत्पादन करने वाला देश बन गया है। इसके उपरान्त क्रमशः ब्राजील, चीन, भारत, रूस, यूक्रेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका, कनाडा तथा स्वीडन आते हैं।

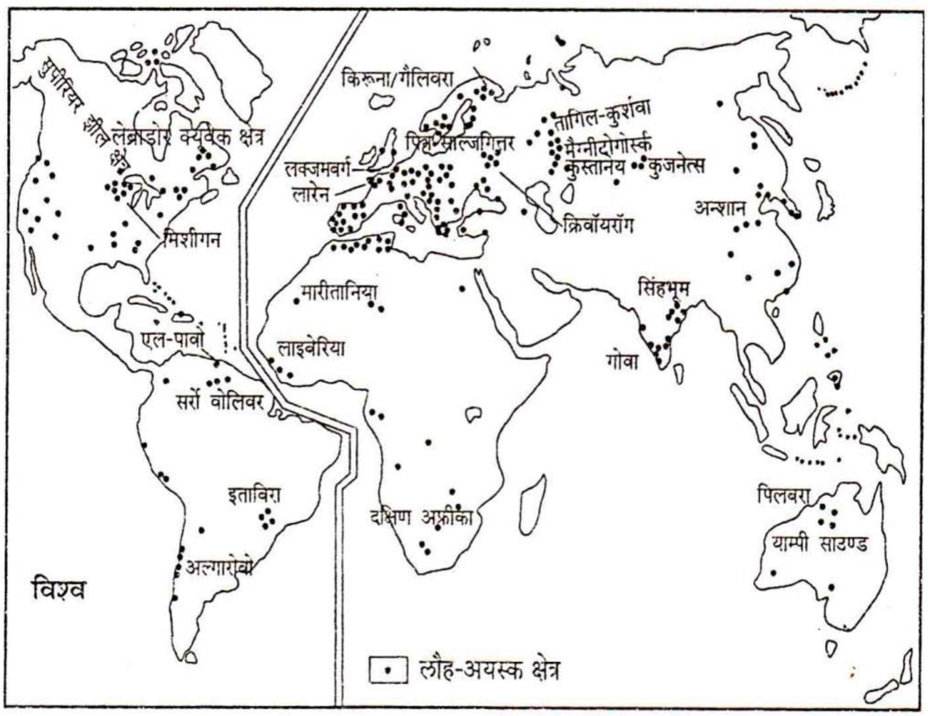

चित्र–1 : विश्व के प्रमुख लौह–अयस्क उत्पादक क्षेत्र

सारणी–विश्व के प्रमुख देशों में लौह–अयस्क का उत्पादन

विश्व	2017 में क्रम	विश्व का प्रतिशत		उत्पादन (मिलियन मीट्रिक टन में)	
		1975	2005	2016	2017
1. आस्ट्रेलिया	1	12.2	18.4	858	880
2. ब्राजील	2	9.2	19.7	430	444
3. चीन	3	6.5	24.3	348	340
4. भारत	4	5.2	9.2	185	190
5. रूस	5	25.4	6.3	101	103

6. यूक्रेन	7	–	4.5	63	63
7. सं.रा.अमेरिका	8	9.8	3.6	42	46
8. दक्षिण अफ्रीका	6	1.5	2.6	68	68
9. कनाडा	9	5.5	2.0	47	47
10. स्वीडेन	12	6.5	1.5	27	27
11. कजाकिस्तान	11	–	1.3	34	34
12. ईरान	10	–	1.1	35	35
13. अन्य देश	–	–	–	116	110
कुल विश्व				2350	2400

Source: U.S. Geological Survey 2006, U.S. Department of Mineral Commodity Summary, 2018, P. 89.

(1) आस्ट्रेलिया

आस्ट्रेलिया लौह उत्पादन की दृष्टि से सन् 2017 में प्रथम स्थान पर आ गया है। आस्ट्रेलिया का अधिकांश उत्पादन पश्चिमी भाग में पर्थ से 1200 किमी0 दूर स्थित पिलबारा क्षेत्र एवं 1000 किमी0 दूर स्थित हैमस्ले खदान एवं गोल्डम नदी खदान से होता है। पिलबारा क्षेत्र में माउन्ट टोम राइस व माउण्ट न्यूमेन तथा इसके उत्तर में माउण्ट गोल्डसवर्थी मुख्य खनन केन्द्र हैं। कुछ उत्पादन उत्तरी भाग में स्थित है। इनके अलावा क्लीवलैण्ड, टस्मानिया एवं दक्षिण आस्ट्रेलिया में स्थित मिडिलबैंक रेंज, आयरन नॉब (प्तवद झदवइ) एवं सिडनी क्षेत्र प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं। आस्ट्रेलिया में उत्पादित अधिकांश लौह, अयस्क का जापान को निर्यात कर दिया जाता है।

(2) ब्राजील

ब्राजील दक्षिण अमेरिका महाद्वीप का प्रमुख लौह उत्पादक देश है। ब्राजील का लौह उत्पादन 1992 में 14.6 करोड टन था, जो 2017 में बढ़कर मात्र 44.4 करोड़ टन हो गया है। ब्राजील वर्तमान समय में लौह उत्पादन की दृष्टि से विश्व का दूसरा प्रमुख लौह उत्पादक देश है।

ब्राजील का मिनास गेरास राज्य प्रमुख लौह उत्पादक राज्य है। संचित भण्डार की दृष्टि से भी यह राज्य ब्राजील का प्रमुख राज्य है। इस राज्य का माउन्ट इताबिरा क्षेत्र प्रमुख लौह उत्पादक क्षेत्र है जहाँ ब्राजील के लौह उत्पादन का अधिकांश प्राप्त होता है। ब्राजील में काराजोस एवं इण्डियन जमाव क्षेत्र प्रमुख है, जो अमेजन की सहायक जिंग नदी के पूर्व में स्थित है तथा साओ लुइस बन्दरगाह तक रेल मार्ग से जुड़े हैं। तकनीकी एवं औद्योगिक विकास की कमी के कारण ब्राजील अपने उत्पादन का अधिकांश भाग निर्यात कर देता है। यहाँ से मुख्यतः संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी तथा फ्रांस को निर्यात किया जाता है।

(3) चीन

वर्तमान समय में लौह–अयस्क के उत्पादन में ब्राजील के बाद चीन विश्व में तीसरे स्थान पर चला गया है। 2017 में चीन में 340 मिलियन टन लौह अयस्क का उत्पादन हुआ। चीन में पाए जाने वाले लौह अयस्क की धातु सम्पन्नता लगभग 35 प्रतिशत पायी जाती है। चीन में लौह धातु का उत्पादन 1960 के बाद विश्व के अन्य देशों की तुलना में अत्यधिक तीव्र गति से हुआ है। चीन के प्रमुख लोह उत्पादक क्षेत्र निम्नांकित हैं–

(i) दक्षिणी मंचूरिया –यहाँ चीन के कुल संचित भण्डार का 50 प्रतिशत पाया जाता है। दक्षिण मंचूरिया के प्रमुख लोहा उत्पादक प्रदेश अशांन, चांगलिंग तथा पेंकी क्षेत्र प्रमुख हैं।

(ii) अन्य क्षेत्र – कुछ लौहा उत्पादक क्षेत्र हैनान द्वीप, चा–हार, होनान, हुपे, सांतुंग अन्तरीय, हैकांऊ, कासू, शिकांग, ग्वेची, आन्तरिक मंगोलिया, खुइयुआन बुहान क्षेत्र आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त शांशी क्षेत्र में भी छिटपुट स्थानों पर लौह अयस्क पाया जाता है।

(4) भारत

यहाँ के कुल लौह अयस्क जमावों का 59 प्रतिशत हैमेटाइट किस्म का है। देश में निकाले जा सकने योग्य हैमेटाट लौह अयस्क का लगभग 1231.7 करोड़ टन भण्डार स्वीडेन, ब्रिटेन, भारत, फ्रांस व जर्मनी से प्राप्त होता है। विश्व के 25 प्रतिशत लौह अयस्क का भण्डार भारत में मौजूद है। प्रमुख क्षेत्र–उड़ीसा (मयूरभंज, क्योंझर, सुन्दरगढ़), झारखण्ड (सिंहभूम), मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ (बस्तर का बैलाडीला एवं दुर्ग का डल्ली राजहरा), कर्नाटक (चिकमंगलूर, चित्रदुर्ग, बेल्लारी) आदि।

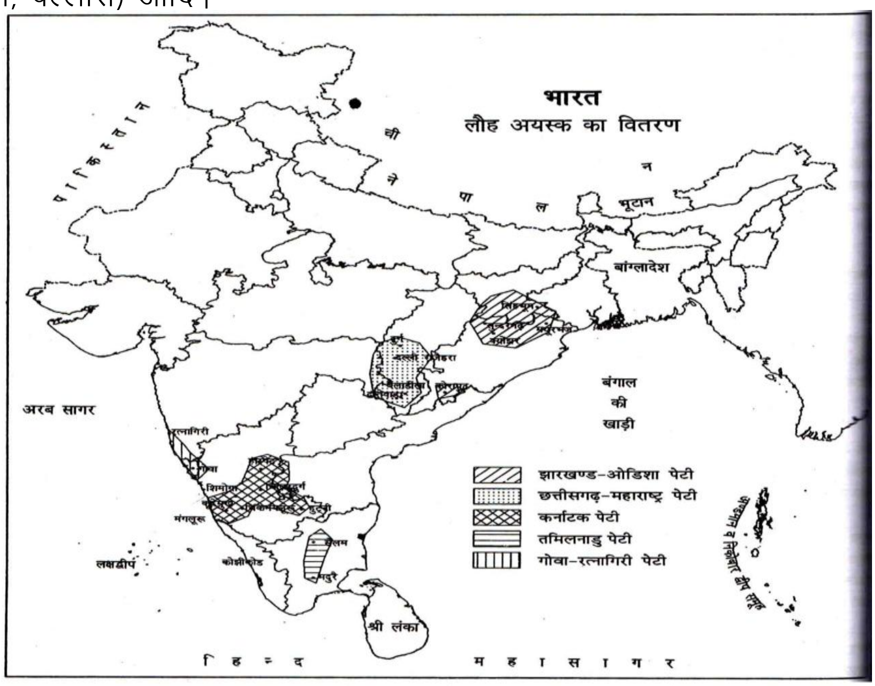

चित्र–2 : भारत के प्रमुख लौह–अयस्क उत्पादक क्षेत्र

5. रूस एवं सी.आई.एस.

यहाँ उच्च कोटि का हैमाटाइट लौह अयस्क विशाल मात्रा में पाया जाता है। रूस में, अनुमानतः विश्व का सबसे बड़ा लौह–अयस्क का भण्डार है। प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं–

(i) यूक्रेन–क्रिवॉयरॉग क्षेत्र

(ii) यूराल क्षेत्र– द0 में मैग्निटोगर्स्क, मध्य में येकटेरीनबर्ग एवं उ0 में निझनी तागील।

(iii) मध्य साइबेरिया–कुजबास क्षेत्र

(iv) पूर्वी साइबेरिया–अंगारा क्षेत्र

(v) पश्चिमी साइबेरिया – ओस्स्क क्षेत्र।

(vi) कुर्स्क एवं कर्च प्रायद्वीप

(vii) कजाकिस्तान – कटनाई क्षेत्र

6. संयुक्त राज्य अमेरिका

यहाँ लोहे की खानें मुख्य रूप से मिनेसोटा, मिशिगन एवं अलाबामा राज्यों में स्थित हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका का 90 प्रतिशत से भी अधिक लोहा हेमाटाइट किस्म का है।

(i) सुपीरियरझील क्षेत्र–यहाँ की मेसाबी खान विश्व की सबसे बड़ी खानों में एक है, जिसका उच्च कोटि का लौह भंडार लगभग समाप्तप्राय है, जबकि निम्न कोटि का भंडार विशाल परिमाण में मौजूद है। अन्य खाने–मैसाबी रेंज, वार्मिलियन, मिनोमिनी, मरकेटी, गोजेबिक एवं कुयाना।

(ii) दक्षिणी अप्लेशियन या अलाबामा क्षेत्र– बर्मिंघम, अलबामा।

(iii) उत्तर–पूर्वी अप्लेशियन क्षेत्र– न्यूयार्क, पेंस्लिवेनिया, न्यू जर्सी को अदिरेन डाक, कार्निवाल, डोगारफील्ड आदि।

(iv) पश्चिमी क्षेत्र–आयरन माउण्टेन तथा डेजर्ट माउण्टेन (यूटा), इंगिल माउण्टेन (कैलिफोर्निया) एवं डेंगरफोल्ड (उ0–पूर्वी टेक्सास प्रांत)।

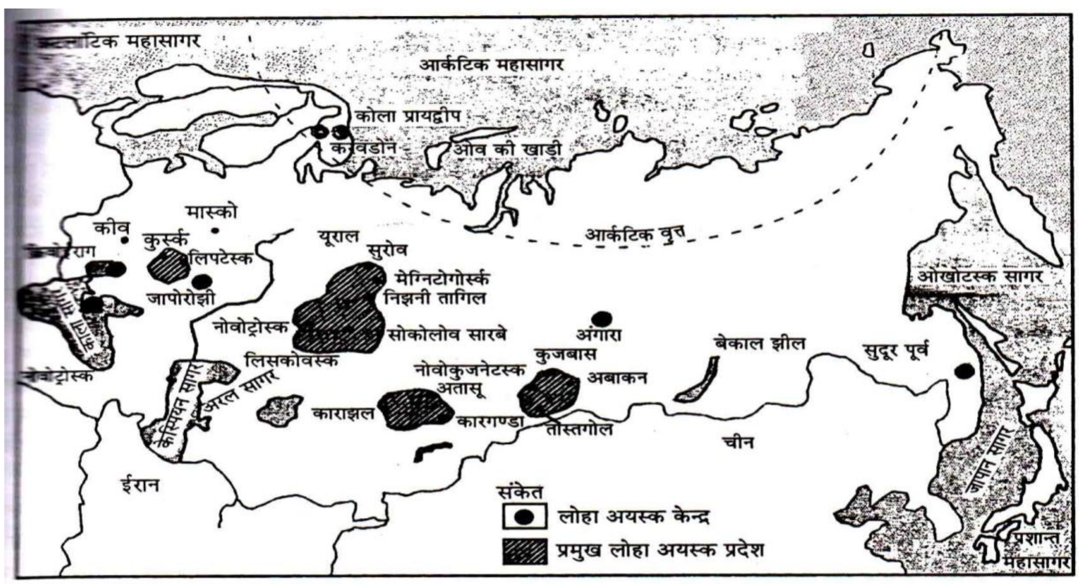

चित्र–2 : रूस एवं सी.आई.एस. के प्रमुख लौह–अयस्क उत्पादक क्षेत्र

7. कनाडा

यहाँ लोहे की खानें ऑटेरियो, नोवा–स्कोशिया, अल्बर्टा एवं बैंकूवर द्वीप में स्थित हैं। प्रमुख क्षेत्र–

(i) महान झील प्रदेश– स्टीप रॉक।

(ii) क्यूबेक– राइटसेप्ट

(iii) लैब्राडोर– शेफरविले।

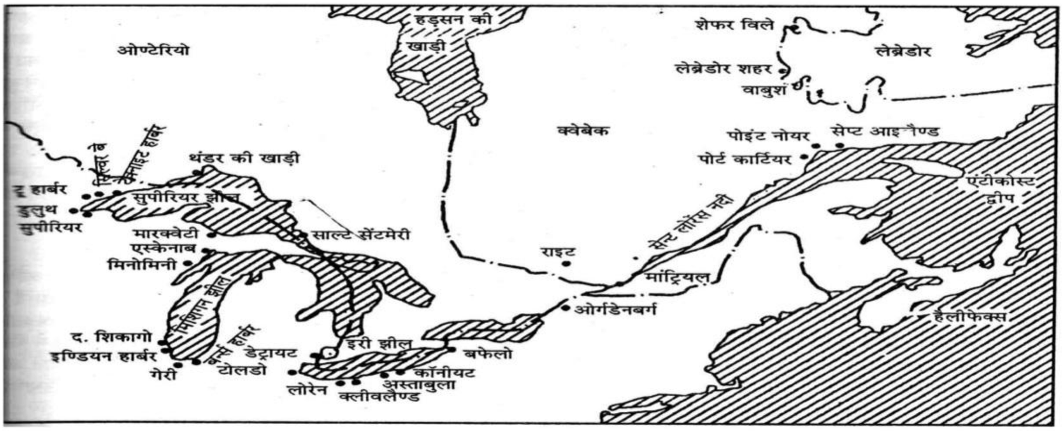

चित्र–3 : संयुक्त राज्य अमेरिका एवं कनाडा के प्रमुख लौह–अयस्क उत्पादक क्षेत्र

8. अन्य देश

फ्रांस के लॉरेन, नॉरमाडी एवं पिरेनीज प्रमुख लौह क्षेत्र है।लॉरेन में यूरोप का सर्वाधिक संचित भंडार पाया जाता है। फ्रांस के कुल लौह अयस्क उत्पादन का 95 प्रतिशत यहीं से प्राप्त होता है।

स्वीडेनः स्वीडन में उच्च कोटि का लौह अयस्क पाया जाता है। प्रमुख क्षेत्र :(i) किरूना एवं गैलीवारा (उत्तरी भाग में) (ii) डेनेमोरा (द0 भाग में)।

ब्रिटेन : यहाँ लोहे का निक्षेप मुख्यतः पूर्वी इंग्लैंड में पाया जाता है। प्रमुख क्षेत्र उ0 लंकाशायर, यार्कशायर, लिंकन शायर, नादम्बरलैंड, ईस्ट मिडलैण्डस क्लीवलैंड की पहाड़ियाँ आदि।

जर्मनी : यहाँ लोहे का निक्षेप सीजरलैंड घाटी एवं बेसारलैंड घाटी में पाया जाता है। सार एवं वेस्टफोलिया क्षेत्र लौह अयस्क उत्पादन के लिए प्रसिद्ध हैं।

दक्षिण अमेरिकाःचिली में अल–टोफो, वेनेजुएला में एल्पाओं एवं सोरोवोलिवार तथा अर्जेन्टीना में अमशनस क्षेत्र में लौह अयस्क का उत्पादन किया जाता है।

अफ्रीकाः यहाँ द0अफ्रीका (ट्रांसवाल, उत्तरी केप एवं नेटाल), लाइबेरिया, सियरा–लियोन, अल्जीरिया, मोरक्को, ट्यूनीशिया में लौह अयस्क का निक्षेप पाया जाता है।

स्पेनः बिलवाओ, सेंटाडर, गैबून आदि।

जापानः होकैडो द्वीप का दक्षिणी भाग (मुरोरान) एवं होंशू द्वीप का उत्तर–पूर्वी भाग (केमेशी क्षेत्र की सेनिन खान)।

उपरोक्त देशों के अलावा उत्तरी कोरिया (मुसान क्षेत्र) मलेशिया (त्रेगानु क्षेत्र), मेक्सिको (दुरांग क्षेत्र), फिलीपींस (मिन्डनाओ) में भी लौह अयस्क के संचित भंडार पाये जाते हैं।

6.3.2 लौह अयस्क का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

सम्पूर्ण विश्व में उत्पादित लौह धातु का लगभग एक–तिहाई भाग का विभिन्न देशों के मध्य आदान–प्रदान होता है। वर्तमान समय में बड़े जलयानों के निर्माण के कारण लौह धातु का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तीव्र गति से बढ़ रहा है। जापान विश्व में लौह अयस्क के आयात की दृष्टि से प्रथम स्थान पर है। यह अपनी आवश्यकता का लगभग 90 प्रतिशत लौह अयस्क का आयात करता है। जापान में आयातित लौह अयस्क के प्रमुख निर्यातक देश भारत, पीरू, ब्राजील, चिली, मलेशिया एवं आस्ट्रेलिया हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व का दूसरा प्रमुख लौह अयस्क आयातक देश है। वेनेजुएला, कनाडा, चिली, ब्राजील एवं लाइबेरिया संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए प्रमुख निर्यातक देश हैं। विश्व के अन्य प्रमुख लौह आयातक देश जर्मनी, ब्रिटेन, चेक गणराज्य, पोलैण्ड, इटली, लक्जेम्बर्ग, बेल्जियम एवं प्रमुख निर्यातक देश लाइबेरिया, वेनेजुएला, ब्राजील, भारत, आस्ट्रेलिया, चिली, मारीटानिया, पीरू तथा स्वीडन हैं।

6.4 मैंगनीज

यह एक प्रमुख खनिज है, जिसका अधिकांश उपयोग लौहपुरक धातुओं के निर्माणके रूप में किया जाता हैं। इस्पात निर्माण में मैंगनीज अत्यधिक महत्त्वपूर्ण खनिज हैं, इसके कारण इस्पात अत्यन्त कठोर, अपघर्षण प्रतिरोधी एवं संरक्षित इस्पात का निर्माण होता है।इस्पात के अलावा रेल की पटरियाँ, काटने–पीसने–तोड़ने वाली मशीनों के निर्माण में, शुष्क बैटरी, रासायनिक सम्मिश्रणों के निर्माण में, रंग रोगन, छतों के खपड़े बनाने में, चीनी बर्तन, काँच की वस्तुएँ बनाने आदि में उपयोग किया जाता है। अतः वर्तमान समय में अधिकाधिक पूरक वस्तुओं के रूप में उपयोग होने के कारण मैंगनीज एक प्रमुख खनिज है।

6.4.1 मैंगनीज का विश्ववितरण एवं प्रमुख उत्पादक प्रदेश–

मैंगनीज के उत्पादन में 1980 के बाद तीव्र गति से परिवर्तन हुआ है। 1991 में पूर्व सोवियत संघ प्रमुख उत्पादक देश था. लेकिन इसके अलग– अलग देशों में विभाजित होने के कारण इसका उत्पादन प्रतिरूप अत्यधिक परिवर्तित हो गया है। इसका उत्पादन भी धीरे–धीरे कम होता जा रहा है।

दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, गेवन, चीन, यूक्रेन, भारत, मैक्सिको, घाना, जार्जिया आदि आदि देश मिलकर विश्व के कुल उत्पादन का 95 प्रतिशत उत्पादन करते हैं।

1. दक्षिणी अफ्रीका–संचित भण्डार सीमित मात्रा में होते हुए भी उत्पादन की दृष्टि –से दक्षिण अफ्रीका विश्व का प्रथम प्रमुख मैंगनीज उत्पादक देश है। यहाँ के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र पोस्टमेसबर्ग, कुसगेर्सडोर्प, सेरेस, उसे आदि हैं।

2. आस्ट्रेलिया–विश्व का तीसरा बड़ा मैंगनीज उत्पादक देश है। जहाँ विश्व का 15.71 प्रतिशत मैंगनीज निकाला जाता है। आस्ट्रेलिया में मैंगनीज का उत्पादन उत्तरी प्रांत के गुटईलैण्ड, यूँटे एवं इलयंत व पश्चिमी आस्ट्रेलिया के मारवुवर में होता है।

3. ब्राजील–ब्राजील दक्षिण अमेरिका का ही नहीं बल्कि विश्व में भी मैंगनीज उत्पादनकी दृष्टि से प्रमुख स्थान (पाँचवाँ) रखता है। यहाँ के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र नजारे, लफालेतअमापा जो उत्तरी भाग में स्थित हैं, मिगुएल बर्नियर एवं चुरूमकुम आदि हैं। ये सभी मैंगनीजउत्पादक क्षेत्र ब्राजील के मिनास गेरास, बाहिया एवं मॉटीग्रासो राज्यों में स्थित हैं।

4. गैबन–विश्व का चौथा मैंगनीज उत्पादक देश है, जहाँ फ्रेंकविल के समीप मोआंडी क्षेत्र से मैंगनीज निकाला जाता है।

5. चीन–वर्तमान समय में चीन मैंगनीज के उत्पादन की दृष्टि से विश्व में द्वितीय स्थान पर है। चीन के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र सिक्यांग घाटी में स्थित जूकियांग एवं हुंग हुई नदियों के संगम में स्थित दोआब क्षेत्र प्रमुख प्रदेश हैं। इनके अलावा यांगट्सी नदी के दक्षिण में स्थित क्यांग्सी, हुनान, क्वांगटन, क्वांगसी, क्वीचाऊ आदि भी प्रमुख मैंगनीज उत्पादक क्षेत्र हैं। दक्षिण चीन में स्थित नियाग्टन एवं मोसुन क्षेत्र प्रमुख उत्पादक प्रदेश हैं।

6. यूक्रेन–यहाँ काला सागर प्रदेश में स्थित निकोपोल, बोलसाई व तोकमक जार्जिया जार्जिया का चियातुका क्षेत्र विश्व का वृहत्तम मैगनीज संचित राशि वाला क्षेत्र खदानें हैं। है। यह काकेशस क्षेत्र में स्थित है।

7. रूस–रूस के प्रमुख मैगनीज उत्पादक सामरिया में स्थित माली, खिंगन उसिनिस्कोर तथा मजालुस्की खानें प्रमुख हैं। अन्य क्षेत्रों में पूर्व सोवियत संघ से अलग हुए ताजिकिस्तान का नेजाताश तथा कजाखस्तान का देशबी प्रमुख मैंगनीज उत्पादक क्षेत्र हैं। क्षेत्र, बेमाक, बेलौरदेशी प्रत मैंगनीज, लौह इस्पात उद्योग के लिए महत्त्वपूर्ण खनिज है। क्योंकि यहाँ केवल भार उद्योग अपितु रसायन उद्योग एवं बैटरी उद्योग भी इस पर आधारित हैं। भार में लगभग 340 मिलियन टन के भण्डार हैं।

जमाव की दृष्टि से लगभग 20: कच्चा पदार्थ मध्य प्रदेश के बालाघाट एवं छिंदवाड़ा तथा महाराष्ट्र के नागपुर, भण्डारा, रत्नागिरी क्षेत्र में जमाव है। ओडिशा के सुन्दरगढ़, काला हाण्डी जिलों में मैंगनीज के भण्डार प्राप्त हैं। आन्ध्र प्रदेश के विशाखापट्टनम्, कुड़प्पा एवं गष्ट्रा जिलों में मैंगनीज के भण्डार बिखरे हुए हैं। कर्नाटक का बेलारी जिला, झारखण्ड का सिंहभूमि तथा गोआ एवं गुजरात के क्षेत्रों में भी मैंगनीज के भण्डार प्राप्त हैं।

भारत में इसका वर्तमान (2017) में उत्पादन 7.90 लाख टन है। वर्तमान में ओडिश सबसे अधिक मैंगनीज का उत्पादन करने वाला राज्य है, यह लगभग देश का 50 प्रतिशत उत्पादन करता है। मैंगनीज का निर्यात भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, इंग्लैण्ड को करता है। मैंगनीज के उत्पादन पर देश का लौह इस्पात उद्योग निर्भर करता है। इसलिए इसके क्षेत्र में भी निरन्तर वृद्धि हो रही है एवं धीरे–धीरे इसका निर्यात कम किया जा सकेगा।

8. घाना–अफ्रीका महाद्वीप के लगभग भूमध्यरेखीय भाग में स्थित घाना मैंगनीज के उत्पादन एवं निर्यात की दृष्टि से विश्व में प्रमुख स्थान रखता है। घाना का सम्पूर्ण मैंगनीव उत्पादन नसूता क्षेत्र में होता है, जहाँ वृहत्तम भण्डार पाए जाते हैं।

इनके अलावा मोरक्को का इमनी क्षेत्र, कांगो गणतन्त्र का कासाइ क्षेत्र, अलोगा का बुंडा एवं विला सालाजार लुइमे क्षेत्र, जैम्बिया का कैम्पुम्बु तथा हिमाता क्षेत्र, जापान के होश, शिकोकु, मलेशिया का क्वाला, केमासन, इण्डोनेशिया का जावा, इटली का रापालम एवं गैम्बत क्षेत्र, वीडम का लँगबन क्षेत्र, संयुक्त राज्य अमेरिका के मौटांना, नेवादा, अरकसांस, मिनेसोटा, वैसिलवानिया, जार्जिया आदि राज्य में स्थित क्षेत्र, क्यूबा में बयामो, चीली का एटीफागाय एवं कोक्विमवाना क्षेत्र आदि प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं।

6.5 ताँबा

वर्तमान औद्योगिक युग में ताँबा लौह धातु के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण खनिज संसाधन है। प्राचीनकाल में भी ताँबे से सिक्के एवं युद्ध में उपयोग की जाने वाली सामग्री का निर्माण किया जाता था। ताँबा का महत्त्व विद्युत उत्पादन के बाद अधिकाधिक बढ़ गया है, क्योंकि ताँबा विद्युत का सुसंचालक (ळववक ब्वदकनबजवत) है। मोटर, विभिन्न प्रकार के इंजनों के निर्माण में, रेडियो, बर्तन, ताले, घड़ियाँ तथा विभिन्न प्रकार के रासायनिक सम्मिश्रणं, के निर्माण में ताँबे का उपयोग किया जाता है।

6.5.1 ताँबा का विश्ववितरण एवं उत्पादन प्रतिरूप

विश्व के विभिन्न भागों में ताँबा का अनुमानित संचित भण्डार लगभग 17 करोड़ टन आंका गया है। वर्तमान समय में ताँबे का प्रमुख उत्पादक देश चिली है जो सम्पूर्ण विश्व में उत्पादन का लगभग 35.66 प्रतिशत उत्पादित करता है।

1. चिली

चिली विश्व के कुल उत्पादन का लगभग 27.05 प्रतिशत ताँबे के उत्पादन के साथ विश्व का प्रथम ताँबा उत्पादक देश है। चिली के प्रमुख ताँबा उत्पादक क्षेत्र चिली के साथ चिग में स्थित मरुभाग एवं एण्डीज पर्वत के पश्चिमी ढाल पर स्थित क्षेत्र है। चिले के कुत्ता ताँबा उत्पादन का १० प्रतिशत भाग एण्डीज पर्वत के पश्चिमी ढालों पर स्थित निम खदानों होता है–

नों से बोका मोटा (Chuquicamat)– यह विश्व की सबसे बड़ी ताँबे की खदान है।यहाँ विश्व के अन्य किसी क्षेत्र विशेष की तुलना में विश्व में सबसे अधिक संचित राशि पायी जाते है। इसके अतिरिक्त एल तेनिएन्त (El&Teniente), ला अफ्रिकाना (La Africana) तथा ब्राडेन (Braden) आदि महत्त्वपूर्ण खदानें हैं।

मध्य चिली में सेंटियागो से 84 किमी. दक्षिण में स्थित एल तेनिएन्त खदान विश्व की सबसे गहरी खदान है। चिली में ही पोट्रेरिलोज (Potrerillo) प्रदेश भी ताँबे के उत्पादन का एक प्रमुख क्षेत्र है। चिली एक ऐसा देश है जिसकी 50 प्रतिशत से अधिक राष्ट्रीय आय केवल ताँबे के निर्यात से हो प्राप्त होती है। चिली से जुड़े पीह में मोरोकोवा (Morococha) तथा कासापाल्का (Casa Palca) प्रमुख ताँबा की खानें हैं।

2. पीरू–पीरू वर्तमान में ताँबा उत्पादन में विश्व में द्वितीय स्थान पर आ गया है। यहाँ सेरो वर्डे (Cerro Verde), एंटामिनिया, लास बाम्बोस, एंटीपेक्सी, टोरोमोचो एवं कॉस्टासिया में ताँबे का उत्पादन होता है।

3. चीन–चीन ताँबा उत्पादन में वर्तमान में तीसरे स्थान पर आ गया है। यहाँ जिआंग्सी (Jiangsi) में सर्वाधिक ताँबे का उत्पादन होता है।

4. संयुक्त राज्य अमेरिका–प्राचीन समय से ही संयुक्त राज्य में वृहद पैमाने पर ताँबा का उत्पादन किया जा रहा है। लगातार कई वर्षों तक संयुक्त राज्य अमेरिका ताँबे के उत्पादन में प्रथम स्थान पर रहा है। लेकिन वर्तमान समय में विश्व के अन्य देशों की तुलना में संयुक्त राज्य अमेरिका के ताँबा उत्पादन में गिरावट आयी है। 2017 में ताँबे का उत्पादन में चौथे स्थान पर है। प्रमुख ताँबा उत्पादक क्षेत्र निम्नलिखित हैं–

(i) संयुक्त राज्य के मिशिगन राज्य में स्थित कीवेना क्षेत्र प्राचीनकाल से ही प्रमुख ताँबा उत्पादक क्षेत्र रहा है। लेकिन अधिक खनन के कारण वर्तमान समय में यहाँ निम्न कोटि की धातु पायी जाती है।

(ii) संयुक्त राज्य का पश्चिमी भाग मौटांना राज्य में स्थित बुट्टे नामक स्थान ताँबा उत्पादन की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है। यहाँ विश्व की अन्य ताँबा उत्पादन खदानों की अपेक्षा अधिक मात्रा में ताँबा निकाला जाता है। ताँबा के साथ यहाँ अन्य खनिज भी पाए जाते हैं। अतः इसे पृथ्वी की वृहत्तम सम्पन्न पहाड़ी कहते हैं।

(iii) एरीजोना राज्य की ब्रिस्बी, ग्लोज मियामी, यूरेका, ओल्डहेट, आजो, मोरेन्सी, सानमैनुएल क्षेत्र।

(iv) नेवादा राज्य में स्थित एरिंग्टन, एली क्षेत्र में स्थित खदानें।

(v) ऊटा राज्य के बिंथम एवं टिन्टिक भी प्रमुख ताँबा उत्पादक प्रदेश हैं।

5. आस्ट्रेलिया–आस्ट्रेलिया विश्व के कुल ताँबा उत्पादन का 4.67 प्रतिशत ताँबा का उत्पादन करता है। यहाँ के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र कोबार, माउण्ट लायल, माउण्ट ईशा एवं टेनाण्ट महत्त्वपूर्ण प्रदेश हैं।

6. अफ्रीका–अफ्रीका महाद्वीप में ताँबा के प्रमुख उत्पादक प्रदेश सहारा मरुस्थल के दक्षिणी भाग में स्थित हैं। कांगो के कटांगा प्रदेश से जैम्बिया के मध्य में स्थित भाग में 450 किमी. लम्बी एवं 80 किमी. चौड़ी ताँबे के संचित भण्डार की पट्टी पायी जाती है। यहाँ पाया जाने वाला ताँबा उच्च कोटि का है। लेकिन इस प्रदेश के भूमध्यरेखीय भाग में स्थित होने के कारण घनी वनस्पति पायी जाती है जिसके कारण यहाँ खनन कार्य एवं परिवहन साधनों की समस्या पायी जाती है। यह पेटी डोमिनिकन रिपब्लिक ऑफ कांगो (जायरे) के जादो तविले से लेकर जाम्बिया के ब्रोकन हिल तक विस्तृत है। कटांगा में धात्विक सम्पन्नता 6.5 से 25 प्रतिशत तक मिलती है। इस पेटी में नेचंगा (छमबींदहं), कीटवी (ज्ञपजूमम), मुफुलीश आदि जाम्बिया में क्री तथा लुलुम्बासी कटांगा क्षेत्र में की प्रमुख खानें हैं। ताँबा उत्पादन की सबसे बड़ी खान लियोयोल्डविले क्षेत्र में स्थित है।

7. कनाडा–कनाडा का ताँबा उत्पादन की दृष्टि से विश्व में दसवाँ स्थान है। कनाडा अपनी घरेलू आवश्यकता की पूर्ति के बाद अधिक मात्रा में ताँबा का निर्यात कर देता है। यहाँ ताँबा उत्पादन की दृष्टि से निम्न प्रदेश प्रमुख हैं–

(i) सडबरी क्षेत्र–इस क्षेत्र में कनाडा के कुल संचित ताँबे का 70 प्रतिशत विद्यमान है एवं कनाडा के कुल उत्पादन का 50 प्रतिशत ताँबे का उत्पादन इसी क्षेत्र से प्राप्त होता है। यह ओटेरियो प्रदेश में स्थित है।

(ii) फ्लिन–फ्लान क्षेत्र–यह प्रदेश कनाडा के मैनीटोबा एवं सस्केचवान राज्यों की सीमा पर स्थित है।

(iii) नोरन्दा–रोयून क्षेत्र–सडबरी क्षेत्र के बाद कनाडा के ताँबा का अधिकतम उत्पादन यहीं से प्राप्त होता है। कुल ताँबा उत्पादन का 20 प्रतिशत ताँबा धातु यहीं से प्राप्त होती है। बैंकुवर राज्य के उत्तरी भाग में स्थित ब्रिटेनिया बीच क्षेत्र। इनके अतिरिक्त शेरीडोन तथा लिन लेक (मेनीटोबा) प्रमुख क्षेत्र हैं।

8. मैक्सिको–वर्तमान में मैक्सिको विश्व में ताँबा उत्पादक दस शीर्ष देशों में सम्मिलित हो गया है। यहाँ ग्रूपो मैक्सिको द्वारा ताँबा उत्पादन किया जा रहा है।

9. कजाखस्तान–यहाँ बाल्खश झील के पास झेज्काझगान, कोराइस्कोए तथा बोजशाकुल खानों में ताँबा निकाला जाता है।

10. वर्तमान भारत–भारत में यह पुरानी रवेदार कुड़प्पा एवं अरावली की चट्टानों से प्राप्त होगा है। वर्तमान में भारत में लगभग 712 मिलियन टन के मण्डअरावली नवीन भण्डारों के बारे में अनेक स्थान सर्वेक्षण के

अन्तर्गत हैं जिसमें 94 लाख टन धातु उपलब्ध है। झारखण्ड के सिंहभूमि, हजारीबाग, संथाल परगना, मानभूमि क्षेत्र में इसके पर्याप्त भण्डार हैं। यहाँ के भण्डारों में कहीं–कहीं सोने के कण भी प्राप्त होते हैं। राजस्थान के मंधान कुदाहान, कोलिहान, चान्दमारी क्षेत्र ताम्बे के लिए प्रसिद्ध हैं। ये सभी झुंझुनू जिले में स्थित हैं। इसके अतिरिक्त अलवर के खो–दरीबा एवं उदयपुर के देलवाड़ा केरावली क्षेत्र में भी इसके पर्याप्त भण्डार हैं। आन्ध्र प्रदेश में गंदूर एवं नैलोर, अन्य क्षेत्रों में कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में भी जमाव है। झारखण्ड में उत्पादन सबसे अधिक होता है जबकि राजस्थान का ताँबा विश्व में अपनी किस्म, उपयोगिता की दृष्टि से प्रथम स्थान रखता है। देश की कुछ महत्त्वपूर्ण खानें ताम्बा उत्पादन में श्रेष्ठ मानी जाती हैं। झारखण्ड की मोसाँबनी खान, राका माइन्स, आन्ध्र प्रदेश की अग्नि मुण्डाला माइन्स तथा मध्य प्रदेश की मलचखण्ड माइन्स देश की प्रमुख खानें हैं।

11. रूस–वर्तमान समय में अलग–अलग राज्यों में विभाजित हो जाने के कारण यहाँ खनिजों के उत्पादन में भी गिरावट आयी है। यहाँ यूराल क्षेत्र में यूराल पर्वत के दक्षिणी–पश्चिमी किनारे पर सिबाई, डेग्याप्लार्स्क, गाई, उचाली तथा काराबास क्षेत्रों तथा उत्तरी साइबेरिया के नोरिल्स्क क्षेत्र से ताँबे का खनन होता है।

अन्य देश–इन देशों के अतिरिक्त उज्बेकिस्तान के अल्माल्पक, आरमेनियन गणराज्य के अलावार्दी, कजहारन तथा अंगारा, मेक्सिको के सोनोका, सैन्टारोसालिया, मैनिया व कनानिया, क्यूबा के पेनार डेलराया, फिलीपाइन के उत्तरी द्वीप, समार, नेग्रोस व सेबूद्वीप दक्षिणी अफ्रीका के मोस्सेना नबाबीप, फालाबोखा आदि क्षेत्रों से ताँबे का खनन किया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार–अनेक प्रकार की प्रौद्योगिकी, तकनीकी, पूँजी आदि की कमी के कारण विकासशील देश ताँबा के प्रमुख निर्यातक देश हैं। चिली, जैम्बिया, जायरे, मैक्सिको, पौरू आदि प्रमुख निर्यातक देश हैं। ताँबा आयात करने वाले देशों में पश्चिमी यूरोप के देश, जापान, भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

6.6 बाक्साइट

यह खनिज भूगर्भ से खनिज (अयस्क) के रूप में निकाला जाता है और उसे कारखाने में पीस कर साफ किया जाता है। बाक्साइट एक मृत्तिकामय खनिज है जिसमें सिलिका कम और अल्युमिना अपेक्षाकृत् अधिक पायी जाती है। बाक्साइट अयस्क में मिले हुए अपद्रव्यों– लोहा, सिलिका आदि को कास्टिक सोडा, चूना आदि के द्वारा अलग किया जाता है। शोधन के पश्चात् श्वेत रंग की धातु प्राप्त होती है जिसे 'अल्यूमिनियम' के नाम से जाना जाता है। आर्थिक दृष्टिकोण से 60 प्रतिशत से अधिक अल्युमिनायुक्त बाक्साइट को उत्तम माना जाता है। आर्थिक उपयोगिता के अनुसार बाक्साइट की तीन प्रमुख किस्में हैं– (1) बोटामाइट (58 प्रतिशत अल्युमिना), (2) गिवराइट (65 प्रतिशत अल्यूमिना) और (3) डायस्कोर (85 प्रतिशत अल्युमिना)। इनके अतिरिक्त कोरन्डम, सिलिमानाइट तथा कियानाइट खनिजों में भी अल्युमिना पायी जाती है। अतः इसका खनन प्रायः खुली खदान विधि से किया जाता है।

वर्तमान काल में अल्युमिनियम एक अत्यंन्त उपयोगी धातु है। एल्यूमिनियम उद्योग का आधार है। यह उष्ण एवं उपोष्ण कटिबन्धीय भागमें अधिकतम पाया जाता है। एल्यूमिनियम धातु अधिकतर धरातल के पास ही पाए जाते। विश्व में 2018 तक बाक्साइट के कुल भण्डार अफ्रीका (32.1), ओशेनिया (23.1), दक्षिणी अमेरिका एवं कैरिबियन (21.1), एशिया (18.1) तथा अन्य (6.1) में 55 से 75 बिलियन टन आकलित किया गया है। (USGS, 2018)

6.6.1 बॉक्साइट उत्पादन एवं विश्व में वितरण प्रतिरूप

1990 से पूर्व बॉक्साइट का उत्पादन विश्व में अधिक तीव्र गति से नहीं होता था, लेकिन 1990 के बाद विमान उद्योग में एवं अन्य उद्योगों में एल्यूमिनियम की बढ़ती माँग के कारण बॉक्साइट के उत्पादन में अत्यधिक तीव्रता आयी है। वर्तमान में विश्व में बॉक्साइट का कुल उत्पादन 16.5 करोड़ टन होता है, जिसका 1/3 भाग अकेला आस्ट्रेलिया उत्पादित करता है।

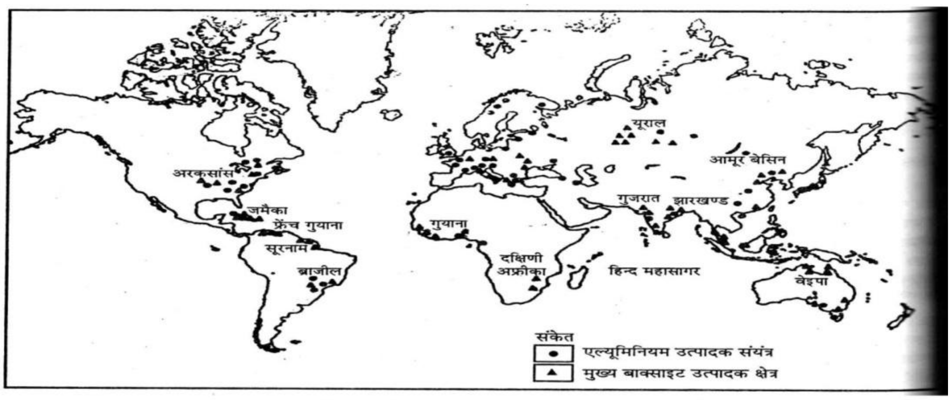

चित्र–4 : विश्व के प्रमुख बाक्साइट उत्पादक क्षेत्र

आस्ट्रेलिया – विश्व में कुल बॉक्साइट उत्पादन का 35.1 प्रविशत भाग उत्पादित करके आस्ट्रेलिया प्रथम वृहत्तम उत्पादक देश है। आस्ट्रेलिया में बॉक्साइट के उत्पादन एवं संचित भण्डार की दृष्टि से क्वींसलैण्ड प्रान्त के केपयार्क प्रदेश में स्थित वाइपा क्षेत्र सम्पूर्ण विश्व में महत्त्वपूर्ण हैं। वाइपा क्षेत्र के समीप स्थित आर्नहेम लैण्ड क्षेत्र के मध्य स्थित गीव थान क्षेत्र भी बॉक्साइट उत्पादन की दृष्टि से प्रमुख हैं।

मध्य तथा दक्षिणी अमेरिका– दक्षिण अमेरिका महाद्वीप का ब्राजील 10.9 प्रतिशत उत्पादन के साथ बॉक्साइट उत्पादन विश्व में इसका वृहत्तम उत्पादक देश है। ब्राजील के आन्तरिक भाग में स्थित मैदानी प्रदेश में ब्राजील का अधिकांश बॉक्साइट उत्पादित किया जाता है।

सूरीनाम विश्व के कुल बॉक्साइट उत्पादन का 2.7 प्रतिशत उत्पादन करता है । इसके प्रमुख यॉक्साइट उत्पादक क्षेत्र सूरीनाम एवं कोहिका नदियों के प्रवाहित मार्ग में पाया जाता है। इसके अलावा कैरीबियन सागर के तटवर्ती भाग में भी बॉक्साइट की कुछ मात्रा पायी जाती है। जमैका विश्व के कुल उत्पादन का 8.5 प्रतिशत बॉक्साइट का उत्पादन करके विश्व में छठा वृहत्तम उत्पादक बन गया है। जमैका के बॉक्साइट उत्पादक क्षेत्र तटवर्ती भाग एवं आन्तरिक भाग में स्थित हैं।

सारणी–विश्व के प्रमुख देशों में बॉक्साइट का उत्पादन

देश	संचित भण्डार	उत्पादन (हजार मी0टन में)	
		2016	**2017**
1. आस्ट्रेलिया	6000	82.0	83.0
2. ब्राजील	2600	34.4	36.0
3. चीन	1000	65.0	68.0
4. गिनी	7400	31.5	54.0
5. भारत	830	23.9	27.0
6. जमैका	2000	8.54	8.1
7. रूस	500	4.43	5.6
8. वियतनाम	3700	1.2	2.0

9. कजाखस्तान	160	5.0	5.0
10. यूनान	250	1.8	1.8
11. गुयाना	850	1.7	1.5
12. इण्डोनेशिया	1000	1.4	3.6
13. मलेशिया	110	1.0	1.0
14. सउदी अरब	210	3.84	3.9
15. अन्य देश	3200	3.1	2.7
विश्व	30,000	275	300

Source: U.S. Geological, Mineral Commodity Summary, 2018, P. 31.

गुयाना का उत्पादन विश्व का 0.57 प्रतिशत है । इसके उत्पादक प्रदेश समुद्र तटीय भाग में एवं मध्य आन्तरिक भाग में देमेदरा एवं बरविश नदियों की घाटियों में परतों के रूप में पाया जाता है। गुयाना अपने उत्पादित बॉक्साइट के अधिकतम भाग को निर्यात कर देता है। पूर्व सोवियत संघ के यूराल प्रदेश के पूर्वी भाग में स्थित स्वेर्डलोवस्क से ओस्र्क तक का प्रदेश, मध्य यूराल में सेरोव, कर्मेस्क क्षेत्र, मास्को, तिखविन, यूक्रेन आदि प्रमुख बॉक्साइट उत्पादक प्रदेश हैं।अफ्रीका महाद्वीप में स्थित गिनी विश्व में चौथा वृहत्तम उत्पादक देश है। गिनी में बॉक्साइट उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र कोनाकी बन्दरगाह का पृष्ठ प्रदेश एवं कास्या क्षेत्र में होता है। गिनी का लगभग सम्पूर्ण बॉक्साइट का उत्पादन इसी क्षेत्र में होता है।

घाना भी विश्व का प्रमुख बॉक्साइट उत्पादक देश है। कुमासी के दक्षिण–पश्चिम भाग में स्थित अफोह क्षेत्र प्रमुख बॉक्साइट उत्पादक प्रदेश हैं। कैमरून का डौनाला एवं सियरालिओ क्षेत्र तथा जायरे का आन्तरिक भाग भी मुख्य उत्पादक प्रदेश है।

भारत, चीन, मलेशिया आदि भी बॉक्साइट के छोटे उत्पादक देश हैं। भारत में बॉक्साइट के संचित भण्डार 830 हजार टन है। प्रमुख उत्पादक क्षेत्र मध्य प्रदेश में सरगुजा, शहडोल, जबलपुर क्षेत्र, झारखण्ड–ओडिशा, गुजरात में जामनगर, कच्छ, सूरत क्षेत्र, कर्नाटक में बेलगाँव एवं बाबाबदून की पहाड़ी क्षेत्र प्रमुख एल्यूमिनियम उत्पादक क्षेत्र हैं।

इण्डोनेशिया के सुमात्रा की बहिद्वीप में स्थित विन्टम द्वीप में देश का सम्पूर्ण बॉक्साइट संचित है। चीन में हुनान, ग्वेचो एवं जेवनान प्रदेश उत्पादन एवं संचित भण्डार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

6.6.2 विश्व के अन्य बॉक्साइट उत्पादक देश

अन्य बॉक्साइट उत्पादक देशों में रूस का यूराल पर्वत पूर्वी भाग में उर्स्क तक बॉक्साइट के भण्डार मिलते हैं। यहाँ सरोव प्रमुख क्षेत्र है। इसके अतिरिक्त साइबेरिया का कोला प्रायद्वीप, टूलोन के उत्तर में स्थित ब्रिग्नोल्स क्षेत्र, यूगोस्लाविया एड्रियाटिक सागर के डालमेशिनय तट का इस्त्रीयन, हंगरी के उत्तर–प्रदेश में बरटैस पर्वत तथा बेकौनी, यूनान में कोरिथ की खाड़ी के उत्तर में माउण्ट पेरानास क्षेत्रों में बॉक्साइट का उत्पादन होता है।

6.6.3 बॉक्साइट का अन्तर्राश्ट्रीय व्यापार

बॉक्साइट का निक्षेप अधिकतर विकासशील देशों में ही पाया जाता है। लेकिन तकनीकी विज्ञान के अभाव की वजह से ये देश उत्पादित अधिकांश बॉक्साइड का निर्यात कर देते हैं। जमैका, सूरीनाम, गुयाना, गिनी, घाना आदि प्रमुख बॉक्साइड निर्यातक देश हैं। जबकि जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, जर्मनी, ब्रिटेन, रूस, इटली आदि प्रमुख आयातक देश हैं।

6.7 सारांश

खनिज ऐसे भौतिक पदार्थ होते हैं, जिन्हें अधिकतर खनन विधि से प्राप्त किया जाता है। लौह अयस्क अर्थव्यवस्था की रीढ़ होता है। सुई से लेकर हवाई जहाज तक बनाये जाते हैं। बिना इसके आज के समाज की कल्पना करना असम्भव है। लौह अयस्क को अति उच्च तापमान पर लगाया जाता है और उसमें से अशुद्धियों को दूर करके शुद्ध धातु निकाली जाती है। बॉक्साइड एक मृत्तिकामय खनिज होता है जिससे एल्युमिनियम की प्राप्ति होती है। वर्तमान समय में एल्युमिनियम सबसे महत्त्वपूर्ण धातु बन गया है। इसका उपयोग विद्युत एवं संचार, बर्तन, फाउण्ड्री और धातु उद्योग, जहाज, हवाई जहाज, फर्नीचर, रेफ्रीजरेटर, रेलवे, मोटरयानों में उपयोग होता है। टिन (Tin) एक विरल धातु है। टिन को ताँबा के साथ मिलाकर कांसा (Bronze) बनाया जाता है। इसका उपयोग अलौह धातुओं के मिश्रण के रूप में किया जाता है। टिन से अत्यन्त पतली चादरें बनायी जा सकती हैं। अतः स्पष्ट है कि आधुनिक अर्थव्यवस्था के विकास के लिए लौह अयस्क, बॉक्साइड और टिन आधार का कार्य करते हैं।

6.8 बोध प्रश्न

1. विश्व में लौह अयस्क के उत्पादन, वितरण एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विवरण प्रस्तुत कीजिए।
2. बॉक्साइड का संचित भण्डार बताते हुए इसके प्रमुख उपयोगों की जानकारी प्रस्तुत कीजिए।
3. बाक्साइट खनिज की उपयोगिता बताते हुए इसका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का वर्णन कीजिए।

6.9 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. विश्व में लौह अयस्क सर्वाधिक उत्पादन करने वाला देश कौन सा है

अ. चीन ब. भारत

स. यूक्रेन द. रूस

2. चिक्वकमाटा किसके उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है–

अ. लौह अयस्क ब. मैगनीज

स. तांबा द. टिन

3. एल्यूमिना प्राप्त होती है –

अ. हेमेटाइट ब. बॉक्साइट

स. टिन द. अभ्रक

4. कौनसी खान मैगनीज उत्पादन से सम्बन्धित नहीं है–

अ. निकोपोल ब. चियातुरा

स. बेल्लारी द. मेसाबी रेंज

वस्तुनिष्ठ प्रश्न का उत्तर 1. अ 2. स 3. ब 4. द

6.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. सिंह, जगदीश, एवं सिंह, के.एन.(2010) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।
2. मौर्य, एस. डी. (2022), आर्थिक भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
3. श्रीवास्तव, वी.के. एवं राव, बी.पी. (2002), आर्थिक भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
4. गौतम, अलका, (2019) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
5. अलेक्जेंडर, जे.डब्लू. (1979) इकोनॉमिक ज्योग्राफी, प्रेंटिस हाल,
6. लांगमैन, जी.सी. एण्ड मार्गन, जी.सी. (1982) हयूमन एण्ड इकोनॉमिक ज्योग्राफी,आक्सफोर्ड प्रेस.

इकाई –07 ऊर्जा तथा भाक्ति के संसाधन, वितरण एवं उत्पादन प्रतिरूप– कोयला, जलविद्युत,ऊर्जा के संभाव्य स्रोत, परमाणु ऊर्जा, सौर ऊर्जा

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 ऊर्जा तथा शक्ति के संसाधन

7.4 कोयला

7.5 जलविद्युत

7.6 ऊर्जा के संभाव्य स्रोत

7.7 परमाणु ऊर्जा

7.8 सौर ऊर्जा

7.9 सारांश

7.10 बोध प्रश्न

7.11 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

7.12 संदर्भ ग्रन्थ

7.1 प्रस्तावना

आर्थिक क्रियाकलापों का संचालन में ऊर्जा के बिना सम्भव ही नहीं है। मनुष्य के द्वारा सृजित प्राविधिकी ऊर्जा से ही संचालित होता है। प्राविधिकी जितनी ही उच्चस्तरीय होगी ऊर्जा का खपत उतना ही अधिक होगी। प्रकृति में जैव एवं अजैव तत्वों के मध्य अन्तर्प्रक्रिया ऊर्जा पर ही निर्भर करता है। ऊर्जा के बारे हम पढ़ते रहे है कि इसका न ही सृजन होता है और न ही विनाश होता है, अपितु ऊर्जा का एक रूप से दूसरे रूप में रूपांतरण होता है। किसी भी देश के आर्थिक विकास में ऊर्जा संसाधन की उपलब्धता महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। ऊर्जा के विविध रूपों का नियंत्रण वह शक्ति है जिससे हम आर्थिक क्रियाकलाप कर पाते है। इसीलिए शक्ति संसाधन भी कहते है। अतः इस इकाई में हम इसके विविध रूपों के बारे में अध्ययन करेंगे।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का अधोलिखित उद्देश्य है–

1. ऊर्जा संसाधन के बारे में अध्ययन कर अभिव्यक्त कर सकेंगे।
2. कोयला संसाधन की उत्पत्ति, प्रकार एवं वितरण प्रतिरूप के बारे जान सकेंगे।
3. जलविद्युत ऊर्जा की महत्ता को समझ सकेंगे।
4. परमाणु ऊर्जा के बारे ज्ञानवर्द्धन कर सकेंगे।
5. सौर ऊर्जा की उपयोगिता को जान सकेंगे।

7.3 ऊर्जा तथा भाक्ति के संसाधन

पृथ्वी पर पारिस्थितिकी तंत्र ऊर्जा से संचालित होता है और का उसका मूल स्रोत्र सूर्य है। सूर्य से ही पृथ्वी के जैव एवं अजैव तत्व ऊर्जा प्राप्त करते है। जीव–जन्तुओं को यह ऊर्जा पौधे से भोजन के रूप में प्राप्त होता है। ऊर्जा का भोजन श्रृंखला के रूप में एक जीव से दूसरे जीव में स्थानान्तरण एवं रूपांतरण होता रहता

है।पौधें एवं जीव–जन्तुओं के मृत हो जाने पर इनके भूमि के सड़–गल कर नीचे दब जाने के कारण लम्बे समय बाद ये जीवाश्म ईधन(कोयला, तेल, गैस) के रूप में बदल जाते है। जिस माध्यम से ऊर्जा का उपयोग होता है उसके अनुसार इसे हम तीन भागों में बांट सकते हैं–

1. यांत्रिक ऊर्जा
2. रासायनिक ऊर्जा
3. विद्युत ऊर्जा.

ऊर्जा की उपलब्धता प्राप्यता, अप्राप्यता अथवा उपभोग स्तर के अनुसार ऊर्जा का वर्गीकरण किया जा सकता है।

7.4 कोयला

कोयला एक ज्वलनशील कार्बनिक तत्व है। कोयले का निमार्ण एक लम्बी प्रक्रिया के दौरान होता है। लगभग तीन सौ मिलियन वर्ष पूर्व पृथ्वी परघने वन थे। विभिन्न प्राकृतिक प्रक्रमों के कारण ये वन मृदा के नीचे दब गए। इनके ऊपर अधिक मृदा जम जाने के कारण वे संपीड़ित हो गए और उनका तापमान भी बढ़ता गया। उच्च ताप व उच्च दाबव के कारण पृथ्वी के भीतर मृत पेड़ पौधे धीरे–धीरे कोयले में परिवर्तित हो गए। कोयले में मुख्य रूप से कार्बन होता है। मृत वनस्पति के धीमे प्रक्रम द्वारा कोयले में परिवर्तन को कार्बनीकरण कहते हैं। क्योंकि यह वनस्पति के अवशेष से बना है। अतः कोयले को जीवाश्म ईंधन भी कहते हैं।

कोयला संस्कृत के कोकिल शब्द से बना है। साधारणतः लकड़ी के अंगारो को बुझाने से बच रहे जले हुए अंश को कोयला कहा जाता है। आजकल खदानों से प्राप्त हो रहे खनिज पदार्थ को कोयला की श्रेणी में रखते हैं। खदानो से लकड़ी, कोयला, काठ का कोयला, पत्थर का कोयला, कोयला हड्डी का कोयला आदि के रूप में प्राप्त होता है। यह सभी नामों से जाना जाने वाले कोयले घरेलू कामों रासायनिक क्रियाओं और उद्योग धंधे में प्रयुक्त होते हैं। सभी स्थानों पर कोयला ईंधन के रूप में उपयोग होता है।

कोयला ईंधन के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। ऊर्जा के प्रमुख स्रोत के रूप में कोयला अत्यंत महत्वपूर्ण है। पौधो के विघटन रू‍ में परिवर्तन तथा कालांतर में ऊष्मा एवं दबाव के फल स्वरूप अश्मीकरण होने से पहले पीट बनता है। कालान्तर में दबाव वृद्धि के साथ उष्मा् भी बढ़ती है। परिणाम स्वरूप कार्बनीकरण प्रक्रिया में वृद्धि के साथ–साथ पीट का रूप परिवर्तन होता जाता है। इस दबाव के अतिरिक्त उच्चकोटि के कोयले के निर्माण में भूगर्भिक दबावो का भी योगदान रहता है। उदाहरण स्वरूप एथ्रसाइट आदि कड़े कोयले के निर्माण में वलन, भंशन तथा संपीड़न आदि क्रियाओ से नमी सूख जाती है। कुल प्रयुक्त ऊर्जा का 35 % से 40%भाग कोयले से प्राप्त होता है। कोयले से अन्य दहनशील तथा उपयोगी पदार्थ भी प्राप्त किए जाते हैं। अलग–अलग प्रकार के कोयले में कार्बन की मात्रा अलग–अलग होती है। कोयला निर्माण की दृष्टि से दो भूगर्भिक कालावधियां प्रमुख है–

1. ऊपरी कार्बोनीफेरस युग
2. तृतीय महायुग

7.4.1 कोयला के प्रकार

लकड़ी से कोयला बनने तक की प्रक्रिया में 5 अवस्थाओं में पदार्थ मिलते हैं। लकड़ी, पीट, लिग्नाइट, बिटूमिनस तथा एन्थ्रेसाइट कोयला। पांचों पदार्थों की अलग–अलग विशेषताएं हैं। सभी पदार्थों में कार्बन की मात्रा अलग–अलग पाई जाती है। कार्बन की मात्रा से ही उष्मा की मात्रा का भी निर्धारण होता है। लकड़ी में कार्बन की मात्रा 0.3 % सबसे कम तो सर्वाधिक मात्रा एन्थ्रासाइट में 91% से 96 % तक कार्बन मिलता है। कोयला चार प्रकार का होता है–

1. एन्थ्रासाइट

यह सबसे उच्च गुणवत्ता वाला कोयला माना जाता है। क्योंकि इस में कार्बन की मात्रा 94% से 98 % तक पाई जाती है। यह कोयला मजबूत चमकदार व काला होता है। इसका प्रयोग घरों तथा व्यवसाय में होता है।

2. बिटुमिनस

यह कोयला भी अच्छी गुणवत्ता वाला माना जाता है। इसमें कार्बन की मात्रा 77 से 86 प्रतिशत तक पाई जाती है। यह एक ठोस अवसादी चट्टान है। जो काली गहरी भूली रंग की होती है। इस प्रकार के कोयले का उपयोग भाप तथा विद्युत संचालित ऊर्जा के इंजनों में होता है। इस कोयले से कोक का निर्माण भी किया जाता है। यह विश्व का सर्वाधिक उत्पादित होने वाला कोयला है।

3. लिग्नाइट

इसे भूरा कोयला भी कहते है। इसमें कार्बन की मात्रा 29 प्रतिशत से कम होती है। आर्द्रता की मात्रा अधिक पायी जाती है। जलाने पर यह धुँआ अधिक देता है। इसमें दहन क्षमता कम होती है।

4. पीट

यह कोयले के निर्माण से पहले की अवस्था होती है। इस में कार्बन की मात्रा 27 प्रतिशत से भी कम होती है। तथा यह कोयला स्वाास्थय की दृष्टि से अधिक हानिकारक होता है।

7.4.2 कोयले का उपयोग–

कोयले का उपयोग उष्मा उत्पादन तथा यांत्रिक ऊर्जा के लिए कई विधियों से किया जाता है। कोयले की उष्मा उत्पादकता बढ़ाने के लिए उसे साफ करना, विशिष्ट आकार में तोडना और चलाना आदि क्रियाएं की जाती है। ऊर्जा के अतिरिक्त धातुकर्मी तथा रासायनिक कारखानों की कई प्रक्रिया में कोयले का कच्चे माल के रूप में उपयोग होता है। कोक तैयार करने में कोयले का लगभग 30 प्रतिशत वजन कई प्रकार की गैसों तथा कोलतार आदि के रूप में बाहर निकल जाता है।

7.4.3 कोयला उत्खनन की विधियां

कोयले के खदान किसी प्रदेश या क्षेत्र की भौगोलिक दशाओं तथा जमाव की भूगर्भिक दशाओं पर निर्भर करता है। कोयले की खदाने चार प्रकार की होती है–खुली खदान, क्षैतिज या ड्रिफ्टखदान,लम्बवत या शाफ्ट खदान,ढाल खदान।

1. **खुली खदान** – जब कोयला धरातलीय सतह के निकट स्थित होता है तो ऊपर से मिट्टी हटाकर उसे प्राप्त कर लिया जाता है। यहां से कोयला का उत्खनन सबसे आसान और सस्ते में हो जाता है।
2. **क्षैतिज सुरंगी खदान**– जब कोयला चट्टानों के मोटे आवरण के नीचे दबी होती है तब उसे क्षैतिज सुरंग बनाकर निकाला जाता है।
3. **लम्बवत खदान**– जब कोयले की परत काफी गहराई पर होती है तो उसे लम्बवत सुरंग बनाकर निकाला जाता है।
4. **ढ़लुआ खदान**– जब कोयला की परते तिरक्षी होती है तो उसके उत्खनन हेतु तिरक्षे सुरंग बनाने पड़ते है।

कोयला उत्खनन के लिए धरातलीय खदाने सर्वश्रेष्ठ होती है। इन खदानों में कोयले की उपलब्धि 82 से लेकर 100 प्रतिशत तक होती है। गहरी खदानों में 40 सं 60 प्रतिशत प्राप्ति ही सम्भव है तथा उसके लिए भारी यंत्रों का भी उपयोग करना पड़ता है।

7.4.5 कोयला उत्पादन–

भूगोल के अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कोयले का भंडार एक निश्चित मात्रा में ही है। जो धीरे–धीरे समाप्त हो रहा है। सन् 1860 ई० में 20 करोड़ टन 1960 में 262 करोड़ टन सन् 1976 ई० में 331 करोड टन 1987 ई० में 455 करोड टन कोयले के भंडार कहां पता लगा था। सन 2021 में 769 करोड़ टन कोयले का भंडारण का पता लगा है विश्व के प्रमुख कोयला उत्पादक देश व उनके उत्पादन मिलियन टन में इस प्रकार है।उत्पादन की दृष्टि से क्रमशः चीन 49.5 प्रतिशत प्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका14.1 प्रतिशत के साथ द्वितीय स्थान पर हैं। भारत 5.6 प्रतिशत उत्पादन करता है और विश्व में तृतीय स्थान पर है।

पश्चिमी विकसित देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका को छोड़कर कोयला उत्पादन कार्य स्थिर हो गया है। जहां उत्पादन हो रहा है उस देश में उत्पादन हासोन्मुख है। विश्व के प्रमुख देशों में कोयला के उत्पादन का वितरण अधोलिखित है–

1. चीन

चीन को विश्व का प्रथम स्थान प्राप्त है। विश्व का 50% कोयला अकेले चीन में उत्पादित होता है। चीन में 30 से अधिक कोयले की खाने है। सर्वाधिक कोयला क्षेत्र शासीाॅ सेंसीाॅ कांसूाॅ होनान प्रदेश में पड़ता है यहां एन्थ्रेसाइट कोयले का भंडार सर्वाधिक मात्रा में है। मंचूरियााॅ होपे, शांतुंग एवं अन्हवी प्रांतों में भी कोयले का उत्पादन होता है। जेचवान कोयला भंडारण विश्व भर में प्रसिद्ध है मंचूरिया में विटूमिनस प्रकार का कोयला प्राप्त होता है। फुशुनाॅ फुटशिन प्रमुख कोयले के भंडार हैं। शेनयांग से 36 किलोमीटर दूर है जो सर्वाधिक मोटी परत 120 मीटर मिलती है।यांग्टिंसीक्यांहग के दक्षिण निम्न आबादी वाले क्षेत्रों में सर्वाधिक कोयला छोटी खदानों से प्राप्त होता है।

2. भारत

विश्व के प्रमुख कोयला उत्पादक देशों में भारत का तीसरा स्थान है विश्व का 5.6 % कोयले का उत्पादन भारत के दामोदर घाटी, रानीगंज, झरिया, बोकारो,रामगढ़, गिरिडीह, सोम नदी घाटीतथ गोदावरी घाटी मैं होता है। कुल उत्पादन का 50% कोयला रानीगंज व झरिया खदान से होता है। तमिलनाडु, केरल, आंध्र प्रदेश व कर्नाटक विद्युत आपूर्ति में कोयले का महत्व अधिक है। भारत में कोयले का उत्पादन विकसित अवस्था में है। यंत्रों द्वारा खुदाई होती है।

3. संयुक्त राज्य अमेरिका

संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व का द्वितीय वृहत्तखम जुनूनियत पिक्चर14.1: उत्पादक देश है। संयुक्त राज्य अमेरिका में निम्नलिखित कोयला प्रदेश पाए जाते हैं।

अप्लेहशियन तथा अन्य पूर्वी प्रदेश के अंतर्गत अप्ले शियन प्रदेश उत्तर पूर्वी पेंसिलवानिया एन्थ्रासाइट तथा अटलांटिक तटीय क्षेत्र पेंसिलवानिया से लेकर दक्षिण पश्चिम में मध्य अलबामा तक लगभग 960 किलोमीटर लंबाई में फैला है। इस प्रदेश में तीन प्रमुख कोयला उत्पादन क्षेत्र हैं जिनमें उत्तरी अप्ले शियन क्षेत्र दक्षिणी अप्यलेतिशियन क्षेत्र व पश्चिमी बर्जिनिया का एक भाग पूर्वी केटकी टेन्नीसी सम्मिलित है।

4. रूस

संपूर्ण विश्व का 14.4 प्रतिशत संरक्षित कोयले का भंडार रूप में पाया जाता है। यह संचति भंडार की दृष्टि से विश्व में द्वितीय स्थान पर है। उत्पादन की दृष्टि से रूस विश्व में छठे स्थान पर है। यह विश्व का 4.0 प्रतिशत कोयले का उत्पादन करता है। मध्य सारबेरिया, डोनवास, यूराल, कारागाण्डा, कुजबास आदि प्रसिद्ध कोयला उत्पादक प्रदेश का।

5. यूरोप

यूरोप विश्व का 4.2 प्रतिशत कोयले का उत्पादन करता है। यहां कोयले का उत्पादन स्थिपर अवस्था में पहुंच गया है। जर्मनी यूरोप का सर्वाधिक कोयला उत्पादक देश है। यूरोपीय देशों में श्रम महंगा हो गया है। कोयले की खदान अब गहरी घाटी में बदल गई है। इसलिए उत्पादन स्थिर हो गया है। क्लायइट घाटी, नार्थम्बदरलैण्ड, यार्कशायर, बेल्स क्षेत्र, लंकाशायर, फ्रान्स एवं बेल्जियम आदियूरोप की प्रसिद्ध कोयला प्रदेश है। जर्मनी विश्व का 1.1 प्रतिशत कोयले का उत्पादन करता है यह विश्व में नौवें स्थान पर है। पोलैंड विश्व का दसवां सबसे बड़ा कोयला उत्पादक देश है। यह विष्व का 1.4 प्रतिशत कोयले का उत्पादन करता है।

6. आस्ट्रेलिया

आस्ट्रेलिया में विश्व का 5.8प्रतिशत कोयले का उत्पादन होता है। यह विश्व में पांचवा सबसे बड़ा देश

है। जहां पर कोयले का उत्पादन होता है। विश्व के आरक्षित भण्डार की दृष्टि से ऑस्ट्रेलिया चौथा बड़ा क्षेत्र है यहां पर विश्व का 8.9% कोयले का भंडार है। यहां पर उत्तम कोटि व निम्न कोटि का कोयला पाया जाता है। ऑस्ट्रेलिया के प्रत्येक राज्य में थोड़ा बहुत कोयले का भंडार है व उत्पादन होता है। न्यू साउथ् वेल्स क्वींडसलैण्ड में विटुमिनस व विक्टोरिया प्रान्त में लिग्नाइट प्रकार का कोयला पाया जाता है। इसलिए उद्योग का विकास इन्ही क्षेत्रों में हुआ है। यहां तीन प्रमुख खदाने हैं– न्यूककैसल खदान, लिथो खदान व कबा खदान।

7. दक्षिण अफ्रीका

दक्षिण अफ्रीका में प्रचुर मात्रा में कोयले का भंडार उपलब्ध है। जहां विश्व का 3.6 प्रतिशत उत्पादन होता है तथा विश्व का 3.5 प्रतिशत संचित भंडार उपलब्ध है। यहां उत्तम कोटि का कोयला पाया जाता है। दक्षिण अफ्रीका में अधिकांश कोयला नेटाल, ट्रांसवाल, अरेंज फ्री स्टेट, मिडिलवर्ग व प्रिटोरिया के पास जोहांसवर्ग में कोक कोयला पाया जाता है। जिम्बांम्बे के जाम्बिन क्षेत्रों में कोयले के थोड़े बहुत भंडार पाए जाते हैं।

7.5 जल विद्युत

वर्तमान समय में जल विद्युत शक्ति बड़े महत्व का एक प्रमुख शक्ति संसाधन है जल शक्ति के विकास एवं उत्पादन और उपभोग से ही किसी देश की आर्थिक अवस्था का पता लगाया जा सकता है। यह एक निश्चित सत्य है कि भूमंडल पर कोयले और तेल के भंडार प्रायः सीमित है समाप्त के कगार पर है। इसके विपरीत जल शक्ति एक अटूट साधन है कभी समाप्त नहीं होगा। जल शक्ति बहुत ही सरल है इस का प्रयोग उत्पादन से दूर तक पहुंचा कर किया जा रहा है।

7.5.1 प्राकृतिक दशायें

जल विद्युत उत्पादन के लिए निम्नलिखित प्राकृतिक दशायें होनी चाहिए–

1. ऊचाई – बहता हुआ जल ऊपर से नीचे गिरकर अपने धक्के से टरबाइन के पहिए घूमाता है। जितनी अधिक ऊंचाई से जल बहकर आ रहा होगा उतनी ही अधिक मात्रा में शक्ति उत्पादन होगा।
2. वर्षा – वर्षा पर्याप्त मात्रा में हो जिससे वर्ष भर पर्याप्त मात्रा में जल बहता रहे।
3. तेज ढाल – तेज ढाल वाले क्षेत्रों में एक से अधिक बांध बनाकर विद्युत उत्पादन किया जाता है।
4. जल की समान मात्रा नहीं बल्कि झील में जल की मात्रा वर्ष भर समान रुप से बना रहें।
5. वर्ष भर तापमान गर्म बना रहें, कभी हिमांक नीचे न जाय।

7.5.2 जल विद्युत गृह के आवश्यक घटक–

जल विद्युत के उपयोग में मानव पहले की अपेक्षा अधिक वृद्धि कर सकता है इससे तीन विशेष काम इस प्रकार है–

1. जल शक्ति से चलने वाले टरबाइन का विकास –

   यह एक जल पहिया होता है। जिसमें जल की एक नियंत्रित धारा दबाव डालने पर इस पहिये के पंखे से टकराती है और जल पहिया घूमने लगता है।

2. डायनमो का पूर्ण विकास होना

   जिसमें टरबाइन के घूमने से जो यांत्रिक शक्ति उत्पन्न होती है वह विद्युत शक्ति में परिवर्तित होती है।

3. प्रकार के सीमेंट के निर्माण में निरंतर वृद्धि होते जाना जिससे कंक्रीट के बड़े बॉध बनाकर विशाल जल राशि को संग्रहित कर नियमित रूप से नीचे की ओर छोडा जा सकता है।

7.5.3 जल विद्युत शक्ति के विकास की आवश्यक दशाएं–

जल विद्युत शक्ति के विकास के लिए निम्नलिखित भौगोलिक आर्थिक दशाओं का होना आवश्यक है

1. जिस स्थान पर जल शक्ति उत्पन्न की जाय वहां का धरातल ऊंचा नीचा होना चाहिए। क्योंकि ऐसे स्थान पर ही जलप्रपात बन सकते हैं। यही कारण है कि नार्वेॉ स्वीचडेनॉ इटलीॉ जापान तथा भारत में बड़ी मात्रा में जल विद्युत उत्पन्न की जाती है।
2. जलप्रपात का ऊंचा तथा बड़ा होना भी जलविद्युत की मात्रा को प्रभावित करता है। जहां जलप्रपात से जितनी ऊंचाई से जल गिरेगा वहां उतने ही कम व्याय और सुविधा से अधिक विद्युत उत्पन्न होने की संभावना है।
3. जल विद्युत के उत्पादन में जल की मात्रा का निरंतर और एक सी मात्रा में उपलब्ध होना भी आवश्यक है यदि ऐसा ना हुआ तो जल विद्युत उत्पादन में अवरोध होने लगता है ऐसे स्थानों पर वर्षा जल को रोककर नियंत्रित करना पड़ता है। जिससे वर्ष भर आवश्यक मात्रा में जल प्राप्त हो सके।
4. जल प्रताप का प्राकृतिक होना भी आवश्यक है। जहां प्रपात नहीं होते वहां कृत्रिम जलप्रपात बनाए जाते हैं। कृत्रिम प्रपात बनाने में बड़ा व्यय होता है। इससे विद्युत भी महंगी पड़ती है।
5. जल विद्युत उत्पादन उन्हीप प्रदेशों में हो सकता है जहां पर कोयला था तेल की उपलब्धता कम हो व महंगा हो। नही तो विद्युत कोई खरीदेगा नही।
6. जल विद्युत उत्पादन जल विद्युत उत्पादन केंद्र क्षेत्र के पास सड़क मार्ग रेल मार्ग की सुविधा सुगमता हो।
7. जल विद्युत उत्पादन व उपभोग में ज्यादा दूरी नहीं होनी चाहिए क्योंकि विद्युत तार में 10 से 20ः विद्युत नस्टे हो जाती है ह्रास होता है।
8. विद्युत उत्पादन में जो राशि काम में आती है यदि उसे बाद में सिंचाई के लिए काम में लाया जा सके तो उससे विद्युत उत्पादन का व्येय घट जाता है। भारत की नदी घाटी योजनाएं इस प्रकार की हैं।

7.5.4 जल विद्युत शक्ति का महत्व–

जल विद्युत शक्ति का महत्व अधिक है। क्योंकि अन्य पदार्थ जैसे कोयलाॉ पेट्रोल महंगे होते जा रहे हैं। उत्पादन में ह्रास हो रहा है। भंडार समाप्त हो रहे हैं। जल विद्युत शक्ति की सर्वर प्रियताॉ शीघ्र प्रचार तथा महत्व के निम्नलिखित कारक है

1. कोयला व पेट्रोलियम की मात्रा निश्चित है। जबकि जल की मात्रा का भंडार अक्षय है। यह निरंतर उत्पन्न की जा सकती है।
2. जलविद्युत के प्रयोग में स्वच्छता व सुविधा रहती है अतः इसे श्वेत कोयला कहते हैं। कोयला तथा पेट्रोलियम की अपेक्षा इसमें कम श्रमिकों की आवश्यकता होती है।
3. विद्युत के प्रयोगों से उद्योगों के विकेंद्रीकरण में सरलता हो गई है। उसे केंद्रीकरण के दोषो से बचाया जा सकता है।
4. विद्युत द्वारा यंत्र चलाने से कम शक्ति का व्यय होता है।
5. 6 टन कोयला बराबर 1 हॉर्स पावर विद्युत शक्ति होती है इतना कोयला जलाने पाडेगें।
6. विद्युत के उपयोग से कोयले की बचत होती है। धुऑ नहीं होता है।
7. जलविद्युत के उपयोग से पेट्रोलियम पदार्थ की बचत होती है।
8. कोयले के स्थान पर अब बिजली से रेल गाड़ी चलती है।
9. धुआं रहित यातायात को बल मिल रहा है।

7.5.6 जल शक्ति की सम्भावित संचित राशि–

जल विद्युत की सुरक्षित और उत्पादित राशि का अनुमान करना बडा ही दुष्कर है। विश्व की सुरक्षित राशि का 40% अफ्रीका में एशिया में 23% उत्तर अमेरिका में 13% यूरोप में 11% पाया जाता है। दक्षिणी अमेरिका में 10%तथा आस्ट्रेलिया में 3% सुरक्षित है। विश्व के जल विद्युत शक्ति का अनुमानित भंडार सबसे अधिक उष्णं कटिबंधीय अफ्रीका में पाए जाते हैं। ऐशिया दूसरे स्थान पर है। उत्तरी अमेरिका तीसरे स्थान पर है।

7.5.7 जल विद्युत शक्ति उत्पादन क्षेत्र का वितरण स्वरूप–

जलविद्युत का सर्वाधिक विकास यूरोपीय देशों और अमेरिका में हुआ है। इटली, फ्रांस, स्वींडेन, नार्वे, स्विट्जरलैंड और जर्मनी यूरोप की समस्त विकसित शक्ति का 75 प्रतिशत उत्पन्न करते हैं। व्यक्तिगत रूप से इटली में अपनी जलशक्ती का 60 %स्वीटजरलैंड ने 67% जर्मनी ने 54 % नार्वे ने 53 % फ्रांस 48 %स्वीडेन 27 % रूस 34 % का विकास किया है।

1. उत्तरी अमेरिका में जल शक्तिः

संयुक्त राज्य अमेरिका के मुख्य जल विद्युत उत्पादन केंद्र पूर्वी अटलांटिक समुद्र तटीय मेखला में फैले हुए हैं। विडमात पठार और तट के बीच में झारनो की एक पंक्ति है। जो नदियां अप्लेंशियन पर्वत से निकलती है।वे सभी डिलावेयर सस्केहाना, पोटोमैक और जेम्स पठार को छोड़ते ही मैदानी भाग में प्रवेश करते ही झरने बनाती है। प्रमुख झरने ट्रेण्टन, फिलाडेल्फिया, बाल्टीमोर, वाशिंगटन, रिमांण्ड, पिट्सवर्ग, कोलंबिया आज नगर बसे हैं।

1. वर्जिनियां कैरोलीना राज्यों में प्रपात रेखा के सहारे चारलोट नगर तक जल विद्युत उत्पादन होता है।
2. याग्रा जलप्रपात ईरी और ओप्टारियो झीलो के मध्य स्थित है यहां से लेकर हडसन नदी तक जल विद्युत केंद्र स्थापित है।
3. महान जिलों के दक्षिणी क्षेत्र में सुपीरियरॉ मिशीगन आदि में औद्योगिक मांगे आधार जल विद्युत का उत्पादन होता है।
4. प्रशांत तटीय क्षेत्रों में कैलिफोर्निया तक जल विद्युत का उत्पादन होता है।
5. टेनेसी घाटी परियोजना तक बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजना के अंतर्गत जल विद्युत का उत्पादन किया जाता है।

2. यूरोप में जल विद्युत शक्ति उत्पादन क्षेत्र

इटली में सर्वाधिक जल विद्युत उत्पादन की जाती है। देश के उत्तरी भागों में पर्वत और मैदान के संगम क्षेत्र जल विद्युत उत्पन्न करने के आदर्श क्षेत्र हैं। पीडमाण्डॉ लोम्बा डीं और वैनेशिया राज्य विद्युत उत्पादन में प्रथम है।नार्वे तथा स्वीडेन यूरोप का 25ः जल विद्युत उत्पादित करते हैं। ऊंचे पर्वतीय भाग हिमनदकृत महान झीलें तंग घाटियों और द्रुतगामी प्रपात बनाने वाली नदियों से पूरा क्षेत्र भरा पड़ा है। इसलिए सर्वाधिक विद्युत उत्पादन यहां पर होता है।

रुस जल शक्ति भंडार की दृष्टि से विश्व में सबसे प्रथम देश है। रूस का पहला जल विद्युत केंद्र सन 1957 ई० में बोल्खोव में स्थापित किया गया। यूरोप में सबसे पहले निपर नदी पर सन् 1932 ई० मे बनाया गया। कांकेस प्रदेश की निपरॉ बोल्गायॉ ड्वीना, खीवर, बारखोव नदियों पर जल विद्युत उत्पादन होता है। स्विट्जरलैंड में आल्प्स से निकलने वाली नदियों पर जल विद्युत का उत्पादन होता है।

3. अफ्रीका के जल विद्युत शक्ति उत्पादन क्षेत्र

समस्त विश्व अफ्रीका महाद्वीप जल विद्युत उत्पादन में पिछड़ा हुआ है। लेकिन दक्षिण अफ्रीका देश अफ्रीका में प्रथम स्थान रखता है फिर भी पिछड़ा हुआ है इसके प्रमुख इस प्रकार है

1. नदियों में बाढ़े आती है।

2. नदिया वर्ष पर्यन्तत नहीं बहती है।

3. उद्योगों का अभाव है विद्युत मांग नहीं है।

4. गरीबी के कारण अफ्रीका में विद्युत उत्पादन नहीं किया जाता है।

इसके बाद भी विक्टोरिया प्रपात, फरीदा आंधॉ ओवने प्रपात आस्वांन बांध, ओकोसोम्बा बांध जल विद्युत उत्पादन के प्रमुख केंद्र हैं।

4. एशिया के जल विद्युत उत्पादन क्षेत्र

जापानः जापान एशिया का सर्वाधिक औद्योगिक व विकसित देश है। इसलिए विद्युत की मांग अधिक है। और जलविद्युत का उत्पादन भी अधिक है। यहां जल विद्युत के उत्पादन के सभी सुविधाएं उपलब्ध है। जापान में सन 2020 के आंकड़े के आधार पर देखा जाए तो 50016 मेगावाट का वार्षिक उत्पादन होता है। विश्व में सातवें स्थान पर है।

भारतः एशिया महाद्वीप का दूसरा सबसे बड़ा देश है जो जल विद्युत का उत्पादन करता है। भारत में जल विद्युत का पर्याप्त उत्पादन हो रहा है। और अभी उत्पादन की संभावनाएं हैं। जल विद्युत उत्पादन की सभी अवस्थाएं भारत में उपलब्ध है। वर्ष भर पर्याप्त वर्षॉ जलप्रपात का होनाॉ वर्ष पर्यंत नदियों में जलॉ पर्वतीय पहाड़ी क्षेत्रॉ विद्युत की मांगॉ औद्योगिक विद्युत की मांग आदि सभी अवस्थाएं हैं।

भारत में जल विद्युत उत्पादन के निम्न क्षेत्र हैं—

1. उत्तरी भारत में हिमालय पर्वत के नीचे कश्मीर से लेकर आसान तक का भाग सबसे बड़ा क्षेत्र है।

2. दूसरा दक्षिणी प्रायद्वीपीय क्षेत्र है। इस क्षेत्र में भारत की मुख्यदृ मुख्य परियोजनाएं कार्य कर रही है।

3. सतपुडा, विंध्याचल, महादेव एवं मैकाल पहाड़ियों के सहारे जल विद्युत का उत्पादन होता है।

भारत विश्व का छठा सबसे अधिक जल विद्युत उत्पादन देश है। भारत से पहले चीन, ब्राजील, यू० एस० ए०,कनाडा एवं रूस है। भारत प्रतिवर्ष 50680 मेगा वाट जल विद्युत का उत्पादन करता है।

भारत में महाराष्ट्र में टाटा जलविद्युत, तमिलनाडु में पायकारा योजना, मैसूर योजना, केरल में पल्लीवासल योजना, कर्नाटक में शिवासमुद्राम,जोग प्रपात योजना, कश्मीर में बारामूला योजना, हिमाचल प्रदेश में मंडी योजना, उत्तर प्रदेश में गंगा नहर ग्रिड योजना आदि द्वारा जल विद्युत का उत्पादन हो रहा है।पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत भाखड़ा नांगल, दामोदर, कोसी, हीराकुंड, तुगंभद्रा, चंबल, रिहंद आदि के माध्यम जल विद्युत का उत्पादन हो रहा है।

7.6 ऊर्जा के संभाव्य स्रोत

उक्त ऊर्जा स्रोतों के अतिरिक्त इसके सभाव्य स्रोत निम्नलिखित है—

1. **शिला तेल**—

   शिला तेल पेट्रोलियम की तरह झीलों की तली में जमें हुए हाइड्रोकार्बनिक पदार्थ है। यह मोम की तरह गाढ़ा केरोगन का मिश्रण है। इसके शोधन की सस्ती तकनीकि का विकास अभी नहीं हो सका है। विश्व में इसके विशाल भंडार संरक्षित है। पेट्रोलियम का का मूल्य काफी बढ़ जाने पर शिला तेल का उत्पादन संभव होगा। अनुमान है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में विश्व का आधा संचित भंडार पाया जाता है।

2. **गिल्सोनाइट** —

   गिल्सोनाइट भी हाइड्रोकार्बन का बना होता है, परन्तु इसका द्रवीकरण नहीं हुआ है। इसका उत्पादन कुछ ही विशिष्ट क्षेत्रों में संभव है। विश्व का 60 प्रतिशत भंडार संयुक्त राज्य अमेरिका में पाया जाता है। कोलेरेडो प्रांत के बोनान्जा में पाया जाता है जहां शोधन कारखाना भी स्थित है।

3. टार सैंडस–

इसको बिटुमिनस सैंडस या सैंडस्टोन, ऐस्फाल्ट राक आदि नामों से भी जाना जाता है। इसका निमार्ण पेट्रोलियम के प्राकृतिक कारणें से वाष्पित हो जाने से होता है। इसका भंडार कनाडा के अल्बर्टा प्रांत में एथाबास्का नदी तथा उसकी सहायक नदियों की घाटियों में स्थित है। इस क्षेत्र में पचहत्तर हजार वर्ग किमी. में टार सैंडस पाये जाने का अनुमान है। यहां उत्पादन प्रारम्भ भी हो गया है।

4. पीट –

दलदली क्षेत्रों में नरकट, काई, सेज आदि पौधें के धंस जाने से उसके अवगलन से पीट का निमार्ण होता है। इसमें कार्बन की मात्रा कम पायी जाती है। पीट का सर्वाधिक संचित भण्डार रूस में पाया जाता है। द्रव ईधन, मेथेनाल, अमोनियम सल्फेट आदि निष्कर्षण के लिए पीट का उपयोग संभव है।

7.7 परमाणु ऊर्जा

परमाणु ऊर्जा में विकास की अपार शक्ति निहित है। इसका उपयोग ऊर्जा उत्पादन एवं सामरिक हित के लिए विनाशकारी बमों को बनाने में होता है। इसकी प्राप्ति यूरेनियम, थोरियम, एवं रेडियम खनिजों के विखण्डन से होता है। विखण्डन की तकनीकि बहुत ही जटिल और जोखिम भरी होती है।इसकी तकनीकि केवल कुछ विकसित देशों के ही पास है। विखण्डन की प्रक्रिया नाभिकीय रियक्टरों में बहुत ही जटिल विधि से कराई जाती है। थोड़ी सी भी असावधानी होने पर खतरनाक रेडियेशन का खतरा रहता है। परमाणु संयत्रों की स्थापना में लागत बहुत आती है। परमाणु शक्ति ऊर्जा के अन्य स्रोतों से महंगी पड़ती है, लेकिन इसमें ईधन का अपेछाकृत कम खर्च होता है। 10 हजार टन कोयले से जितना विधुत का उत्पादन होता है उतना मात्र 1 टन यूरेनियम से ही विद्युत उत्पादन हो जाता है। एक पौंड यूरेनियम के विखझडन से 25 लाख पौंड कोयला जलाने के बराबर ज्वलन शक्ति प्राप्त होती है।

7.7.1 उत्पादन प्रतिरूप –

परमाणु शक्ति का ज्ञान 1930 के ही दशक से हो गया था, किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात ही इसका उत्पादन आरम्भ हुआ। वर्ल्ड रिसोर्सेज के अनुमानित आंकड़ों के अनुसार विश्व के 130 डालर प्रति किलोग्राम की लागत पर लगभग 41 मिलियन टन कोयलातुल्य यूरेनीयम के निष्कर्षणीय भण्डार है। इसका एक तिहाई अफ्रीका, एक चौथाई आस्ट्रेलिया तथा 27 प्रतिशत उत्तरी अमेरिका में संचित है। वर्तमान समय में विश्व के कुल ऊर्जा उत्पादन का लगभग 17 प्रतिशत परमाणु ऊर्जा के रूप में प्राप्त होता है। कुल परमाणु ऊर्जा लगभग 50 प्रतिशत भाग यूरोप में, 35 प्रतिशत उत्तरी अमेंरिका में, 10 प्रतिशत एशिया में एवं 4 प्रतिशत रूस में उत्पादित होता है। विश्व का सर्वाधिक परमाणु ऊर्जा लगभग 30 प्रतिशत संयुक्त राज्य अमेरिका करता है। दूसरे स्थान पर 16 प्रतिशत के साथ फ्रांस है। एशिया में परमाणु ऊर्जा का वृहत्तम उत्पादक जापान है जो विश्व का 10 प्रतिशत परमाणु ऊर्जा का उत्पादन करता है। भारत में परमाणु ऊर्जा का उत्पादन 1969 में प्रारम्भ हुआ। विश्व का लगभग 0.4 प्रतिशत परमाणु ऊर्जा का उत्पादन भरत में होता है। भारत में बिजली उत्पादन में कुल 3 प्रतिशत का योगदान परमाणु ऊर्जा का है।

7.8 सौर ऊर्जा

विश्व के विभिन्न भागों का औसत सौर्य विकिरण अर्थात सूर्यातप का उपयोग कर लिया जाए तो विश्व में उपयोग की जा रही संपूर्ण ऊर्जा लगभग 18 टेरावाट की आपूर्ति इससे ही हो जाएगी।सौर ऊर्जा वह ऊर्जा है जो सीधे सूर्य से प्राप्त की जाती है। सौर ऊर्जा मौसम और जलवायु का परिवर्तन करती है। और सौर ऊर्जा ही धरती पर सभी प्रकार के जीवनका आधार व सहारा है। वैसे तो सौर ऊर्जा को विविध प्रकार से प्रयोग किया जाता है। सूर्य की ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदलने को ही सौर ऊर्जा के रूप में जाना जाता है। सूर्य की ऊर्जा को दो प्रकार से विद्युत ऊर्जा में बदला जा सकता है। पहला प्रकाश विद्युत सेल की सहायता से और दूसरा किसी तरल

पदार्थ को सूर्य की ऊष्मा से गर्म करने के बाद इससे विद्युत जनरेटर चलाकर सौर ऊर्जा सबसे अच्छा ऊर्जा है। यह भविष्य में उपयोग करने वाली उर्जा है।

7.8.1 सौर ऊर्जा की विशेषताएं

सूर्य एक दिव्य शक्ति स्रोत शान्त व पर्यावरण व प्रकृति के कारण नव्यकरणीय सौर ऊर्जा को लोगों ने अपनी आस्था, संस्कृति व जीवन यापन के तरीके के समान पाया है। विज्ञान व संस्कृति के एकीकरण तथा संस्कृत व प्रौद्योगिकी के उपस्किरो के प्रयोग द्वारा सौर ऊर्जा भविष्य के लिए अक्षय ऊर्जा का स्रोत साबित होने वाली है सूर्य से सीधे प्राप्त होने वाली उर्जा में कई खास विशेषताएं हैं। जो इस स्रोत को आकर्षक बनाती है। प्रमुख विशेषता इस प्रकार है–

1. सौर ऊर्जा प्रदूषण नहीं फैलाता है।
2. सौर ऊर्जा अक्षय है।
3. सबसे सस्ती और समान रूप से प्रत्येक घर को उपलब्ध होने वाली है।
4. सरलता से पर्वतों, पठारों, मैदानों, नदी, तालाब, सागर, महासागर आदि के ऊपर पैदा किया जा सकता है।
5. कम लागत अधिक लाभदायक है।
6. विश्व के सभी महाद्वीपों में देशों में उपलब्ध है।

संपूर्ण भारतीय भूभाग पर यदि सौर ऊर्जा पैदा किया जाए तो 5000 लाख करोड़ किलोवाट घंटा प्रति वर्ग मीटर के बराबर सौर ऊर्जा की है। जो कि विश्व की उर्जा खपत का कई गुना उत्पादन है। 1 वर्ग मीटर में 7 किलो वाट घंटा प्रतिदिन सौर ऊर्जा पैदा होता है। भारत 300 दिन सूर्य 12 घंटे चमकता है। उपलब्ध रहता है सौर ऊर्जा जो रोशनी व उष्मान दोनों में प्राप्त होता है। उसका उपयोग कई प्रकार से हो सकता है। सौर ऊर्जा का उपयोग अनाज को सुखाना, जल को गर्म करना, भोजन पकाना, जल वाष्पीकरण तथा विद्युत ऊर्जा उत्पादन हेतु किया जा सकता है। भोजन पकाने के लिए सोलर कुकर, ओवन, डिश प्लेट, तावा आदि सोलर से चलते हैं। सोलर मोबाइल चार्जर आदि का निर्माण हुआ है। सौर लालटेन, सौर जल पंप आदि सौर ऊर्जा से संचालित होते है।

7.9 सारांश

ऊर्जा संसाधन की निर्बाध आपूर्ति से ही मनुष्य आर्थिक क्रियाओं का संचालन कर पाता है। जितना ही उच्च स्तर की प्राविधिकी होगा उसमें उतना ही अधिक ऊर्जा का खपत होगा। आर्थिक विकास वस्तुतः ऊर्जा नियंत्रण का ही प्रतिफल है।ऊर्जा का उत्पादन तथा उपयोग, पुराजैव ईधन का अत्यधिक उत्खनन आदि विश्वव्यापी अर्थव्यवस्था के अनिवार्य अंग है। ऊर्जा के स्रोत दो प्रकार के है – असमापनीय स्रोत, समापनीय स्रोत। कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस एवं परमाणु ऊर्जा समापनीय स्रोत है तथा सौर ऊर्जा, जलविधुत, वायु ऊर्जा असमापनीय स्रोत है। वर्तमान में कोयला, पेट्रोलियम एवं पेट्रोलियम गैस का ऊर्जा उत्पादन में सर्वाधिक उपयोग हो रहा है।

7.10 बोध प्रश्न

1. विश्व में कोयला के वितरण एवं उत्पादन का वर्णन कीजिए।

2. जल विद्युत उत्पादन की आवश्यक दशाओं का वर्णन कीजिए।

3. ऊर्जा के सम्भाव्य स्रोतों का उल्लेख कीजिए।

4. सौर ऊर्जा के उपयोग पर एवं महत्व का व्याख्या कीजिए।

5. परमाणु ऊर्जा के महत्व का वर्णन कीजिए।

7.11 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. विश्व का सर्वाधिक जलशक्ति भण्डार कहाॅ उपलब्ध है?

   अ.भारत   ब. संयुक्त राज्य अमेरीका

   स. अफ्रीका   द. ब्राजील

2. जलविद्युत शक्ति के उत्पादन को प्रमुख रुप से प्रभावित करता है?

   अ. वर्षा की मात्रा   ब. घाटी की ढाल

   स. तापमान   द. सभी

3. जल विद्युत उत्पादन में प्रमुख पदार्थ क्या है?

   अ. कोयला   ब. परमाणु

   स. अणु   द. जल

4. टिहरी बाॅध किस राज्य में है?

   अ. उत्तर प्रदेश   ब. उत्तराखण्ड

   स. मध्य प्रदेश   द. आन्ध् प्रदेश

5. उत्तर प्रदेश में कौन सा बाॅध है?

   अ. रिहन्द बाॅध   ब. टिहरी बाॅध

   स. भाखडा बाॅध   द. कोई नही

आदर्श उत्तर 1. ब 2.द 3.द 4.ब 5.अ

7.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. सिंह, जगदीश, एवं सिंह, के.एन.(2010) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।
2. मौर्य, एस. डी. (2022), आर्थिक भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
3. श्रीवास्तव, वी.के. एवं राव, बी.पी. (2002), आर्थिक भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
4. गौतम, अलका, (2019) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
5. अलेक्जेंडर, जे.डब्लू. (1979) इकोनाॅमिक ज्योग्राफी, प्रेंटिस हाल,
6. लांगमैन, जी.सी. एण्ड मार्गन, जी.सी. (1982) हयूमन एण्ड इकोनाॅमिक ज्योग्राफी,आक्सफोर्ड प्रेस.

इकाई –8 मिट्टी संसाधन–मिट्टी के तत्व,मिट्टी को प्रभावित करने वाले कारक, वर्गीकरणएवं वितरण

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 मिट्टी संसाधन

8.4 मिट्टी के तत्व

8.5 मिट्टी को प्रभावित करने वाले कारक

8.6 मृदा की विशेषताएँ

8.7 मृदा का वर्गीकरण एवं वितरण

8.8 सारांश

8.9 बोध प्रश्न

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.1 प्रस्तावना

मृदा एक प्राकृतिक संसाधन है संसाधन भूगोल मेंमृदा के प्रमुख संघटक, उत्पत्ति वितरण विशेषताएँ तथा मृदा की उपलब्धता का अध्ययन किया जाता है। धरातल पर स्थित एक पतली परत जिसमें खनिजों के कण, ह्यूमस, आर्द्रता, वायु आदि होते हैं मृदा (मिट्टी) कहलाती है। मृदा का निर्माण चट्टानों के छोटे–छोटे कणों और उस पर रहने और उपयोग करने वाले पादप व जन्तु अवशेषों से बनी है। इस इकाई में मृदा निर्माण से मानव के उपयोग एवं मृदा संरक्षण का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

8.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

इस इकाई में मृदा संसाधन का वर्गीकरण, वितरण, मृदा संरक्षण के सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत किया जा रहा है। मृदा समाधन के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है–

(अ) मृदा संसाधन की विषयवस्तु को स्पष्ट करना।

(ब) विद्यार्थी मृदा के निर्माण, वर्गीकरण, उपयोग, वितरण, संरक्षण के विषय मे पहुँच बना सकेंगे

(स) मृदा संसाधन के विश्व वितरण एवं मृदा की विशेषताओं एवं प्रकारों को स्पष्ट करना।

(द) विद्यार्थियो को मृदा संसाधन की उपयोगिता एवं संरक्षण के बारे में अवगत करना।

8.3 मिट्टी संसाधन (SOIL RESOURCES)

मृदा प्राकृतिक वातावरण का एक महत्त्वपूर्ण घटक है जो एक संसाधन के रूप में अन्य संसाधनों को प्रत्यक्ष रूप से आधार प्रदान करती है। धरातल पर स्थित ढीले तथा महीन कणों से निर्मित एक पतली परत जिनमें विभिन्न खनिजों के कण, ह्यूमस, आर्द्रता, वायु आदि संयुक्त होते हैं, मृदा (मिट्टी) कहलाती है। सामान्य रूप में मृदा का निर्माण मूल चट्टानों के विघटन तथा अपघटन (वियोजन) द्वारा होता है जिसे समय के साथ विभिन्न प्रकार की जलवायु प्रभावित करती है। प्रसिद्ध विद्वान रमन ने (1917) मृदा की निम्न परिभाषा दी है, ''मृदा पृथ्वी की सबसे ऊपरी अपक्षयित (eathered) ठोस पपड़ी की परत है, जो चट्टानों के टूटने व रासायनिक परिवर्तन से बने छोटे–छोटे कणों और उस पर रहने और उपयोग करने वाले पादप व जन्तु अवशेषों से बनी है।''

डॉ. बेनेट के शब्दों में, "धरातल पर मिलने वाले असंगठित पदार्थों की ऐसी परत जो मूल चट्टान व

वानस्पतिक अंश के संयोग से बनती है, मिट्टी कहलाती है।'' अतः मृदा भूपृष्ठ पर व्याप्त चट्टानों के अपक्षय द्वारा निर्मित होती है, जिसका उस भूपृष्ठ पर पाये जाने वाले जीव–जन्तु, पादप, जलवायु दशाएँ आदि प्रभावित करती हैं एक निश्चित समय के अन्तराल पर मृदा निर्माण पूर्ण हो पाता है। इस प्रकार मृदा पर्यावरणीय एवं जीवीय प्रक्रमों का संयुक्त प्रतिफल होती है तथा इसका विभिन्न प्रकार की जलवायु वाले वातावरण में विभिन्न तरह की वनस्पति, जन्तु, इसके नीचे स्थित शैलों, भूपृष्ठ तथा समय के साथ गहरा सम्बन्ध होता है। मृदा के अध्ययन के अन्तर्गत मृदा के संघटन, इसकी विशेषताँओं, मृदा परिच्छेदिका तथा मृदा निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों आदि को सम्मिलित किया जाता है।

8.4 मिट्टी के तत्व

कार्बनिक पदार्थ – 35

अकार्बनिक पदार्थ – 45

जल – 25

कार्बनिक पदार्थ

मृदा संसाधन हो मृत, मिट्टी के निर्माण एवं परिवर्तन में बड़े योगदान देते हैं। ये आकार के अनुसार विभिन्न अवस्थाओं में मिलते हैं। बड़े आकार माले जन्तु मिट्टियों तथा पत्तियों के ढेरों में रहते हैं। इनके शरीर की लम्बाई एक सेण्टीमीटर से अधिक होती है। ये से रीढ़दार एवं बिना रीढ़ वाले दोनों प्रकार के होते हैं।

सारिणी– 7.1 मुदा के प्रमुख संघटक

प्रमुख संघटक	संगठनका प्रतिशत
1. जीवांश पदार्थ	5 से 12
2. मृदा वायु	15 से 35
3. अजैविक पदार्थ	38 से 47
4. मृदा जल	15 से 35

इनमें छछूंदर छोटा अमडिलो खरगोश, गिलहरी, चूहा साँप आदि रीढ़दार तथा भूकीट, पौधा, शम्बुक, मकड़ा तथा किलनी बिना रीढ़दार जन्तुओं में प्रमुख हैं। मध्यम आकार के जन्तुओं के शरीर की लम्बाई एक सेन्टीमीटर से 0. 2. मिलीमीटर के मध्य होती है। इसके अन्तर्गत कुटकी, मकड़ी, स्प्रिंगटेल कीट, लारवा सहस्त्रपादकोट (Millipopde), समपाद जीव (Isopod) आदि महत्त्वपूर्ण जीव हैं। लघु आकार वाले जीवों के शरीर की लम्बाई 0. 2 मिलीमीटर से कम होती है। इस श्रेणी में बैक्टीरिया सदृश्य जीवों को सम्मिलित किया गया है। मृदा में निवास करने वाले जीवों के कुछ पक्ष मिट्टियों के गुणों व विशेषताओं के विकास के लिए अति महत्त्वपूर्ण होते हैं।

अजैविक पदार्थ (Inorganic Matter) या खनिज पदार्थ

ज्ञातव्य है कि मृदा का निर्माण मूल चट्टानों से होता है इस प्रकार खनिज पदार्थ मृदा के निर्माण में अति महत्त्वपूर्ण घटक होते हैं, क्योंकि ये मृदा निर्माण में सहायक होते हैं। इनमें हार्नब्लेन्ड, आलविन, बायोटाइट, हाइपरस्थीन, पोटाश, ओजाइट, कैल्सिक, कैल्सिक–अलकली, प्लैजियोक्लेज, क्वार्टज, फेल्सफार, मस्कोबाइट आदि को सम्मिलित किया जाता है। मृदा मण्डल में ऊपर से नीचे

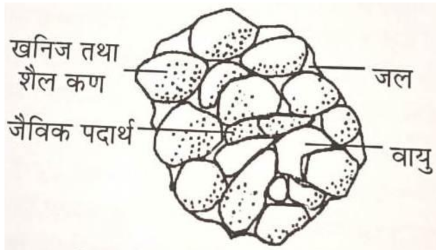

चित्र-7.1 : मृदा संघटक तत्त्व

जाने पर खनिजों का आकार बढ़ता जाता है। तथा खनिजों का निर्माण विघटन पुनः निर्माण चक्रीय रूप में होता रहता है परन्तु सदैव यह आवश्यक नहीं कि किसी क्षेत्र विशेष के खनिज पदार्थ एवं वहाँ की आधार शैली में समानता पाई जाये, क्योंकि वर्तमान समय में अधिकांश मृदाएँ आयातित है अर्थात् जब आधार शैली का अपक्षय द्वारा विघटन तथा अपघटन होता है, तो अपरदन के कारकों द्वारा यह वियोजित पदार्थ अन्यत्र जमा होता रहता है।

मृदा जल (Soil Water)

मृदा कणों के बीच रन्ध अवकाशों में उपस्थित जल को मृदा जल कहते हैं। प्रत्येक मृदा के रन्धावकाश अंशतः वायु और जल से भरे रहते हैं। यह विद्यमान जल की मात्रा तथा उसकी गुणवत्ता उसमें रहने वाले पौधों तथा जन्तुओं को प्रभावित करती है। मुदा में जल का रहना अति अनिवार्य है। यह सूक्ष्म जन्तुओं एवं वनस्पतियों को आश्रय प्रदान करता है। विलेय (Soluble) जल ऑक्सीजन को मृदा में ले जाता है। यह मृदा के तापमान को सन्तुलित अवस्था में रखता है। शीतकाल में तुषार के प्रतिकूल प्रभाव से फसलों की रक्षा करता है। जल एक सर्वव्यापी विलायक है, जो अधिकांश आवश्यक पोषक तत्वों को घोलकर पौधों के विभिन्न अंगों की आवश्यकतानुसार पूर्ति करता है मृदा में स्थित जल की मात्रा का निर्धारण जल वर्षा (Precipitation) तथा हिमद्रवित जल के मृदा में अन्तः संचरण की दर एवं मृदा की जलधारण क्षमता के आधार पर किया जाता हैं।

8.5 मृदा निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक (FACTORS AFFECTING SOIL FORMATION)

मृदा ढीले एवं असंगठित पदार्थों की गतिशील परतें होती है, जिसके निर्माण की प्रक्रिया कई कारकों से प्रभावित होती है। मूल पदार्थ पर जब वर्षा, तापमान, जीव–जन्तु, उच्चावच तथा समय की अवधि आदि कारक सम्मिलित क्रियात्मक प्रभाव डालते हैं, तो मृदा का निर्माण होता है। इस प्रकार जहाँ एक ओर मूल पदार्थ का निर्माण होता रहता है वहीं दूसरी ओर चट्टानों के निरन्तर अपक्षय एवं अपरदन द्वारा नये मूल पदार्थ का निर्माण होता है। इन प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप मृदा परिच्छेदिका का विकास होता है। मृदा निर्माण में मूल पदार्थ, उच्चावच, जलवायु, जैविक तत्त्व तथा समय प्रत्येक स्थान पर एक सामूहिक प्रक्रिया द्वारा मृदा निर्माण करते हैं, अतः ये मृदा निर्माण के कारक कहलाते हैं, जिनका विवरण निम्न है :–

(1) मूल पदार्थ(Parent Materials)

सभी मृदाएँ विखण्डित शैल चूर्ण से प्रभावित होती हैं। विखण्डित शैल चूर्ण नदी, नहरें, पवन या हिमनदी द्वारा नये स्थान पर एक संहति (Massaa) के रूप में जमा किया जाता है, जो सतही मृदा के रूप में विकसित होता है। मृदा के अकार्बनिक पदार्थ का मूल स्रोत जनक पदार्थ कहलाता है। मृदा को जैविक पदार्थ जनक पदार्थ से अलग बना देता है। जनक पदार्थ एक ऐसा पदार्थ होता है जिसके ऊपर जलवायु, जैविक गतिविधिया धरातलीय उच्चावच तथा समय अपनी प्रक्रियाओं का प्रभाव डालकर मृदा निर्माण को प्रभावित करते। निर्मित मृदा किस प्रकार की होगी यह मूल पदार्थ की प्रकृति पर निर्भर करता है। ग्रेनाइट का अपक्षय धीमी गति से होता है तथा इसमें पोषक तत्वों की मात्रा भी बहुत कम पायी जाती है। इस प्रकार ग्रेनाइट से बनी मृदाएँ बलुई मृदाएँ होती हैं ये कम उर्वर होती है। यदि जनक चूना पत्थर, आधा कार्बोनेट, आधा मृत्तिका, सिल्ट एवं बालू है तो इससे निर्मित होने वाली मृदा अच्छी उर्वरक होती है। मूल पदार्थ के निष्क्रिय कारक होने के कारण विभिन्न प्रकार के मूल पदार्थों से एक ही प्रकार की मृदा का निर्माण होता है लेकिन विभिन्न स्थानों को जलवायु के परिवर्तनों के कारण मृदाओं की प्रकृति से भिन्नता आ जाती है।

(2) जैविक तत्त्व(Organic Matter)

पौधे एवं जानवर मृदा निर्माण को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करते हैं। मृदा के लिए प्रभावकारी पौधों की जीवन प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण होती है जिनमें विशेष रूप से मृदा से सटे हुए छोटे पौधे एवं जानवर सम्मिलित है। वनस्पति आवरण मृदा अपरदन की दर को प्रभावित करता है तथा मृदा को सुरक्षात्मक आवरण प्रदान करता है। धरातल पर पर्णढेर **(litter)** को पलवार **(Mulching)** उत्पन्न करता है जो वर्षा जल की तीव्रता को कम करके मृदा के अन्दर प्रवेश की दर वृद्धि करती है। वनस्पति वाष्पीकरण की दर को भी प्रभावित करती है। वनस्पति को कमी होने पर मृदा नमी का वाष्पीकरण हो जाता है तथा इसके कारण केशीय जल धरातल की ओर गति करने लगता है। वनस्पति आवरण को प्राकृतिक रासायनिक विनिमय में मुख्य भूमिका निभाती है जो मृदा निर्माण का मुख्य भाग है। इस प्रकार विलायक पोषक तत्त्व जिनका पौधे उपयोग नहीं कर पाते अपक्षालन द्वारा मृदा के नीचे वाले भाग में चले जाते हैं। बड़े पौधों की जड़ें मृदा में रन्ध्र बनाकर पानी तथा पोषक तत्वों का अवशोषण करके मृदा की संरचना को प्रभावित करते हैं। मृदा के जैविक तत्वों के रूप में वनस्पति के सभी भाग (पत्तियाँ, छाल, शाखाएँ, फूल और जड़ें) मरने के उपरान्त योगदान देते हैं जैसे प्रेयरी के घास के आवरण किसी रेगिस्तानी प्रदेश की अपेक्षा जैविक तत्त्वों की पूर्ति अधिक करता है जिसके कारण यह क्षेत्र संसार के अच्छे उर्वर प्रदेश में से एक है।

(3) जलवायु(Climate)

जलवायु मृदा निर्माण का सक्रिय कारक है। जलवायु के प्रमुख तत्त्व जो मृदा निर्माण को प्रभावित करते हैं, उनमें तापमान तथा वर्षा महत्त्वपूर्ण है। धरातल पर पाई जाने वाली मृदाओं में विभिन्नता का प्रमुख कारण जलवायु है।

तापमान मृदा के सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है, जिसका प्रभाव जैविक पदार्थों के निर्माण पर पड़ता है। भूमध्यरेखीय ऊष्ण प्रदेशों में सूक्ष्मजीवों की उच्च क्रियाशीलता जीवांश पदार्थ के सघन जमाव को रोकती है. जबकि मध्यतापीय तथा सूक्ष्म जलवायु में मृदा जीवों को धीमी क्रियाशीलता के कारण पर्याप्त मात्रा में जीवांश पदार्थ एकत्रित होता है। इस प्रकार ठण्डे प्रदेशों में मृदा जीवों का संयोजन सिमित वृद्धि करता है जिससे अविघटित (Undecomposed) जीवांश पदार्थों की एक पतली परत निर्मित हो जाती है। तापमान मृदा पर पायी जाने वाली वनस्पति को भी प्रभावित करता है जैसा कि हम जानते हैं कि वनस्पति का एक विशेष साहचर्य प्रकार की जलवायु में ही विकसित हो पाता है, तथा तापमान के असमान होने पर उचित वानस्पतिक आवरण विकसित न होने से पोषक तत्त्वों की प्राप्ति का चक्र पूर्ण नहीं हो पाता है, जबकि उचित तापमान की दशा में मृदा में रासायनिक सन्तुलन बना रहता है। आर्द्रता मृदा के विकास एवं विशेषताओं को अन्य कारकों की तुलना में अधिक प्रभावित करती है। वर्षा के अभाव में मृदा जल की कमी रहती है जिससे पौधों का जीवन असंभव हो जाता है तथा पौधों की अनुपस्थिति में मृदा में उपयुक्त मात्रा में जैविक पदार्थ उत्पन्न नहीं हो पाता व मृदा उर्वर नहीं बन पाती है।

(4) उच्चावच (Relief)

पृथ्वी की धरातलीय तलरूपता को उच्चावच कहते हैं। यह जल एवं तापमान के सहयोग से मृदा निर्माण को प्रभावित करता है। धरातल का ढाल मृदा निर्माण को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। तीव्र ढाल वाले क्षेत्रों में कम गहरी तथा कम ढाल वाले भागों में अधिक गहराई वाली मृदाएँ मिलती हैं, क्योंकि तीव्र ढाल वाले क्षेत्रों में मूल पदार्थ का जमाव नहीं हो पाता है तथा मृदा निर्माण में बाधा आती है। घाटियों के तल पर व समतल भूमि पर बहुत ही धीमा प्रवाह होता है जब जल स्तर पर धरातल के पास होता है तो गुरुत्व जल का नीचे स्पंदन नहीं हो पाता और केशीय जल के कारण मृदा में लवणीयता अथवा क्षारीयता आ जाती है। उच्चावच मृदा निर्माण को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है, क्योंकि समतल भूसतह पर वनस्पति आवरण विकसित होता तो मृदा जीवांश की मात्रा बढ़ती है, जबकि तीव्र ढाल वाले भागों में जहाँ जल प्रवाह तीव्र होता है वहाँ जैविक पदार्थ संग्रहीत नहीं हो पाता, जिसका प्रभाव मृदा उर्वरता पर पड़ता है। अतः धरातल की मृदा निर्माण का जनक पदार्थ प्रदान करने वाला प्रमुख स्रोत है, जो अन्य कारकों के साथ मिलकर मृदा निर्माण को प्रभावित करता है।

(5) समय (Time)

प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों की तरह मृदाएँ भी समय के साथ विकसित होती हैं तथा इनका संगठन,

संरचना तथा आन्तरिक विशेषताएँ निरन्तर परिवर्तित होती रहती हैं। समय मृदा निर्माण में एक तटस्थ कारक की भूमिका निभाता है। मृदा निर्माण की सभी क्रियाएँ समय के अनुसार होती हैं। भूसतह के कुछ क्षेत्रों व स्थानों पर मृदाओं के विलोपित हो जाने अपरदित व जमावों आदि के कारण इनका नवीनीकरण एक निश्चित समयान्तर में होता रहता है। मृदा के पूर्ण विकसित होने तथा विनिष्ट होने व फिर नवीन निर्माण आदि चक्र भी समय के अनुसार ही होते हैं।

8.6 मृदा की विशेषताएँ (CHARACTERISTICS OF SOLL)

मृदा में अनेक भौतिक एवं रासायनिक गुण होते हैं, जो उसके व एवं विभिन्नता बनाने में उपयोगी होते हैं। इनमें रंग, गठन, संरचना, अम्लीयता और क्षारीयता तथा जल एवं वायु को रोकने व संचारित करने की क्षमता आदि सम्मिलित हैं।

1. रंग (Colour)–

मिट्टी के रंग से भौतिक एवं रासायनिक गुणों की जानकारी प्राप्त होती है। मिट्टी का रंग विभिन्न प्रकार का होता है जैसे–लाल, पीला, भूरा, काला, धूमिल (Grey), सफेदिया (Nearwhite) आदि। ये रंग किसी भी विशिष्ट मृदा की भौतिक एवं रासायनिक विशेषताओं को जानकारी प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, जीवांशयुक्त मृदा का रंग काला या भूरा होता है, जबकि इनकी उच्च मात्रा होने तथा वियोजित जैविक तत्वों के पाये जाने पर मृदा काली या गहरी भूरी (Dark Brown) होती है जैसे ही मृदा में अपक्षालन (Leaching) तथा न्यून जैविक वियोजन के परिणामस्वरूप जीवांश (Humus) की मात्रा कम होती है, इसका रंग हल्का भूरा या धूमिल (Grey) हो जाता है। मृदा में अधिक मात्रा में जीवांश (Humus)का पाया जाना सामान्यतया मृदा के उच्च उपजाऊ होने का संकेत होता है। यह जीवांश मृदा पर स्थित पेड़–पौधों को मृदा के पोषक तत्त्वों के ग्रहण करने में भी आवश्यक होते हैं। कुछ भागों में बिना जीवांश या कुछ मात्रा में जीवांश होने पर मृदा का रंग काला देखा गया है। मृदा का लाल एवं पीला रंग लौह तत्त्वों की उपस्थिति के कारण पाया जाता है। आर्द्र क्षेत्रों में हल्की धूसर या सफेद मृदा इस बात का संकेत है कि इनमें विद्यमान लौह तत्त्वों का अपक्षालन हो गया है, जबकि शुष्क क्षेत्रों में सफेद तथा हल्का धूसर रंग नमक की उच्च मात्रा का सूचक है। भूरे रंग की मृदा में ऑक्सीजन की कमी लोहे एवं जीवांशों की कमी का संकेतक है। जब मिट्टी के खनिज पदार्थ घुलकर निकल जाते हैं तो उसका रंग पीला हो जाता है। ऐसी मिट्टी अपूर्ण जलप्रवाह वाले क्षेत्रों में मिलती है। यह बहुत ही कम उपजाऊ शक्ति वाली होती है।

अतः मृदा रंग की भौतिकएवं रासायनिक विशेषताओं का विवरण देने के साथ ही मृदा के गुणों एवं उपयोग की संभावनाओं (Potential) की भी उपयुक्त जानकारी प्रदान करता है।

2. गठन (Texture)–

मृदा विभिन्न आकार के छोटे–छोटे कणों से मिलकर निर्मित होती है। ये विभिन्न कण कंकड़, बालू, सिल्ट और मृतिका के होते हैं। इनके कणों के आकार में आपेक्षिक अनुपात होता है जिनके परिणामस्वरूप मृदा में मोटापन एवं महीनता होती है। इस प्रकार मृदा कणों के आकार को गठन कहते हैं। मृत्तिका के कणों का व्यास 0.002 मि.मि. से कम होता है। सिल्ट मृदा के कणों का आकार 0.002 मि.मी से 0.5 मिमी. होता है, बलुई मृदा का कणाकार 0.05 से 2.0 मि.मी. तक होता है जबकि 2.6 मि.मी. से अधिक व्यास के कणाकार वाली मृदा बजरी या चट्टानी विखण्डित मृदा की श्रेणी में आती है।

सारणी–7.2 : मृदा कण वर्ग

वर्ग का नाम	व्यास (मिमी.)
मोटी बजरी (Coarse Gravel)	2 से अधिक
महीन बजरी (Fine Gravel)	1–2
मोटी बालू (Coarse Sand)	0.5–1
मध्यम बालू (Medium Sand)	0.25–0.5
महीन बालू (Fine Sand)	0.1–0.25
अत्यधिक महीन बालू (Very Fine Sand)	0.05–0.1
सिल्ट (Silt)	0.002–0.1
मृत्तिका (Clay)	0.002 से कम

कणों के आकार के अनुसार मुख्य रूप से मृदा को तीन वर्गों में बाँटा गया है– बालू सिल्ट और मृत्तिका। बालू के कण सबसे बड़े सिल्ट के मध्यम तथा मृत्तिका के सबसे महीन कण होते हैं। इसी आधार पर तीनों वर्गों का विवरण निम्नलिखित हैः–

(i) बालू (Sand)

बालू के कण मृदा को पृष्ठीय क्रियाशीलता कम होने के कारण रासायनिक एवं भौतिक गुणों में किसी भी प्रकार का योग नहीं देते हैं। इस मृदा में जल निकास तथा वायु संचार में भी सुविधा रहती है। इनमें जल का वाष्पन एवं अन्तःस्पन्दन भी तीव्र गति से होता है अतः ये मृदाएँ शुष्क कृषि के योग्य नहीं हैं। इसको कृषि योग्य बनाने हेतु जीवांश का मिश्रण किया जाना आवश्यक होता है।

(ii) सिल्ट (Silt)

सिल्ट में 50 प्रतिशत तक बालू कण, 50–100 प्रतिशत सिल्ट तथा 20 प्रतिशत तक मूत्तिका की मात्रा होती है। इसमें बालू की अपेक्षा पृष्ठीय तनाव होता है तथा जल का अधिशोषण भी अच्छा होता है। 20 प्रतिशत से अधिक महीन सिल्ट वाली मृदाओं में कार्य करना कठिन होता है व जल का निकास भी अच्छा नहीं होता है, अतः वे सिंचित क्षेत्रों वाली कृषि के अयोग्य होती हैं। बालू एवं सिल्ट को कमजोर क्रियाशीलता के कारण इन्हें मात्र मृदा ढाँचा कहा जा सकता।

आर्थिक भूगोल

सारणी–7.3 : मृदा गठन वर्गों का विवरण

मृदा	विभिन्न कणों का सापेक्ष अनुपात		
	बालू	मृत्तिका	सिल्ट
1. बलुई दोमट	65	15	20
2. मृत्तिका दोमट	33.3	33.3	33.3
3. दोमट	40	18	42
4. सिल्ट मृत्तिका	10	45	45
5. सिल्ट दोमट	17	13	70

Source : USDA Yearbook of American Agriculture.

(iii) मृतिका (Clay)

मृतिका वर्ग की मृदा में 50 प्रतिशत बालू 50 प्रतिशत तक सिल्ट तथा 30–100 प्रतिशत तक मृतिका के कण विद्यमान रहते हैं मृतिका के कण बालू एवं सिल्ट से अधिक क्रियाशील होने के कारण मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में एक सीमा तक योगदान करते हैं कि मृतिका कणों की उपस्थिति मृदा को उपजाऊ बनाती है, जबकी अधिक होने पर हानिकारक प्रभाव दृष्टिगत होते हैं, इनमें जल को अधिक समय तक अवशोषित कर संचित रखने की क्षमता होती है, अतः ये मृदाएँ शुष्क कृषि के लिए उपयुक्त मानी जाती हैं। इनके कण अत्यधिक महीन होने के कारण यदि मृदा में 50 प्रतिशत अधिक मृतिका कण हो जाते हैं तो जल एवं वायु के संचार में बाधा उत्पन्न हो जाती है और अतिशीघ्र हो जलाक्रान्ति हो जाती है। इन पर मौसम का भी प्रभाव पड़ता है। ये मृदाएँ शीतकाल में शीतल तथा ग्रीष्मकाल में सिकुड़ कर टूट जाती है। इस प्रकार उपयुक्त अनुपात से कम या अधिक मात्रा में मृतिका की उपस्थिति हानिकारक सिद्ध होती है।

उपयुक्त तीनों कण वर्गों के अनुसार मृदा का वर्गीकरण किया जाता है। इस प्रकार कणों के नामकरण से मृदा का गठन ज्ञात होने के साथ ही मृदा के विभिन्न गुणों को ज्ञात किया जाता है। जब इन तीनों कण वर्गों को एक विशेष अनुपात में मिश्रित करते हैं तो इस मृदा मिश्रण को एक विशेष नाम दिया जाता है जिसे मृदा गठन वर्ग कहते हैं। इनमें बालू मृदा, बलुई दोमट, सिल्ट दोमट, चिकनी दोमट, मृतिका, सिल्ट आदि को सम्मिलित करते हैं।

मृदा के कणाकार मृदा का महत्त्वपूर्ण गुण है। यह पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक मृदा नमी तथा वायु के ग्रहण क्षमता निर्धारण में सहयोग करता है। मृदा में जल संग्रह, मृदा की जुताई, वातन और उर्वरता की भी मृदा गठन प्रभावित करता है, जैसे– चिकनी मृदा में जल का प्रवाह बहुत धीमी गति से होता है, जिसके कारण जलाक्रान्ता की समस्या उत्पन्न हो जाती है तथा वायु का वातन भी ठीक ढंग से नही जो पाता जबकि जल एवं वायु का संचरण कृषि का प्रमुख अंग होता है।

(3) संरचना (Structure)

मृदा के संगठित एकांकी रूप में पाये जाने वाले समूहों को मृदा की संरचना कहते हैं। इस संरचना का निर्माण मिट्टी के कण आपस में संगठित हो जाते हैं तो इन संगठित पिण्डों की मिट्टी की संरचना कहते हैं। इस संरचना का निर्माण मिट्टी के प्राथमिक कणों (बालू, सिल्ट, मृतिका) द्वारा होता है। मृदा की संरचना मृदा की आर्द्रता, वायु, तापमान जलधारण क्षमता को प्रभावित करती है मृदा की संरचना जल, वायु, के सम्बंध को स्थापित करती है। यह मृदा में जल और वायु की मात्रा को नियंत्रित करते है, जिससे मृदा पोशक तत्व प्राप्त करके वृद्धि करती हैं। इस प्रकार मृदा संरचनाका निम्नलिखित महत्त्व हैः–

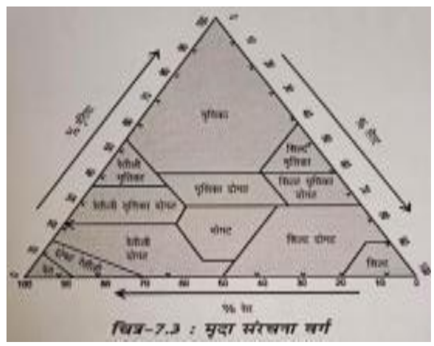

चित्र– 7.3ः मृदा संरचना वर्ग

(i) मृदा की संरचना, मृदा में जैविक तथा खनिज तत्वों को प्रदर्शित करती है।

(ii) मृदा संरचना मृदा जल एवं वायु के संचलन को प्रभावित करती है।

(iii) यह मृदा को जल एवं वायु धारण की क्षमता को प्रदर्शित करती है।

(iv) यह मृदा के अपरदन की प्रकृति तथा मात्रा को निर्धारित करती है।

(v) मिट्टियों की जुताई तथा पौधों को वृद्धि भी संरचना से नियंत्रित होती है।

(vi) यह जल की पारगम्यता एवं रन्धता को प्रभावित करती है।

8.7 मृदा का वर्गीकरण एवं वितरण (CLASSIFICATION AND DISTRIBUTION OF SOILS)

. विश्व में मृदा वर्गीकरण एवं मृदा विज्ञान (Pedology) के विकास में रूसी विद्वान अग्रणी रहे हैं। 18वीं शताब्दी में सर्वप्रथम रूसी विद्वानों द्वारा स्पष्ट किया गया कि मृदा शैल संस्तरों का अपक्षयित रूप है। प्रसिद्ध रूसी विद्वान बेसिली डोकुचायेव (V- V- Docku Chayev 1846–1903) प्रथम मृदा वैज्ञानिक थे, जिन्होंने स्पष्ट किया कि मूल पदार्थ (Parent Material) समान होने पर भी पर्यावरणीय दशाओं की भिन्नता के कारण भिन्न मृदा का निर्माण होता है। इस प्रकार उन्होंने किसी प्रदेश की मृदाओं के विकास एवं जलवायु में घनिष्ट सम्बन्ध बताया। उन्होंने अपने सहयोगी विद्वानों के साथ मिलकर (1870 में रूस की मृदाओं के अनेक वर्गीकरण प्रस्तुत किये। सन् 1914 में डोकुचायेव के शिष्य कॉस्टेन्टीन ग्लिंका (Konstantin D- Glinं1867–1927) ने एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें डोकुचायेव के चिन्तन को प्रस्तुत किया गया था। इसका संयुक्त राज्य अमेरिका के मृदा वैज्ञानिकों पर बहुत प्रभाव पड़ा। बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में मारबुत (Curtis- F- Marbut, 1863–1935) नामक अमेरिकी मृदा वैज्ञानिक ने विस्तृत क्षेत्रीय अध्ययन के उपरान्त प्रथम आनुवांशिक व्यापक मृदा वर्गीकरण (Gen tic Soil Classifiction) प्रस्तुत किया जिसे मृदा वर्गीकरण तन्त्र की व्यापक योजना *(Scheme of Comprehensive Soil Classification System)* के नाम से जाना जाता है। इसमें मारबुत ने रशियन योजना तथा शब्दावली का प्रयोग किया। मारबुत संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि विभाग में मृदा सर्वेक्षण संस्थान के निदेशक थे। इनके द्वारा तैयार मृदा वर्गीकरण की रूपरेखा सर्वप्रथम सन् 1938 में प्रकाशित हुई, जिसे 1940 में पुनः संशोधित रूप में प्रस्तुत

किया गया। मृदा वर्गीकरण की इस योजना का निर्माण संयुक्त राज्य कृषि विभाग द्वारा किया गया था। अतः इसे USDA (*United States Department of Agriculture*) भी कहा जाता है। इस योजना में मृदाओं की तीन श्रेणियाँ (Order) बनायी गयी थीं–

- **(i)** कटिबन्धीय (Zonal),
- **(ii)** अन्तर्कटिबन्धीय (Intrazonal), तथा
- **(iii)** अकटिबन्धीय (Azonal)

1950 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका संरक्षण सेवा द्वारा मृदा वर्गीकरण का नया प्रयास किया गया तथा 1960 तक मृदा वर्गीकरण का सातवाँ संस्करण प्रस्तुत किया गया जिसमें प्रस्तुत नवीन योजना *को व्यापक मृदा वर्गीकरण तन्त्र* (ComprehensiveSoll Classification System-CSCS) के नाम से जाना जाता है। मृदा वर्गीकरण की इस योजना को मुख्यतः सातवाँ अनुमान (Seventh Approximation) कहा गया था।

मृदा के प्रकार(Types of Soils)

सर्वप्रथम 1938 में संयुक्त राज्य कृषि विभाग ने विस्तृत अध्ययन कर सम्पूर्ण पृथ्वी पर पायी जाने वाली मृदाओं को तीन भागों में विभक्त किया, जो निम्नलिखित हैं–

- **(1)** क्षेत्रीय या कटिबन्धीय मृदाएँ (Zonal Soils)
- **(2)** अन्तः क्षेत्रीय या अन्तर्कटिबन्धीय मृदाएँ (Intrazonaloil)
- **(3)** अपार्श्विक या अप्रादेशिक (Azonal Soils)

(1) कटिबन्धीय मृदाएँ(Zonal Soils)

ये मृदाएँ वनस्पति एवं जलवायु के लम्बे प्रभाव से पूर्ण विकसित होती हैं। इसमें विश्व की प्रमुख मृदा सम्मिलित हैं। इनका वितरण भी जलवायु वनस्पति प्रदेशों के अनुसार हो मिलता है। मूल शैलों (च्तमदज त्वबो) के क्षेत्र में विकसित होने के कारण इन मृदाओं का पार्श्व चित्र (Soil Profile) आदर्श रूप में परिलक्षित होता है। इसी कारण इन्हें पार्श्विक मृदा भी कहते हैं। इनका निर्माण सुप्रवाहित (Well Drained) दशाओं में होने से अच्छी तरह विकसित हो जाती हैं। ये मिट्टियाँ तीन प्रकार की होती हैं

(प) **पेडाल्फर** (Pedalfer)–

पेडाल्फर शब्द अंग्रेजी के तीन अक्षर समूहों (Ped+Al+Fe) का मेल है जिनका अभिप्रायः क्रमशः Ped= मृदा AI=,एल्यूमिनियम, Feलोहांश (Ferrum) होता है। इस मृदा में एल्यूमिनियम एवं लोहांश की मात्रा अधिक पायी जाती है। ये मृदायें मुख्यतः अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में

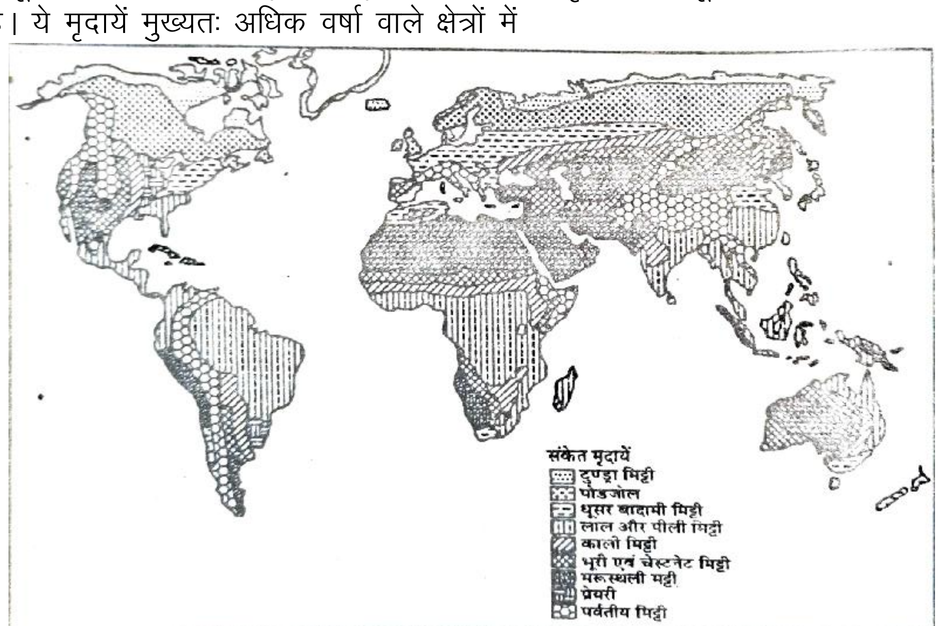

मिलती हैं, जहाँ निक्षालन क्रिया (Leaching) अधिक होती है। इसे लेटेराइजेशन (Laterization) कहते हैं। इस वर्ग में तीन प्रकार की मृदायें मिलती हैं। प्रथम पॉडजाल, जो अलास्का, कनाडा, स्केन्डेनेविया तथा एशिया के उत्तरी भाग में पायी जाती है। इसका निर्माण पोडजोलाइजेशन (Podzolization) के कारण होता है। यह ऐसी क्रिया है जिसमें शीत आर्द्र प्रदेशों में तापमान कम होने पर वृक्षों की पत्तियों के सड़ने गलने के कारण ह्यमिक अम्ल (Humic Acid) बनते हैं तथा अपक्षालन क्रिया द्वारा लोहा एवं एल्यूमिनियम मृदा के ठ संस्तर में चले जाते हैं तथा मृदा के ऊपरी संस्तर में सिलिका की प्रधानता हो जाती है। फलस्वरूप मृदा का रंग भूरा (Ash Gray) हो जाता है। द्वितीय, पॉडजालिक मिट्टी (Podzolic Soil)

होती है, जो पोडजॉल मिट्टी के दक्षिण में पायी जाती है। यहाँ उत्तरी भाग की अपेक्षा पोडजॉलाइजेशन कम होता है तथा जीवाणु अधिक सक्रिय रहते हैं। **अतः** इनमें जीवांश पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। तीसरी मृदा लेटराइट है जो उष्ण आई क्षेत्रों में मिलती है। जहाँ लेटेराइजेशन (Latization) की क्रिया होती. है। इस क्रिया में अपक्षालन (Laterization) द्वारा मृदा की ऊपरी सतह से सिलिका एवं जीवांश (Humù) आदि तत्त्व अपवहन (Eluviation) द्वारा नीचे जाकर विनिक्षेपण (Illuviation) क्रिया द्वारा जमा हो जाता है तथा ऊपरी सतह पर केवल लोहा एवं एल्यूमिनियम शेष बच जाते हैं। इस क्रिया से मृदा अनुपजाऊ होती है। यह भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में अधिक मिलती है।

(ii) पेडोकल (Pedocal)–

पेडोकल (Pedocal) मृदाओं में कैल्सियम की मात्रा अधिक होती है ये मृदायें मुख्य रूप से शुष्क एवं अर्द्धशुष्क प्रदेशों में मिलती हैं। इन क्षेत्रों में वर्षा की अपेक्षा वाष्पीकरण की दर अधिक होती है। फलस्वरूप केशिका क्रिया (Capillary Action) द्वारा कैल्सियम ऊपर पहुँच जाता है। इस वर्ग में छोटे घास वाले क्षेत्रों में विकसित चरनोजम (ऋhernozem), अत्यन्त शुष्क क्षेत्रों की मरुस्थलीय तथा इनके साथ पायी जाने वाली भूरी स्टेप्स (Brown Steppes) मृदाओं को सम्मिलित किया जाता है।

(iii) टुण्ड्रा मृदा (Tundra Soil)–

ये शीत प्रदेशों की बहुत कम विकसित मृदाएँ होती हैं। यहाँ जीवाणुओं की सक्रियता भी कम नहीं होती तथा ये उपजाऊ नहीं होती हैं।

(2) अन्तःकटिबन्धीय मृदाएँ (Intrazonal Soils) –

ये मृदाएँ विशेष परिस्थितियों में बनती हैं, जिन पर जलवायु तथा वनस्पति की तुलना में अन्य तत्त्वों का अधिक प्रभाव होता है। अतः इनका वितरण किसी विशेष जलवायु प्रदेश के नियन्त्रण से बाहर होता है। इनमें सर्वाधिक जमाव मूल पदार्थ तथा जल प्रवाह का पड़ता है। ये मृदायें कटिबन्धीय क्षेत्रों में बिखरी हुई मिलती हैं, जिस कारण इन्हें अन्तःकटिबन्धीय कहते हैं। इस वर्ग में उपजाऊ एवं अनुपजाऊ दोनों प्रकार की मृदायें होती हैं। इन मृदाओं का प्रवाह व्यवस्थित नहीं होने से जलाक्रान्ता (Waterlogging) की स्थिति बन जाती है। फलस्वरूप घुलनशील लवण तथा चूने की मात्रा बढ़ जाती है। रेण्डजीना एवं रेगुर इस वर्ग की उर्वर मृदायें हैं। रेण्डजीना आर्द्र प्रदेशों में मिलती है। इस वर्ग की अन्य मृदायें पीट मृदा (Peat Soil), लवणीय मृदा (Saline Soil) एवं चूना पत्थर से उत्पन्न मृदा (Limestone Soil) आदि हैं।

(3) अपार्श्विक मृदायें (Azonal Soils)–

ये अविकसित नवीन मृदायें होती हैं जिनका पार्श्व चित्र स्पष्ट नहीं होता है। इनका निर्माण नदी, हिमानी, वायु तथा सागरीय तरंग आदि प्राकृतिक कारकों की निक्षेपण क्रिया द्वारा होता है। ये मृदाएँ उपजाऊ होती हैं। जलोढ़ (Alluvial) मृदा या रेगोसोल रेतीली मृदा, हिमानी मृदा, सागरीय मृदा तथा पर्वतीय मृदा इसी वर्ग की मृदायें हैं। इन मृदाओं में प्रतिवर्ष नवीन पदार्थों का जमाव (निक्षेपण) होता रहता है, जिससे इनका नवीनीकरण हो जाता है।

7.11 वृहद् मृदा वर्गीकरण तन्त्र (COMPREHENSIVE SOIL CLASSIFICATION SYSTEM)

यह वर्गीकरण सन् 1975 में संयुक्त राज्य अमेरिका के मृदा सर्वेक्षण विभाग द्वारा प्रस्तुत किया गया जिसे

संक्षेप में CSCS(Comprehensive Soil Classification System) भी कहते हैं। 1975 में अपनाये गये CSC नाम के स्थान पर 1990 में मृदा वर्गीकरण (Soil Taxonomy) शब्द अपनाया जिसे CSCSdh तुलना में साधारण माना गया। CSCमें 10 मृदा वर्ग ही प्रस्तुत किए गये थे लेकिन 1990 में 11वॉ मृदा वर्ग एण्डीसोल को साम्मिलित किया गया है। ये मृदा वर्ग निम्नलिखित है।

मृदा वर्गीकरण (Soil Taxonomy)

मृदा श्रेणियाँ (Soil Order)

बेबे योजना के अन्तर्गत विश्व की सभी मृदाओं को उच्चतम वर्ग की 11 श्रेणियों में विभाजित किया गया है जिसका प्रमुख आधार मृदा पार्श्व (Soil Profile) के विभिन्न संस्तरों के लक्षणों को मापा जाता है, इनका निर्धारण निम्नलिखित आधारों पर किया जाता है–

(i) मृदा का संघटन (Composition of Soil)

(ii) लाक्षणिक संस्तरों की उपस्थिति या अनुपस्थिति (The Presence or Absence of Specific Diagnostic Horizons)

(iii) मृदा परिच्छेदिका के संस्तरों का समान अंशों में विकास (Similar Degrees of Horizon Development)

(iv) अपक्षय और निक्षालन (Weathering and Leaching)

(1) एण्टीसॉल (Entisal)–

ये पूर्ण विकसित नहीं होती हैं जिस कारण मृदा संस्तर दृष्टिगत नहीं होता है। यद्यपि संस्तर पर एक पतली परत के रूप में ३ तथा ट संस्तर पर अध्यारोपित रहता है। इसके विकास को जलवायु अधिक प्रभावित नहीं कर पाती है। इसकी पाँच उपश्रेणियाँ (Sub- Orders) हैं।

(2) हिस्टोसॉल (Histosol)–

ये जैविक मृदाएँ होती हैं, जो वर्ष पर्यन्त जल से संतृप्त रहती हैं। हम इन मृदाओं को दलदल, पीट तथा बंजर भूमि (Moò) रूप में पहचान सकते है 'C'संस्तर में जैविक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहता है तथा 'C'संस्तर में मृत्तिका मिलती हैं। हिस्टोसॉल मृदा में अम्ल की अधिक मात्रा मिलती है जबकि पोषक तत्त्व न्यून मात्रा में मिलते हैं। प्राकृतिक तथा कृत्रिम प्रवाह द्वारा इन्हें नष्ट भी किया गया है। दलदली क्षेत्रों के साथ इनके विस्तृत होने के कारण भौगोलिक वितरण दर्शाने में कठिनाई होती है। जलीय प्रवाह सुलभ होने पर इनमें गोभी, गाजर, आलू तथा अन्य कन्द फसलों की सघन कृषि की जा सकती है। मध्य अक्षांशों में इनका कृषि महत्त्व है तथा अन्य स्थानों पर चूने एवं उर्वरकों का प्रयोग करके उपजाऊ बनाया जा सकता है। इसे चार उपश्रेणियों में विभाजित किया गया है।

(3) वर्टीसॉल (Vertisol)–

वर्टीसॉल मृदाओं के गठन में 35 प्रतिशत मात्र मृत्तिका (Clay) की होती है। इस कारण ही नमी की कमी आते ही इसमें दरारें पड़ जाती हैं। मृत्तिका कणों के व्युत्पत्ति स्रोत इनका मूल पदार्थ हैं। अतः वर्टीसॉल मध्यतापीय या उष्ण कटिबन्धीय जलवायु में मिलती है जहाँ सामयिक सूखा तथा मौसमी नमी मिलती है। इसकी उपश्रेणियाँ विश्व के जलवायु विभागों में अत्यन्त निकट होते हैं। ये मृदा आस्ट्रेलिया, भारत तथा सूड़ान में अधिक मिलती हैं तथा इसका मानव द्वारा निर्माण कार्यों में अधिक प्रयोग किया जाता है। मृत्तिका में माण्टमोरिलोनाइट खनिज होता है जो नमी पाकर फैलता है तथा नमी के अभाव में सिकुड़ता है। इनमें कैल्सियम तथा मैग्निशियम की पर्याप्त मात्रा होती है । वर्टीसॉल का पी.एच. तटस्थ (7) होता है। इसकी चार उपश्रेणियाँ

(4) इनसेप्टीसॉल्स (Inceptisol)–

इन मृदा में संस्तरों का शीघ्र विकास मिलता है जो पूर्ण नहीं होता है। इनमें जल इतना रहता है कि वर्ष के एक तिहाई समय में पौधे जीवित रह सकते हैं। इनका प्रारम्भ ठ संस्तर से होता है। मृदा लाल रंग लिये होती है जिनमें मृत्तिका का अभाव पाया जाता है। इसके कण बारीक होते हैं। ये मृदायें सामान्यतः आर्द्र जलवायु में

मिलती हैं लेकिन आर्कटिक से लेकर उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों तक भी मिलती हैं। इसका विकास वन आवरण या घास क्षेत्रों में होता है। इन्हें 6 उपश्रेणियों में विभक्त किया गया है।

(5) एरिडोसॉल्स (Aridosol)–

एरिडोसॉल्स मृदायें दायें विश्व के 19.2 प्रतिशत भाग पर फैली हैं जो अन्य मृदाओं की तुलना में सर्वाधिक हैं। ये शुष्क होती हैं तथा जीवांश (Humù) का अभाव मिलता है। पादप पौधों को वर्ष के कम समय में ही वर्षा जल उपलब्ध हो पाता है। गहराई पर कार्बोनेट पदार्थों का संग्रह मिलता है। इनका निर्माण शुष्क मरुस्थलीय दशाओं में होता है, जहाँ वर्षा न्यून मात्रा में प्राप्त होती है। इस प्रकार विश्व के सभी मरुस्थलीय क्षेत्रों में इस प्रकार की मृदायें मिलती हैं। इनमें कैल्सियम, जिप्सम तथा लवणीय खनिजों की पर्याप्त मात्रा होती है। ये विशेषतः सहारा तथा गोबी के रेगिस्तान में मिलती हैं। इस मृदा में झाड़ियाँ तथा घास ही मुख्यतः पनपती है। इसकी आर्गिड्स तथा आरथिड्स दो उपश्रेणियाँ हैं।

(6) मोलीसॉल्स (Mollisol)–

ये मृदायें सूक्ष्म तापीय से उष्ण कटिबन्धीय जलवायु वाले क्षेत्रों में मिलती हैं। वर्षा द्वारा इस मृदा में निक्षालन तथा कैल्सिफिकेशन क्रियायें होती हैं। इनके ऊपरी संस्तरों का निर्माण मौलिक एपिपेडसन (Epipedson) द्वारा होता है। यह संस्तर काले रंग का होता है। मृदा निर्माण गहराई तक होता है। फलस्वरूप मृदा परिच्छेदिका पर्याप्त मोटी होती है तथा ठ संस्तरों में कैल्सियम की मात्रा अधिक होती है। इन मृदाओं का निर्माण उपोष्ण कटिबन्धीय (ubtropical) तथा मध्य अक्षांशीय क्षेत्रों की उष्णार्द्र जलवायु वाले घास के क्षेत्रों में होता है। ये क्षेत्र यूरेशिया में स्टेपीज, संयुक्त राज्य अमेरिका व कनाडा में प्रेयरीज, दक्षिणी अमेरिका में पम्पाज आदि हैं। इन्हें 7 उपश्रेणियों में विभक्त किया गया है।

(7) अल्फीसॉल्स (Alfisol)–

ये मृदायें आर्द्र जलवायु में मिलती हैं। इनके श्ठश संस्तर में मृत्तिका का संचयन मिलता है। मृदा संस्तरों का रंग धूसर (ळतंल), भूरा अथवा लाल होता है। जीवांश का अभाव पाया जाता है। पौधों को मृदा जल तीन महीने ही उपलब्ध हो पाता है। ये मृदायें विशेषकर मध्य उत्तरी अमेरिका, यूरोप, मध्य साइबेरिया, उत्तरी चीन, दक्षिणी आस्ट्रेलिया, पूर्वी ब्राजील, पश्चिमी, पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीका, उत्तरी आस्ट्रेलिया, पूर्वी भारत आदि में पायी जाती है। कृषि की दृष्टि से ये उपजाऊ होती हैं। अल्फीसॉल्स का विशाल क्षेत्र आर्द्र भूमध्यरेखीय प्रदेश तथा सहारा एवं कालाहारी के रेगिस्तान के मध्य उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में स्थित है। इन्हें पाँच उपवर्गों में विभाजित किया गया है।

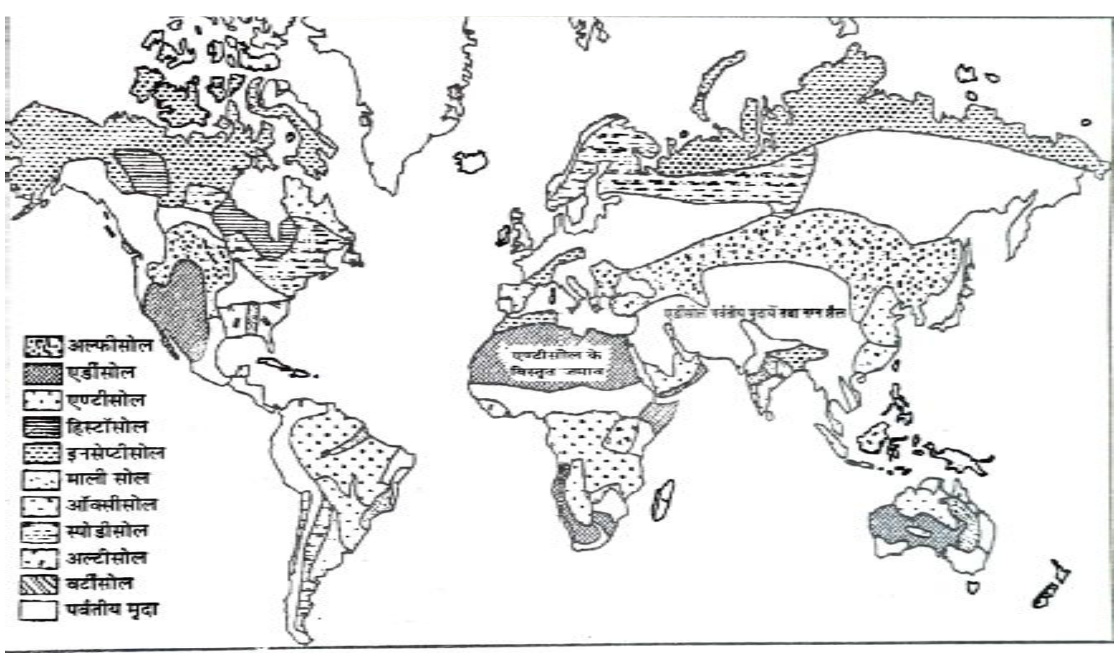

(8) स्पोडोसाल्स(Spodosols)–

ये मृदायें मुख्यतः उत्तरी गोलार्ध के उत्तरी भाग में विकसित होती हैं। इसमें सेस्क्की ऑक्साइड्स (Sesquioxide) का संचयन मिलता है। इसके संस्तर का रंग धूसर (Ash Gray) होता है। इनमें अम्लों की अधिकता एवं पोषक तत्त्वों एवं जीवांश की कमी पायी जाती है। स्पोडोसॉल मृदाओं की जलधारण क्षमता भी कम होती है। अतः उत्पादकता कम होने के कारण कृषि के लिए कम महत्त्वपूर्ण है। इन्हें चार उपश्रेणियों में विभाजित किया गया है।

(9) अल्टीसॉल्स (Ultisol)–

ये मृदायें आ उपोष्ण तथा शुष्कतर उष्ण कटिबन्धीय जलवायु एवं मानसूनी जलवायु में पायी जाती हैं। इनका निर्माण मुख्यतः वनाच्छादित क्षेत्रों में होता हैं B संस्तर का रंग पीला भूरा होता है इनकी देशज वनस्पति सवाना घास है। ये मृदायें मुख्यतः संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिणी चीन, बोलिविया, दक्षिणी ब्राजील, पश्चिमी तथा मध्य अफ्रीका, भारत, म्यांमार (बर्मा), पूर्वी द्वीप समूह तथा उत्तरी आस्ट्रेलिया में पायी जाती है। इनका सर्वाधिक विनाश स्थानान्तरी कृषि द्वारा हुआ है। इन्हें पाँच उपश्रेणियों में विभाजित किया गया है।

(10) आक्सीसॉल्स (Oxisol) –

ये अपक्षयित पुरानी मृदायें होती हैं जिनमें उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों की मृदायें प्रमुख हैं। ये जैविक संस्तरयुक्त (O) अच्छी अवस्था में होती हैं। इनमें खनिजों का अत्यधिक अपक्षय होता है तथा लोहे के ऑक्साइड, एल्यूमिनियम तथा क्वोलिनाइटस अधिक मात्रा में मिलते हैं। साथ ही दोमट एवं मृत्तिका के कण भी प्रचुर मात्रा में उपस्थित रहते हैं। ये भूमध्यरेखीय तथा ऊष्ण कटिबन्धीय एवं उपोष्ण कटिबन्धीय भागों में सर्वाधिक विकसित हुई हैं। ऑक्सीसॉल मृदायें, लाल, पीली तथा पीली–भूरी रंग की होती हैं। इन्हें पाँच उपश्रेणियों में विभाजित किया गया है।

(11) एण्डीसॉल्स (दकपेवसे) –

यह श्रेणी 1990 में जोड़ी गई है। इसके निर्माण को मूल पदार्थ नियन्त्रित करता है। इसका मूल पदार्थ ज्वालामुखी राख है। परिप्रशान्त महासागरीय क्षेत्र में स्थित ज्वालामुखी क्षेत्रों में इसका सर्वाधिक विकास हुआ है। इस क्षेत्र को अग्निवृत्त (Firy Ring) भी कहते हैं। इनमें हवाई द्वीप प्रमुख थे। यह सूक्ष्म स्तर पर वितरित है। एण्डीसॉल मृदाओं में पर्याप्त जीवांश (Organic Matter) मिलता है तथा जल धारण क्षमता भी अच्छी है। ये मृदायें उर्वर होती हैं।

8.8 सारांश

मृदा प्राकृतिक वातावरण का एक महत्वपूर्ण आधार है जो अन्य संसाधनों को एक आधार प्रदान करती है। मृदा का निर्माण करने वाले कारकों में जलवायु जीवमण्डल, उच्चावच, मूल पदार्थ, समय की निरन्तर प्रक्रिया के परिणामस्वरूप मृदा का निर्माण होता हुआ है। प्राकृतिक एवं मानवीय कारकों में मृदा का अपरदन भी होता है। मृदा संरक्षण के लिए मृदा संरक्षण के सामान्य निगम का प्रयोग कर मृदा को अपरदन में बचाया जा सकता है। इस इकाई का अध्ययन मृदा संसाधन को समझने में सहायक होगा।

8.9. बोध प्रश्न

8.9.1. दीर्ध उत्तरीय प्रश्नोत्तर :–

प्रश्न–1.मृदा संसाधन के वर्गीकरण के बारे में विस्तार से समझाइये।

प्रश्न–2.मृदा संसाधन के वितरण के बारे मे बताइये।

8.9.2. लघु उत्तनीय प्रश्न :–

प्रश्न–1.मिट्टी संरक्षण के कोई पाँच नियम बताइये।

प्रश्न–2.पेडाल्फर मृदा के बारे में बताइये?

प्रश्न–3.वर्टीसॉल को समझाइये ?

8.9.3 <u>बहु विकल्पीय प्रश्नोत्तर</u> :–

प्रश्न–1. कौन सी मृदा कटिबन्धीय (ंवदंस) नहीं है ?

(अ) पेडोल्फर्स **(ब)** पेडोकल्स

(स) टुण्ड्रा **(द)** रेण्डसीना

प्रश्न–2. निम्नांकित में से कौन सी मृदा अपार्धिक (्रवदंस) है?

(अ) पेडोकल **(ब)** पेडोल्फस

(स) जलोढ़ **(द)** रेगुर

प्रश्न–3. प्रेयरी मृदा का रंग काला होता है ?

(अ) मूल पदार्थ **(ब)** जलवायु

(स) जीवांश से **(द)** उच्चावच से

प्रश्न–4. स्टेपी प्रदेश में कौनसी मृदा मिलती है?

(अ) पोडजोल **(ब)** चरनोजम

(स) लेटेराइट **(द)** चेस्टनर

प्रश्न–5. रेगुर मिट्टी कहते है?

(अ) लाल मिट्टी को **(ब)** काली मिट्टी को

(स) लेटेराइट मिट्टी को**(द)** दलदली मिट्टी को

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ बी. सी जाट ''संसाधन भूगोल मलिक बुक कम्पनी संस्करण 2021

2 प्रो जगदीश सिंह ''संसाधन भूगोल'' ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर

3 Dr. Alka Gautam: Resources Geography. Sharda Pushtak Bhawan Prayagraj

इकाई 9– विश्व में फसलों का उत्पादन– वितरण, प्रतिरूप एवं प्रभावित करने वाली भौगोलिक दशाएं, चावल, मक्का, गन्ना, चाय, कहवा एंव कपास

इकाई का रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 चावल –वितरण, प्रतिरूप एवं प्रभावित करने वाली भौगोलिक दशाए

9.4 मक्का –वितरण, प्रतिरूप एवं प्रभावित करने वाली भौगोलिक दशाए

9.5 गन्ना –वितरण, प्रतिरूप एवं प्रभावित करने वाली भौगोलिक दशाए

9.6 चाय –वितरण, प्रतिरूप एवं प्रभावित करने वाली भौगोलिक दशाए

9.7 कहवा –वितरण, प्रतिरूप एवं प्रभावित करने वाली भौगोलिक दशाए

9.8 कपास –वितरण, प्रतिरूप एवं प्रभावित करने वाली भौगोलिक दशाए

9.9 सारांश

9.10 परीक्षोपयोगी प्रश्न

9.11 महत्वपूर्ण पुस्तके संदर्भ

9.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई मे ंहम विश्व में होने वाले प्रमुख फसलों के उत्पादन के बारे में अध्ययन करेंगें। अर्थिक भूगोल के अन्तर्गत इन फसलों के लिए आवश्यक भौगोलिक दशाओं, वितरण, प्रतिरूप आदि को वैश्विक स्तर पर समझ सकेंगें। मानव ने अपने उद्भव से लेकर वर्तमान युग तक अद्वितीय प्रगति की है। इसका प्रभाव कृषि क्षेत्र पर पडा है। मानव प्रारम्भ से कृषि पर निर्भर था जो प्राकृतिक कारकों पर निर्भर करती थी। वर्तमान में मशीनीकरण के फलस्वरूप फसलों का उत्पादन वैश्विक स्तर पर किया जाने लगा है। जिसके फलस्वरूप फसलो का व्यवसायिकरण हुआ है।

9.2 उद्देश्य

भूगोल की इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप–

- फसल उत्पादन के विविध रूपों को समझ सकेंगे।
- फसल उत्पादनके लिए आवश्यक भौगोलिक दशाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगे।
- वैश्विक स्तर पर फसल उत्पादन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगे।
- वैश्विक अर्थव्यवस्था में फसलों के व्यापार के बारे में समझ सकेगे।

9.3 चावल की फसल (RICE OR ORIZA SATIVA)

चावल की फसल का उद्भव दक्षिणी पूर्वी एशिया से माना जाता है। विश्व में खाद्यान्न के रूप में चावल एवं गेहूँ का समान स्थान है। चावल मुख्य रूप से उष्ण कटिबन्धीय मानसूनी जलवायु में पैदा किया जाता है। गेहूँ की अपेक्षा विश्व में चावल का प्रति हैक्टेयर उत्पादन अधिक होता है। चावल में मुख्य रूप से मण्ड (Starch) एवं कार्बोहाइड्रेट तत्त्वों की प्रधानता पायी जाती है, लेकिन ग्लूटेन (Gluten) तत्त्व कम पाया जाता है।

चावल की किस्में (Kinds of Rice) – विविधि क्षेत्रों में चावल के उत्पादन के आधार पर इसे निम्न दो भागों में बाँटा गया है–

(i) पहाड़ी चावल (Upland or Wet Rice)–पहाड़ी चावल, पर्वत एवं पठारों पर सीढ़ीनुमा खेत बनाकर उत्पादित किया जाता है। इसे शुष्क चावल भी कहते हैं। पहाड़ी चावल का उत्पादन मुख्य रूप से हिमालय पर्वत, इण्डोनेशिया, जापान, चीन आदि देशों में किया जाता है।

(ii) मैदानी चावल (Lowland Rice)– विश्व में उत्पादित चावल का 90 प्रतिशत मैदानी भागों में उपजाया जाता है। मैदानी चावल समतल खेतों में पानी भरकर उनमें बोया जाता है। इसे आर्द्र चावल भी कहते हैं।

चावल उत्पादन की विधियाँ (Methods of Rice Cultivation)–चावल की कृषि मुख्य रूप से तीन प्रकार से की जाती है–

(i) छिटकाव या बिखेर कर (Broadcasting Method)–खेतों में चावल के बीजों को बिखेर कर उनके ऊपर ट्रैक्टर द्वारा हल जोत दिया जाता है।

(ii) रोपकर (Plantation Method)–पहले बीज को बोकर पौध तैयार की जाती है। जब पौध की लम्बाई 10–15 सेमी. हो जाती है तो उसे खेतों में लगा दिया जाता है। यह सबसे आसान विधि है।

(iii) जापानी विधि (Japanese Method)–इसमें कम मात्रा में उत्तम बीजों का प्रयोग करते हैं तथा उठी हुई क्यारियों में बोते हैं। चावल को पानी से भरे खेत में छिटका कर बोया जाता है। पौधों को पंक्तियों में रोपित करते हैं। जापान के पहाड़ी भागों में चावल की कृषि को टा (T) तथा मैदानी चावल को हाटा (Hat) कहते हैं। सामान्यतया द्वितीय विधि का अधिक उपयोग किया जाता है। इस विधि द्वारा चावल का प्रति हैक्टेयर उत्पादन भी अधिक होता है।

चावल उत्पादन के लिए भौगोलिक दशाएँ (Geographical Conditions for Rice Cultivation)-

1. जलवायु (Climate) – चावल उत्पादन हेतु जलवायु की निम्नांकित दशाओं का होना आवश्यक है–

(अ) तापक्रम (Temperature)– चावल एक ऐसी फसल है जिसका उत्पादन उष्ण कटिबन्धीय मानसूनी जलवायु में होता है। अतः चावल की फसल को विकसित होने के लिए उच्चतम तापमान की आवश्यकता होती है। सामान्यतया खेतों में चावल बोते समय तापमान 200 से 21°ह एवं प्रारम्भिक विकास के समय 23° से 24°ह तथा फसल के पूर्णतया पकते समय उच्चतम लगभग 25° से 26° सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। अतः उच्च तापमान की आवश्यकता के कारण ही चावल का उत्पादन 20° उत्तरी से 20° दक्षिण अक्षांशों के मध्य वर्ष भर किया जाता है। इन अक्षांशों के बाहर केवल ग्रीष्मकाल में ही चावल का उत्त्पादन किया जाता है।

(ब) वर्षा (Rainfall)–चावल के बीज खेतों में बोते समय अधिकतर 30 से 40 दिनों तक पानी खेत में भरा रहना चाहिए। अतः चावल उत्पादन हेतु पर्याप्त वर्षा जल की प्राप्ति आवश्यक है। इसी कारण चावल का उत्पादन मानसूनी जलवायु वाले प्रदेश में अधिक होता है। चावल उत्पादन हेतु औसत वार्षिक वर्षा 120 से 150 सेमी. तक होनी चाहिए। 100 सेमी. से कम वर्षा वाले क्षत्रों में सिंचाई द्वारा चावल उत्पादन किया जाता है।

2. समतल धरातल (Isotropic Surface)–चावल उत्पादन हेतु खेत में पानी भरा रहना चाहिए। अतः अगर ऊबड़–खाबड़ धरातल होगा तो खेत में पानी नहीं रुक सकता। अतः समतल धरातल जल के रुकाव हेतु, ट्रैक्टरों द्वारा बुवाई आदि हेतु धरातल सामान्य ढालयुक्त समतल होना चाहिए।

3. मिट्टी (Soil)–नदियों के डेल्टाई क्षेत्र एवं बाढ़ के मैदान में नदियों द्वारा लाई गई काँप मिट्टी अधिक उपयुक्त होती है। काँपयुक्त चीका प्रधान दोमट मिट्टी सबसे अधिक अनुकूल है क्योंकि इस मिट्टी में पानी अधिक समय तक रुक सकता है।

4. श्रमिक (Labour)– चावल के उत्पादन में मशीनों का उपयोग केवल खेतों को तैयार करने में ही किया जाता है। शेष कार्य मानवीय श्रम द्वारा किया जाता है। बीज बोने, पौधे लगाने, खेतों की निराई एवं गुड़ाई करने तथा फसल पकने के बाद उसकी कटाई का कार्य, ये सभी मानव द्वारा ही किया जाता है। अतः

चावल उत्पादन हेतु सस्ता एवं अधिक मानवीय श्रम अति आवश्यक है। इसी कारण चावल का उत्पादन अधिक जनसंख्या वाले प्रदेशों में किया जाता है।

विश्व में चावल का उत्पादन (World Production of Rice) – विश्व के कुल चावल उत्पादन का 92 प्रतिशत भाग केवल एशिया महाद्वीप में उत्पादित होता है। कुल उत्पादन क्षेत्र का १० प्रतिशत क्षेत्र एशिया में ही है। चीन एवं भारत दोनों मिलकर विश्व के कुल चावल उत्पादन का लगभग 50 प्रतिशत चावल पैदा करते हैं। एशिया महाद्वीप के दक्षिणी एवं दक्षिणी–पूर्वी भाग में एशिया में 70 प्रतिशत चावल का उत्पादन होता है।

1. चीन – विश्व में 2016 में चीन कुल 211.09 मिलियन टन चावल का उत्पादन करके चीन विश्व का प्रथम बृहत्तम उत्पादक देश बन गया है। चावल चीन की प्रमुख खाद्यान्न फसल होने के कारण लगभग 3.75 करोड़ हैक्टेयर भूमि पर चावल उपजाया जाता है। चीन में चावल उत्पादन का मुख्य क्षेत्र दक्षिणी एवं मध्य–दक्षिणी भाग में स्थित है। वांग्टीसिक्यांग और सिक्यांग नदियों की घाटियों और डेल्टाई क्षेत्रों में मुख्य रूप से जेचवान प्रदेश में तथा दक्षिणी–पूर्वी भाग में समुद्र के तटीय भाग में कुल भूमि के लगभग 90 प्रतिशत भाग पर चावल का उत्पादन किया जाता है। चीन के दक्षिणी–पूर्वी भाग में वर्षा का औसत 150 सेमी. है तथा मिट्टी भी अत्यधिक उपजाऊ है। अतः यहाँ वर्ष में दो–तीन फसलें पैदा की जाती हैं। सिक्यांग नदी के डेल्टाई भाग में वर्ष में चावल की तीन फसलें उत्पादित की जाती हैं। यहाँ चावल के खेत वर्षा द्वारा प्राप्त जल से वर्ष भर भरे हुए रहते हैं। अतः चावल उत्पादन के साथ–साथ कुछ भाग में मत्स्य पालन भी किया जाता है। इनके अतिरिक्त दक्षिणी मंचूरिया और उत्तरी भाग के छिटपुट स्थानों पर सिंचाई द्वारा ग्रोष्म काल में चावल का उत्पादन किया जाता है।

2. भारत – चावल की भारत में खरीफ एवं रबी दोनों ही फसल मानी जाती हैं एवं खाद्यानों की दृष्टि से यह प्रथम स्थान रखती है। भारत विश्व का दूसरा बड़ा चावल उत्पादक देश है। चावल उत्पादन करने की दृ ष्टि से असोम, पंजाब, हरियाणा, बिहार, महाराष्ट्र, केरल, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, तमिलनाडु, कर्नाटक, ओडिशा, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल महत्त्वपूर्ण हैं। नदी घाटियों के डेल्टाओं में अच्छी किस्म का चावल पैदा होता है। यही कारण है कि मध्यवर्ती मैदान के पूर्वी डेल्टा वाले क्षेत्र चावल की कृषि अधिक करते हैं क्योंकि वहाँ उपयुक्त भौगोलिक परिस्थितियाँ हैं।

   चावल के उत्पादन क्षेत्र की दृष्टि से भारत में वर्तमान में 44.59 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र में चावल की कृषि हो रही है। क्षेत्रफल की दृष्टि से प्रथम स्थान पश्चिम बंगाल का है। सन् 1951 में चावल का उत्पादन लगभग 20 मिलियन टन था जो बढ़कर वर्तमान में 19.0 मिलियन टन हो गया है। अर्थात् स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद चावल उत्पादन में चार गुनी वृद्धि हुई है और उत्पादन में पश्चिम बंगाल का प्रथम स्थान है। पश्चिम बंगाल ही एकमात्र ऐसा राज्य है जहाँ वर्ष में 3 फसलें प्राप्त होती हैं (अमन, ओस, बोरो)। वर्ष 2016–17 वर्तमान में चावल का औसत उत्पादन 2550 किग्रा. प्रति हैक्टेयर है। पंजाब में 3952 किग्रा. प्रति हैक्टेयर होता है जो देश में प्रथम स्थान रखता है। विश्व में चावल उत्पादन की दृष्टि से भारत चीन के बाद द्वितीय स्थान पर है।

3. इण्डोनेशिया – विश्व में 77.29 मिलियन टन चावल का उत्पादन कर इण्डोनेशिया बीन एवं भारत के बाद तीसरा प्रमुख चावल उत्पादक देश बन गया है। विश्व के कुल चावल उत्पादन में क्षेत्र का 6 प्रतिशत क्षेत्र इण्डोनेशिया में है। इण्डोनेशिया का जावा द्वीप चावल उत्पादन में प्रमुख स्थान रखता है जिसकी कुल कृ षि योग्य भूमि के 90 प्रतिशत भाग पर चावल का उत्पादन किया जाता है। जावा के अतिरिक्त सुमात्रा, बोर्नियो एवं तिमोर द्वीपों पर चावल का उत्पादन किया जाता है। पहाड़ी ढालों पर सीढ़ीनुमा खेत बनाकर चावल का उत्पादन किया जाता है। यहाँ आई चावल की कृषि को सावाह (Sawaha) तथा शुष्क चावल को हुमा (Huma) कहते हैं। अत्यधिक सघन वनस्पति वाले क्षेत्र में वनों को काटकर स्थानान्तरणशील कृषि (जिसे यहाँ लदाँग कहा जाता है) की जाती है।

4. बांग्लादेश – चावल उत्पादन में बांग्लादेश का विश्व में चौथा स्थान है। बांग्लादेश के चावल उत्त्पादन का अधिकांश भाग, पद्मा एवं ब्रह्मपुत्र नदी के डेल्टाई भाग में उत्पादित किया जाता है। खुलना, जेस्सोर, नारायणगंज, ढाका एवं मेमनसिंह प्रमुख चावल उत्पादन करने वाले जिले हैं जहाँ वर्ष में दो या तीन चावल की फसलों का उत्पादन किया जाता है। यहाँ उपजाऊ काँप मिट्टी, अधिक वर्षा से पर्याप्त जल की प्राप्ति एवं जनसंख्या अत्यधिक होने से सस्ते एवं पर्याप्त अभिक आदि अनुकूल परिस्थितियाँ पायी जाती हैं।

5. वियतनाम – वियतनाम चावल उत्पादन में विश्व में पाँचवां स्थान रखता है। वियतनाम में मेकांग एवं रेड नदी के डेल्टाई क्षेत्र में जहाँ जनसंख्या घनत्व भी अत्यधिक पाया जाता है एवं नदियों द्वारा लाई गई उपजाऊ कौप मिट्टी पायी जाती है। अतः इस भाग में वियतनाम का लगभग पूरा चावल उत्पादन क्षेत्र स्थित है।

6. थाईलैण्ड – विश्व में चावल उत्पादन करने में इसका छठा स्थान है। थाइलैण्ड का लगभग सम्पूर्ण चावल उत्पादन मध्य थाईलैण्ड में मेनाम (Menam) नदी की घाटी में जो चाओ फ्राया क्षेत्र में स्थित है तथा मेनाम नदी के डेल्टा क्षेत्र में होता है। यहाँ अत्यधिक वर्षा के कारण खेत पानी से भरे रहते हैं। अतः इन्हें तैरता हुआ चावल (Floating Rice) भी कहते हैं। इनके अतिरिक्त यान्ही नदी द्वारा निर्मित सिंचित क्षेत्र थाईलैण्ड के दक्षिणी एवं उत्तरी–पूर्वी भाग में थोड़ा बहुत चावल का उत्पादन किया जाता है। यहाँ का शपिनकाओश चावल विश्व प्रसिद्ध है।

7. जापान – चावल के प्रति हैक्टेयर उत्पादन में जापान का प्रमुख स्थान है। चावल उत्पादन की जापानी विधि विकासशील देशों के लिए एक ब्रह्मास्त्र के समान मानी जाती है। जापान का अधिकांश चावल उत्पादन क्षेत्र दक्षिण भाग में स्थित है। होशू द्वीप के मध्य में स्थित सिचोउची क्षेत्र और शिकोकू द्वीप प्रमुख चावल उत्पादक क्षेत्र हैं। जापान में अधिक श्रमिक एवं कुशल वैज्ञानिक विधि के कारण पहाड़ी भागों में सीढ़ीनुमा खेत बनाकर चावल का उत्पादन किया जाता है।

8. म्यांमार – चावल म्यांमार की प्रमुख फसल है जिसके द्वारा म्यांमार के 70 प्रतिशत लोगों की जीविका चलती है। म्यांमार की कुल राष्ट्रीय आय का दो–तिहाई भाग चावल से ही प्राप्त होता है। म्यांमार में उत्पादित चावल का अधिकतम भाग इरावदी नदी की निचली घाटी, डेल्टाई क्षेत्र एवं दलदली भाग में स्थित काँप मिट्टी में होता है। इसके अतिरिक्त सालविन नदी की निचली घाटी, अकयाब क्षेत्र, इरावदी नदी की घाटी का मध्य भाग, सितांग नदी घाटी एवं डेल्टाई भाग में तथा चिदंविन नदी की घाटी में चावल का उत्पादन होता है।

फिलीपाइन्स के लूनोज द्वीप का दक्षिणी एवं मध्य भाग, सेबू, पनय, नग्रोस एवं लेप्टे क्षेत्र, दक्षिण कोरिया, ताइवान, पाकिस्तान, कम्बोडिया, लाओस, नेपाल, मलेशिया, श्रीलंका आदि देश भी एशिया महाद्वीप के प्रमुख चावल उत्पादक देश हैं। अन्तर्राष्ट्रीय चावल शोध संस्थान, मनीला (फिलीपाईन्स) में है।

दक्षिणी अमेरिका–विश्व के कुल चावल उत्पादन में दक्षिण अमेरिका एशिया के बाद दूसरे स्थान पर है। ब्राजील मुख्य चावल उत्पादक देश है जो दक्षिण अमेरिका महाद्वीप के कुल चावल उत्पादन का 60 प्रतिशत उत्पादन करता है। ब्राजील में चावल का उत्पादन जापानी लोगों के जाने के कारण तीव्र गति से बढ़ा है। पीरू के समुद्र तटीय भाग में, गुयाना के तटीय भाग में जहाँ भारतीय लोग रहते हैं, कोलम्बिया, इक्वेडोर आदि प्रमुख चावल उत्पादक देश हैं।

अफ्रीका – अफ्रीका तीसरा वृहत्तम चावल उत्पादक महाद्वीप है। यहाँ मिस्र में नील नदी के डेल्टाई भाग में, मालागासी में समुद्र तटीय क्षेत्र में, गिनी, पूर्वी अफ्रीका, दक्षिण अफ्रीका का नेटाल क्षेत्र आदि प्रमुख चावल उत्पादक देश हैं।

उत्तरी अमेरिका –चावल उत्पादन में उत्तरी अमेरिका महाद्वीप पिछड़ा हुआ है। यह विश्व के कुल उत्पादन का 2 प्रतिशत चावल उत्पादन करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिणी–पूर्वी भाग में स्थित तटीय क्षेत्र, मिसीसिपी नदी का क्षेत्र, पश्चिम में स्थित सेक्रोमेंटो एवं सान ज्वेकिन घाटी प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं। मैक्सिको के समुद्र तटीय भाग में बहुत कम मात्रा में चावल का उत्पादन किया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार – विश्व के चावल उत्पादन का अधिकांश भाग दक्षिणी एवं दक्षिणी– पूर्वी एशिया में स्थित देशों द्वारा किया जाता है। एशिया महाद्वीप कुल चावल निर्यात का 56 प्रतिशत चावल निर्यात करता है। थाईलैण्ड का प्रमुख स्थान है चीन से 9 प्रतिशत, भारत से 7 प्रतिशत, वियतनाम से 6 प्रतिशत, पाकिस्तान से 5.5 प्रतिशत एवं संयुक्त राज्य से 18 प्रतिशत चावल निर्यात किया है।

9.4 मक्का (CORN OR MAIZE OR ZEA MAYS)

विश्व में मक्का की खेती सर्वप्रथम लेटिन अमेरिका में इंका (Inc) व एजटेक्स (Aztac) लोगों द्वारा की कई। जहाँ आज भी मुख्य खाद्यान्न मक्का ही है। मक्का को यूरोप एवं अमेरिका में ब्वउ तथा भारत में डंप्रम (Zea Mays) कहते हैं। यूरोप में इसकी कृषि क्रिस्टोफर कोलम्बस ने प्रारंभ करवायी जिसके बाद डेन्यूब बेसिन एवं बाल्कन प्रायद्वीप में मक्का की विस्तृत कृषि प्रारंभ हुई। मक्का, गेहूँ तथा चावल के बाद खाद्यान्नों में तीसरा प्रमुख खाद्यान्न माना जाता है। प्रति हैक्टेयर उत्पादन भी अधिक होता है। खाद्यान्नों के अतिरिक्त मक्का का मुख्य उपयोग सूअरों को चारे के रूप में खिलाने में अधिकतम किया जाता है। इसका अधिकतम उपयोग गरीब लोग अपने प्रमुख खाद्यान्न के रूप में करते हैं।

मक्का की किस्में (Types of Corn)–

(1) डेण्ट मक्का (Dent Corn)–इस प्रकार की मक्का पीली एवं सफेद रंग की होती है। अमेरिका की ब्वउ बेल्ट में विस्तृत रूप में मिलती है।

(2) फ्लींट मक्का (Flint Corn)– यह मक्का भी संयुक्त राज्य अमेरिका में होतीहै। उन स्थानों पर. अधिक होती है, जहाँ कम दिनों में इसके लिए भौगोलिकदशाएँ मिलती हैं। यह शीघ्र तैयार होने वाली फसल है।

(3) पोप मक्का (Pop Corn)–यह बहुत छोटी एवं कठोर मक्का होती है जिसके दाने गर्म करने पर बड़े हो जाते हैं।

(4) मीठी मक्का (Sweet Corn)–यह मक्का आटा बनाने में उपयुक्त है। इसलिए इसे खाने में इस्तेमाल करते हैं।

(5) आटा मक्का (Flour Corn)–इस प्रकार की मक्का भी आटा बनाने में काम में ली जाती है। इसकी कृषि मध्य एवं दक्षिण अमेरिका में की जाती है।

(6) वेक्सी मक्का (Waxy Corn)– यह मक्का हल्की होती है।

(7) पोड मक्का (Pod Corn)–यह मक्का भी घरेलू उपयोग में काम में ली जाती है एवं छोटे पैमाने पर होती है। यह व्यापारिक फसल नहीं है। इस प्रकार की मक्का में (दानों के) अलग–अलग छिलके होते हैं।

मक्का उत्पादन की भौगोलिक परिस्थितियाँ

मक्का मुख्यतः उपोष्ण कटिबन्धीय भाग में उपजने वाला पौधा है। अतः मक्का का सम्पूर्ण उत्पादन 50° उत्तरी अक्षांश से 40° दक्षिणी अक्षांश के मध्य किया जाता है अतः इसकी कृषि के लिए निम्नलिखित भौगोलिक दशाएँ आवश्यक हैं–

(i) तापमान–मक्का उत्पादन हेतु दिन का औसतन तापमान 18° से 27° सेल्सियस होना चाहिए। रातें गर्म होनी चाहिए। फसल उत्पादन हेतु मौसम 140 दिन पाला रहित होना चाहिए।

(ii) वर्षा–मक्का उत्पादन हेतु वार्षिक वर्षा का औसत 60 से 120 सेमी. होना चाहिए। बीज बोते एवं अंकुरित होते समय हल्की–हल्की बौछारों के रूप में लगातार वर्षा होना आवश्यक है। रात्रि में होने वाली वर्षा मक्का के लिए अधिक उपयुक्त होती है, क्योंकि कृषि विशेषज्ञों का मत है कि मक्का का 80 प्रतिशत विकास रात्रि में होता है।

(iii) मिट्टी–मक्का उत्पादन हेतु मिट्टी में आर्द्रता रहना अति आवश्यक होता है। अतः काँप या दोमट मिट्टी मक्का उत्पादन हेतु उपयुक्त मिट्टी होती है।

(iv) धरातल – धरातल सामान्य ढालयुक्त होना चाहिए, ताकि वर्षा जल का निकास होता रहे। अगर जल अधिक समय तक रुका रहता है तो जड़ें गलने लग जाती हैं।

(v) श्रम, पूँजी एवं उर्वरक मक्का का उत्पादन बड़े–बड़े फार्मों पर मशीनों के द्वारा किया जाता है। अतः

मानवीय श्रम कम तथा पूँजी की अधिकतम आवश्यकता पायी जाती है। मिट्टी को उर्वरक बनाए रखने के लिए समय–समय पर रासायनिक एवं गोबर की खाद का भी उपयोग किया जाता है।

विश्व के मक्का उत्पादक देश (Maize Producing Areas of the World)

संसार में संयुक्त राज्य अमेरिका एक महत्त्वपूण एवं सबसे बड़ा मक्का उत्पादन करने वाला राष्ट्र है। क्योंकि संसार का लगभग 50ः मक्का यहीं से उत्पादित होता है। यहाँ की मक्का की पेटी एक विस्तृत पट्टी के रूप में फैली है जो सामान्यतया कपास की पट्टी के ऊपर है तथा मक्का की पेटी के ऊपर दुग्ध व्यवसाय की पट्टी फैली है। मक्का पट्टी के ऊपर ओहियो, इण्डियाना, इलिनायज, आयोवा, मिनिसोटा आदि राज्य हैं। यहाँ भौगोलिक परिस्थितियाँ अनुकूल हैं। तापमान एवं वर्षा की अनुकूलता के साथ ही समतल मैदान, प्रेयरी मिट्टी के प्रमुख क्षेत्र हैं। इस मक्का पेटी में रहने वाले लोग अन्य क्षेत्रों की तुलना में उच्च जीवन व्यतीत करते हैं। संसार के अन्य सक्का उत्पादन करने वाले राष्ट्रों में चीन 10ः, ब्राजील 5.5ः, रूस 3ः तथा अन्य राष्ट्रों में यूगोस्लाविया, मैक्सिको, फ्रांस, अर्जेन्टीना, भारत, इटली एवं हंगरी प्रमुख हैं, जो अपेक्षाकृत मक्का का उत्पादन बहुत कम करते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका – विश्व में 384.77 मिलियन टन मक्का का उत्पादन संयुक्त राज्य में हुआ है। यह मक्का उत्पादन में प्रथम वृहत्तम उत्पादक देश है। संयुक्त राज्य अमेरिका की श्मक्का की पेटीश (Corn Belt) विश्व प्रसिद्ध है जहाँ संयुक्त राज्य की 75 प्रतिशत मक्का का उत्पादन होता है। मक्का की पेटी का विस्तार ओहियो से नेब्रास्का तक एवं दक्षिण में इलिनायज से उत्तर में स्थित विस्कांसिन, मिन्नेसोटा राज्यों के मध्य स्थित है। यहाँ सम्पूर्ण उत्पादन बड़े–बड़े फार्मों पर मशीनों की सहायता से किया जाता है। वृहद् झील प्रदेश के दक्षिण में, मैक्सिको की खाड़ी के उत्तर में भी मक्का का उत्पादन किया जाता है। विश्व में मक्का की सभी आदर्श भौगोलिक परिस्थितियाँ संयुक्त राज्य अमेरिका में है। इसलिए संसार में यह मक्का उत्पादन करने की दृष्टि से प्रथम स्थान रखता है। भौगोलिक दशाओं में इसकी खेती 18°–27° सेल्सियस तापमान पर होती है। लगभग उन क्षेत्रों में मक्का की खेती सामान्य रूप से होती है, जहाँ 60 सेमी. तक वर्षा होती है। इसके लिए मिट्टी कई देशों में अलग–अलग प्रकार की होती है। लेकिन समशीतोष्ण पोडजोल (Podzol) किस्म की मिट्टी उपयुक्त है।

चीन – चीन मक्का उत्पादन में विश्व में दूसरे स्थान पर है। विश्व के कुल उत्पादन की 20 प्रतिशत मॅक्का का उत्पादन चीन में होता है। चीन के उत्तरी भाग में स्थित वृहत् मैदान, दक्षिणी एवं मध्य तथा दक्षिणी–पश्चिमी भाग में स्थित पठारी प्रदेश प्रमुख मक्का उत्पादक क्षेत्र हैं। चीन में अधिकतर उत्पादित मक्का का उपयोग सूअरों को खिलाने में किया जाता है।

ब्राजील – मक्का के उत्पादन में ब्राजील का विश्व में तीसरा स्थान है। विश्व में उत्पादित मक्का का 5.4 प्रतिशत भाग ब्राजील में उत्पादित होता है। ब्राजील में उत्पादित मक्का वा तीन– चौधाई उत्पादन मिनास गेरास सॉओ पालो तथा रॉयो ग्रान्डे में किया जाता है। ब्राजील के उत्तरी– पूर्वी भाग से सुदूर दक्षिण तक छिटपुट स्थानों पर मक्का का उत्पादन किया जाता है। ब्राजील में उत्पादित मक्का का मुनष्य के खाद्यान्न के रूप में अधिकतम उपयोग किया जाता है।

मैक्सिको – पर्याप्त ऊर्जा, उपोष्ण कटिबन्धीय भाग में स्थित एवं उपजाऊ मिट्टी आदि के कारण मैक्सिको भी प्रमुख मक्का उत्पादक देश है। मक्का उत्पादन में विश्व में मैक्सिको का पाँचवाँ स्थान है जो विश्व की कुल मक्का का 3.2 प्रतिशत मक्का उत्पादित करता है।

यूरोप – यूरोप महाद्वीप में फ्रांस, इटली, हंगरी, यूक्रेन तथा रोमानिया प्रमुख मक्का उत्पादक देश हैं। रोमानिया में उत्पादित मक्का का अधिकांश भाग वालचिया क्षेत्र में उत्पादित होता है। यूरोप में स्थित डैन्यूब बेसिन मक्का उत्पादन में अपना प्रमुख स्थान रखता है। यूगोस्लाविया के पश्चिम में स्थित पवनोढ मिट्टी के क्षेत्र में प्रति हैक्टेयर उत्पादन भी अधिक होता है। इटली में स्थित पो बेसिन, दक्षिण में स्थित इटली का प्रायद्वीपीय भाग प्रमुख मक्का उत्पादक क्षेत्र है।

फ्रांस के दक्षिणी–पश्चिमी भाग में, स्पेन तथा पुर्तगाल के पश्चिम में स्थित क्षेत्र आदि यूरोप महाद्वीप के अन्य कारक उत्पादक क्षेत्र हैं।

अर्जेन्टाइना – विश्व उत्पादन की 3.0 प्रतिशत मक्का का उत्पादन अर्जेन्टाइना में किया जाता है। गेहूँ उत्पादक प्रदेश पम्पास के उत्तरी–पूर्वी भाग में स्थित ब्यूनस आयर्स के दक्षिणी भाग तक 400 वर्ग किमी. क्षेत्र में मक्का का

उत्पादन किया जाता है। सूअर पालन की कमी के कारण यहाँ उत्पादित मक्का या अधिकांश भाग निर्यात कर दिया जाता है।

भारत – भारत विश्व में उत्पादित मक्का का 2.2 प्रतिशत भाग उत्पादित करता है। मक्का उत्पादन में भारत का विश्व में सातवाँ स्थान है। भारत में जलवायु की प्रतिकूलता एवं अनुपजाऊ मिट्टी के कारण प्रति हैक्टेयर उत्पादन बहुत कम होता है। प्रमुख मक्का उत्पादक राज्य पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश एवं कर्नाटक हैं।

इण्डोनेशिया में जावा, सुमात्रा एवं सेलीबीज द्वीपों में, फिलिपाइन में लूजोनद्वीप की कागपान घाटी एवं मिडनाओ द्वीप में, दक्षिण अफ्रीका में वेल्डस प्रदेश में स्थित क्षेत्र, ट्रांसवाल, आरेंज फ्री स्टेट, मिस्त्र में नील नदी की निचली घाटी में आदि विश्व के अन्य प्रमुख मक्का उत्पादक देश हैं। पाषाण काल में झीलों के किनारे रहने वाले स्वीस लोगों द्वारा मक्का बोयी जाती थी तथा बाद में इसकी कृषि चीनी लोगों, मिस्त्रवासियों तथा भूमध्यसागरीय लोगों द्वारा की गई।

9.5 गन्ना (SUGARCANE)

गन्ना की उपज का उपयोग अधिकतर चीनी बनाने में किया जाता है। चीनी एक ऐसा पदार्थ है जिसका किसी न किसी रूप में उपयोग लगभग विश्व के सभी देश करते हैं। अतः चीनी की अधिक मांग होने के कारण गन्ना उत्पादन का स्तर भी आधुनिक समय में वर्ष–प्रतिवर्ष बढ़ता जा रहा है। चीनी का मुख्य स्रोत होने के कारण गन्ने को प्रमुख फसल माना जाता है। गन्ने का मूल भारत को ही माना जाता है। प्राकतिक रूप में घास की तरह यह सर्वप्रथम बंगाल की खाड़ी के तटीय भाग पर मिला था। गन्ना सैकरम ऑफिसीनेरम (Saccarum & officinarum) नामक एक बाँस के प्रकार की आकृक्ति का वशंज माना जाता है।

गन्ना उत्पादन की भौगोलिक दशाएँ (Geographical Conditions for Sugar&cane Cultivation) – गन्ना मुख्य रूप से उपोष्ण कटिबन्धीय जलवायु में उत्पन्न होने वाली फसल है। अतः इसका उत्पादन अधिकतर आर्द्र एवं उष्ण जलवायु वाले प्रदेशों में होता है। 32° उत्तरी अक्षांशों से 30° दक्षिणी अक्षांशों के मध्य स्थित प्रदेश गन्ना उत्पादन हेतु उपयुक्त है। गन्ने की फसल को पूर्णतया तैयार होने में लगभग 9 से 10 महीने लग जाते हैं।

(i) तापमान (Temperature)–बोते समय 20°६ एवं क्रमिक विकास के साथ–साथ धीरे–धीरे तापमान में वृद्धि होनी चाहिए। पकते समय तापमान 21° से 27° से (70°–80°४) होना चाहिए। पकते समय तेज धूप रहने से गन्ने में रस भी अधिक होता है और मियाम अधिक आता है।

(i) वर्षा (Rainfall) – पकते समय ही केवल वर्षा नहीं होनी चाहिए। पकने में चारी एवं लगातार वर्षा आवश्यक है। कम से कम 125 से 175 सेमी. वार्षिक वर्षा होने से भी अधिक बनता है।

(ii) मिट्टी (Soil)–गन्ना उत्पादन हेतु फास्फोरस तत्व युक्त गहन उपजाऊ मिट्टी होनी चाहिए। काली लावा मिट्टी, चिकनी दोमट एवं कॉंप मिट्टी गन्ना उत्पादन हेतु उपयुक रहती है।

(पअ) उर्वरक (Fertilizer)–मिट्टी के कम उपजाऊ होने पर उसमें खाद देना अति आवश्यक हो जाता है। गन्ने की फसल हेतु नाइट्रोजन एवं फास्फोरस तत्त्वों की अधिक आवश्यकता होती है। अतः अमोनियम सल्फेट, नाइट्रेट, सुपरफास्फेट, यूरिया, गोबर वं खली की खाद का अधिकाधिक उपयोग किया जाना चाहिए।

(अ) धरातल (Topography)– गन्ना उत्पादन हेतु सामान्य ढालयुक्त धरातल होना चाहिए। ताकि वर्षा जल का निकास भी होता रहे एवं यातायात में भी सुविधा रहे।

(अप) श्रम (स्ंइवनत)–गन्ना की फसल हेतु रोपाई, निराई, गुडाई, कटाई आदि कार्यों से करने हेतु सस्ते एवं अधिक श्रामिकों की आवश्यकता होती है।

विश्व में उत्पादन एवं वितरण विश्व में गन्ने का वार्षिक औसत उत्पादन लगभग 9000 से 10000 लाख टन होता है। प्रमुख गन्ना उत्पादक देश ब्राजील, भारत, क्यूबा, चौर, मैक्सिको, पाकिस्तान, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि हैं जहाँ विश्व के लगभग 90 प्रतिशत गर्ने का उत्पादन होता है।

लैटिन अमेरिका गन्ने का प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हो गया है, जिसके निम्नलिखित देशों का गन्ना उत्पादन में मुख्य स्थान है–

ब्राजील – गन्ना उत्पादन की दृष्टि से ब्राजील का विश्व में प्रथम स्थान है। सस्ते श्रमिक मशीनीकृत कृषि एवं उर्वरकों का अधिकतम उपयोग आदि कारक सहायक हैं। यह विश्व का 35.9 प्रतिशत गन्ना (2005) उत्पादित करता है। यहाँ प्रमुख गन्ना उत्पादक दो प्रदेश हैं–

(प) ब्राजील के उत्तरी–पूर्वी भाग में समुद्र तट पर स्थित पाराइबो, पेरानाम्बुको, अलागोआस, सरजोइपे एवं बाहिया क्षेत्र।

(पप) ब्राजील के घास स्थल केम्पोज (ब्ंउचवेम) के दक्षिण में तथा सवाना प्रदेश में स्थित मिनास–गैरास, साओपोलो एवं रियो डी जेनेरो राज्य।

क्यूबा – विश्व में गन्ना उत्पादन एवं गन्ने से निर्मित चीनी का अन्य देशों में निर्यात को दृष्टि से क्यूबा एक प्रमुख देश है। क्यूबा में गन्ने की कृषि बड़े–बड़े कृषि फामों पर मशोनों द्वा की जाती है। यहाँ गन्ने के बड़े फार्मों को तेतीफुन्दिओ कहते हैं। 1990 से पूर्व क्यूबा गन उत्पादन एवं चीनी उत्पादन में तीसरे स्थान पर था। लेकिन आन्तरिक राजनीतिक कारणों में क्युबा का विश्व में चीनी उत्पादन कम हो गया है। मुख्य उत्पादक क्षेत्र क्यूबा के मध्य तथ पश्चिमी भाग में कामागुए, ओरिएन्ट प्रदेश है। सातोक्लारा, मैताजाज, हवाना आदि क्षेत्रों में भी कुछ मात्रा में गन्ने का उत्पादन किया जाता है।

मैक्सिको के पूर्वी एवं पश्चिमी तटीय क्षेत्र में, पीरू के पश्चिम में स्थित प्रशान्त महासागर के तटीय भाग में, गुयाना के तटीय क्षेत्र आदि अन्य प्रमुख गन्ना उत्पादक क्षेत्र हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका – गन्ना उत्पादन में विश्व में 10वें स्थान पर है। लेकिन चीनी के उपभोक्ता की दृष्टि से संयुक्त राज्य अमेरिका प्रथम स्थान पर है। यहाँ गन्ना उत्पादन के दो क्षेत्र मुख्य हैं–

(प) दक्षिणी प्रदेश–संयुक्त राज्य के दक्षिणी भाग में स्थित लुजियाना एवं फ्लोरिडा राज्य जो मिसीसिपी नदी की घाटी के निचले भाग में स्थित हैं।

(पप) हवाई द्वीप क्षेत्र–इस क्षेत्र में गन्ना उत्पादन हेतु समुद्रीय जलवायु, लावायुक्त काली मिट्टी, गन्ने की श्रेष्ठ किस्म, स्वाद का अधिकतम उपयोग, बड़े–बड़े कृषि फार्म, कृषि यन्त्रों एवं मशीनों द्वारा कृषि कार्य, सिंचाई की पूर्ण सुविधा एवं विस्तृत बाजार आदि अनुकूल दशाएँ पायी जाती हैं। हवाई द्वीप में प्रति हैक्टेयर उत्पादन भी विश्व में अधिकतम 818 क्विटल होता है।

भारत – विश्व में भारत का गन्ना उत्पादन में द्वितीय स्थान है। भारत में गन्ने की खेत करने वाले प्रदेशों में उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कनार्टक, आन्ध्र प्रदेश, हरियाणा, पंजाब प्रमुख हैं। दक्षिणी भारत की नदी घाटियों में भी गन्ने की खेती की जाती है। गन्ने की फसल में कई बार अचानक रोग लग जाते हैं इसलिए यह फसल पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती है। फसल काटते समय लगने वाले रोग एवं तेज हवाएँ अचानक इसे नष्ट कर देती हैं। वर्तमान में गन्ने का उत्पादन करने वाला अधिकतम क्षेत्र उत्तर प्रदेश में स्थित है, लगभग 50 प्रतिशत गन्ने का क्षेत्र उत्तर प्रदेश में है लेकिन वर्तमान में इसका अधिकतम विस्तार दक्षिण क्षेत्रों में हो रहा है। वर्तमान (2018) गन्ने का उत्पादन 348.44 मिलियन टन है जिसका लगभग ·5 प्रतिशत केवल उत्तर प्रदेश से प्राप्त होता है। देश में गन्ने का औसत उत्पादन 71.0 टन प्रति हैक्टेयर है जबकि प्रति हैक्टेयर उत्पादन में प्रथम स्थान पश्चिम बंगाल का है। विश्व में गन्ना उत्पादन की दृष्टि से भारत का ब्राजील के बाद द्वितीय स्थान है।

फिलीपींस विश्व के गन्ना उत्पादन का 2.6 प्रतिशत का उत्पादन करता है। समुद्र के तटवर्ती भाग में मन्द समुद्रीय वायु का संचार, ज्वालामुखी क्रिया से प्राप्त उपजाऊ लावायुक्त काली मिट्टी आदि गन्ना उत्पादन हेतु उपयुक्त दशाएँ विद्यमान हैं। निग्रोस, पनाप एवं लूजोन द्वीप प्रमुख गन्ना उत्पादक क्षेत्र हैं।

इण्डोनेशिया कुल गन्ना उत्पादन का लगभग 2.2 प्रतिशत गन्ने का उत्पादन करता है। जावा द्वीप के पूर्वी भाग में विस्तृत रूप से गन्ने की कृषि की जाती है। जावा द्वीप में समुद्री जलवायु, समतल एवं उपजाऊ लावा मिट्टी, सस्ते श्रमिक आदि अनुकूल दशाएँ हैं।

चीन विश्व में कुल गन्ना उत्पादन की दृष्टि से तीसरे स्थान पर आ गया है। थोड़ा बहुत गन्ना चीन के लगभग

सभी प्रदेशों में उपजाया जाता है। लेकिन प्रमुख उत्पादक क्षेत्र चीन के दक्षिणी–पूर्वी भाग में तटीय क्षेत्र में स्थित है।

अफ्रीका – यद्यपि अफ्रीका महाद्वीप में स्थित देशों में गन्ने का उत्पादन बहुत कम होता है लेकिन अफ्रीका में उत्पादित गन्ने एवं चीनी का 40 प्रतिशत भाग दक्षिण अफ्रीका संघ द्वारा उत्पादित किया जाता है। दक्षिण अफ्रीका में पूर्व में समुद्र के तटीय भाग में स्थित नेटाल प्रमुख गन्ना उत्पादक प्रदेश हैं। नील नदी द्वारा प्राप्त जल में सिंचाई के द्वारा गन्ना उत्पादन करके मिश्र अफ्रीका में दूसरा प्रमुख देश बन गया है। मोजम्बिक, कीनिया, युगाण्डा एवं मारीशस अन्य प्रमुख गन्ना उत्पादक देश हैं।

आस्ट्रेलिया – आस्ट्रेलिया में गन्ने की कृषि बड़े–बड़े कृषि फार्मों में मशीनों की सहायता से की जाती है। उर्वरकों का प्रयोग यहाँ अधिकतम किया जाता है। मुख्य उत्पादक प्रदेश आस्ट्रेलिया के पूर्वी भाग में प्रशान्त महासागर के तटीय भाग में स्थित क्षेत्र में होता है। यहाँ चोनी का वार्षिक उत्पादन लगभग 34.40 लाख टन होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार –

गन्ना के द्वारा निर्मित चीनी के आयात–निर्यात हेतु विश्व में अनेक संगठनों का निर्माण किया गया है। विश्व में चीनी का अधिकतम उत्पादन विकासशील देशों में होता है। 54 प्रतिशत विकासशील देशों में, 37 प्रतिशत विकसित देशों में तथा 9 प्रतिशत अन्य देशों में चीनी का उत्पादन होता है। कुल निर्यातित चीनी का 57 प्रतिशत भाग विकासशील देशों द्वारा निर्यात किया जाता है। 45 प्रतिशत निर्यातित चीनी का विकसित देश उपयोग करते हैं। क्यूचा, ब्राजील, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, मारीशस, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि प्रमुख देश चीनी का निर्यात करते हैं। यूरोपीय महाद्वीप के अधिकांश देश, दक्षिणी अमेरिकी देश तथा चीन, जापान, अफ्रीका के अधिकांश देश चीनी के प्रमुख आयातक हैं।

9.6 चाय (TEA)

चाय विश्व के अधिकतर लोगों का पेय पदार्थ के रूप में उपयोग में लिए जाने वाला पौधा है। चाय में स्फूर्तिदायक थीन या टेनिक अम्ल (Theine or Tannic Acid) नामक तत्त्व पाया जाता है। चाय एक सदाबहार किस्म का पौधा है। केमिलिया (Camelli) नामक वनस्पति परिवार का वंशधर माना जाता है। इसका उद्भव 16 वीं शताब्दी में चीन के चांग जियांग (यांग्टीसी) घाटी (Chang Jiang or Yangtee) से माना गया है। इसका पौधा 9 से 12 मीटर तक बढ़ सकता है लेकिन व्यापारिक उद्देश्य से इसकी ऊँचाई 1.2 से 1.5 मीटर तक रखते हैं जिस पर वियमिकाट–छाँट कर झाड़ीदार बना लिया जाता है। पौधे से पचियाँ चुनी जाती हैं। इस को पक्षियों को सुखाकर या हरी रखकर पैकिंग कर दी जाती है। चाय की दो मुख्य किस्में हैं, प्रथम को असम प्रजाति की चाय यह भारत एवं श्रीलंका में उत्पादित की जाती है। इसकी पत्तियाँ लम्ब तथा बड़ी होती हैं। दूसरी, चीनी प्रजाति–इसकी पत्तियाँ छोटी होती हैं। चाय की पत्ती औसतन 6.3 सेमी. लम्बी तथा हरे सामान्य से गहरे रंग की होती हैं।

चाय की व्यापारिक किस्म (Commercial Kinds of Tea)–मुख्य रूप से पाँच प्रकार की चाय की किस्में तैयार की जाती हैं–

(i) काली चाय (Black Tea)–पत्तियों को तोड़कर धूप में सुखा लेते हैं। धूप में सूखते समय इस पर पानी का छिड़काव कर दिया जाता है। गर्मी तथा नमी के कारण पत्तियाँ किण्वित (Fermented) होने से हल्की सी सड़न देने लगती हैं। इनके सूखने पर ऊपर बेलन घुमाकर डिब्बों में डालकर बाजार में ब्रिकी हेतु भेज दिया जाता है। यह भारत एवं श्रीलंका में मिलती हैं। काली चाय पूरी दुनिया में पी जाती है। पत्तियाँ पूरी तरह से किण्वित और ऑक्सीकृत होती हैं। हमारे रोजाना के कप में सीटीसी और पारम्परिक चाय होती है। सीटीसी यानी श्कट टवं कर्लश। यह व्यापक मात्रा में चाय की पत्तियाँ बनाए जाने की प्रक्रिया है। स्मोक्ड ब्लैक टी बनाए जाने के लिए ब्लैक टी को सुलगती लकड़ी का धुआं दिया जाता है।

(ii) चीनी या हरी चाय (China or Green Tea)– चाय की पत्तियों को धूप में सुखाते समय पानी का छिड़काव नहीं दिया जाता है तो चाय की पत्तियों का रंग हरा रहता है, इसे हरी चाय कहते हैं। इसे सेंचा (Sencha) भी कहते हैं। यह चीन में मिलती है। पूरब में लोकप्रिय इस प्रकार की पत्तियों का किण्वन नहीं कराया जाता। यह कांगड़ा घाटी में उगाई जाती है और कश्मीर में बहुत पसन्द की जाती है। चीन में ग्रीन टी के

एक प्रकार को श्गनपाउडरश कहा जाता है, क्योंकि इसकी पत्तियों को भी एक पैलेट के चारों ओर लपेटा जाता है, जो गनपाउडर की याद दिलाता है।

(iii) गट्टी चाय (Brick Tea)–घटिया किस्म की चाय की पत्तियों में चाय के डंठल मिलाकर निर्मित की जाने वाली चाय गट्टी चाय कहलाती है। इसके अलावा व्यापारिक दृष्टि से भारतीय चाय, चीनी चाय एवं संकर चाय को तीन भागों में भी विभाजित किया जाता है।

(iv) उलुंग चाय (Oolong Tea)– यह सेमी–ऑक्सीडाइज्ड या फर्मेटेड होती है, जिसमें काली और हरी चाय के मिले–जुले गुण होते हैं। इसे ऊलांग इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इसकी पत्तियाँ उस छोटे काले ड्रैगन की तरह दिखती हैं, जो गर्म पानी पड़ते ही जाग जाता है। यह उत्तर–पश्चिम ताइवान के बागों में मिलती है जिसका सर्वाधिक निर्यात संयुक्तराज्य अमेरिका को किया जाता है।

(v) पेराग्वे चाय (Paraguay Tea or Yerba Mate)–इसका उत्पादन पेराग्वे एवं ब्राजील में होता है। अब इसका उत्पादन एस्टेट (Estates) में हो रहा है। यह पेराग्वे, उरुग्वे, अर्जेन्टीना एवं दक्षिणी ब्राजील के लोगों का लोकप्रिय पेय है।

श्वेत चाय – यह एक दुर्लभ प्रकार की चीनी चाय है। इसमें पौधे की कुछ विशेष पत्तियों नको चुनकर ऑक्सीकरण को निष्क्रिय करने के लिए भाप दी जाती है या फिर भूना जाता है और उसके बाद सुखाया जाता है। पकाए जाने के अन्त में व्हाइट टी की पत्तियाँ खड़ी रहती हैं। दार्जिलिंग और असम में भी व्हाइट टी उगाई जाती है, पर उसका ज्यादातर हिस्सा निर्यात के काम आता है।

चाय उत्पादन की भौगोलिक दशाएँ (Geographical Conditions for Tea Cul& tivation)–

चाय एक ऐसा पौधा है जिसे उच्च तापमान के साथ–साथ तीव्र वर्षा की आवश्यकता होती है। अतः चाय का उत्पादन मुख्य रूप से उष्ण और उपोष्ण कटिबन्धीय जलवायु में किया जाता है।

(i) तापमान (Temperature)– चाय के उत्पादन हेतु 24° से 30° सेल्सियस वार्षिक तापमान की आवश्यकता होती है। लम्बे समय तक तीव्र गर्मी का मौसम चाय के विकास हेतु अधिक उपयुक्त माना जाता है। ओले और ठण्डी हवा के चलने से चाय का उत्पादन बहुत कम होता है।

(ii) वर्षा (Rainfall)–उच्च तापमान एवं तीव्र वर्षा वाले क्षेत्रों में चाय का तीव्र विकास होता है। सामान्यतया चाय के लिए वार्षिक वर्षा का औसत 150 से 250 सेमी. तक होना चाहिए। अधिक आर्द्रता, ओस एवं प्रातः काल में होने वाला कोहरा (थ्वह) चाय की पत्तियों के विकास हेतु उपयुक्त रहता है।

(iii) धरातल (Topography)– चाय के उत्पादन हेतु धरातल ढालयुक्त होना चाहिए। पानी के रुक जाने से चाय की जड़ें गलने लग जाती हैं। अतः इसी कारण चाय के अधिकांश बागान पहाड़ी ढालों पर लगाए जाते हैं।

(iv) मिट्टी (Soil)–चाय उत्पादन हेतु अधिक उपजाऊ, ह्यमस युक्त एवं आर्द्रता रखने वाली मिट्टी अधिक उपयुक्त होती है। अतः दोमट एवं चिकनी मिट्टी चाय उत्पादन हेतु अनुकूल मानी जाती है। मिट्टी को उपजाऊ बनाने हेतु चाय के लिए अधिकतम खाद की आवश्यकता होती है। इसके लिए सामान्यतः केल्सियम रहित अल्प मात्रा में अम्लीय मृदा सर्वाधिक उपयुक्त होती है।

(v) श्रमिक (Labour)– चाय उत्पादन की लगभग सभी क्रियाएँ श्रमिकों द्वारा ही की जाती हैं। मशीनों का उपयोग नगण्य होता है। चाय पौधों को उगाने, पत्तियाँ चुनने, सुखाने, दलने एवं डिब्बों में बन्द करने की सभी क्रियाएँ श्रमिकों द्वारा ही पूर्ण की जाती हैं।

(vi) छाया (Shade)–तीव्र सूर्य ताप तथा पवनों से बचाव के लिए छाया आवश्यक है।

चाय का विश्व में उत्पादन चाय उत्पादन का लगभग 71 प्रतिशत भाग दक्षिणी, दक्षिणी–पूर्वी एवं पूर्वी एशिया में स्थित देशों में किया जाता है। अफ्रीका महाद्वीप के पूर्वी भाग में स्थित देश चाय उत्पादन की दृष्टि से प्रमुख हैं।

(1) चीन–चीन विश्व का प्रथम वृहत्तम चाय उत्पादक देश बन गया है। यहाँ उत्पादित चाय के अधिकांश भाग का चीन में ही उपयोग हो जाता है। बहुत कम मात्रा में चाय शंघाई बन्दरगाह द्वारा निर्यात की जाती है। चीन के

पूर्व में स्थित समुद्र तटीय क्षेत्र यांग्टीसिक्यांग नदी की निचली घाटी, जेचवान बेसिन, सिक्यांग नदी की घाटी एवं एनहिनी, क्योंगसी, फुकिन क्षेत्र की उपजाऊ लाल मिट्टी के क्षेत्र प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं। यांग्टीसिक्यांग नदी के दक्षिण भाग में स्थित पहाड़ी ढालों पर चीन में चाय का सर्वाधिक उत्पादन होता है।

(2) भारत–वर्तमान में भारत विश्व का दूसरा बड़ा चाय उत्पादक देश बन गया है। भारत में चाय का उन क्षेत्रों में अधिक उत्पादन किया जाता है, जहाँ 200–300 सेमी. वर्षा हो। इसीलिए भारत के उन पहाड़ी क्षेत्रों में चाय की खेती की जाती है जहाँ 600 मीटर से 2500 मीटर की ऊँचाई के बाल होते हैं। चाय के लिए सिंचित मिट्टी जिसमें पोटाश, लौह तत्त्व एवं जैविक तत्त्वों की प्रधानता हो, आवश्यक है। इसमें भी अत्यधिक श्रम की आवश्यकता होती है क्योंकि निरन्तर देखभाल, पत्तियों को चुनना तथा झाड़ियों को निरन्तर कटाई सभी महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। चाय की कृषि के लिए असोम, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक एवं दक्षिण के कुछ पहाडी ढाल महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ दो प्रकार की चाय की पत्तियों का उत्पादन होता है–

(1) बोहेता (Bohet) (2) असमी चाय।

भारत में सन् 1840 में चाय की कृषि का प्रारम्भ हुआ। भारत में कुछ स्थान चाय की खेती के लिए प्रसिद्ध हैं। इसमें शिव सागर, कचार, लखीमपुर (असोम), पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग, कूचबिहार एवं पूर्णिया जिले, तमिलनाडु के अनाई, नीलगिरि, मदुराई जिले, केरल के त्रावनकोर, मालाबार जिले। हिमाचल प्रदेश का कांगडा जिला, उत्तराखण्ड के देहरादून एवं अल्मोडा एवं गढ़वाल जिले। भारत में चाय का उपभोग प्रतिव्यक्ति 410 ग्राम प्रतिवर्ष प्राप्त होता है जो अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है।

(3) कीनिया–विश्व में कुल चाय उत्पादन का 8.8 प्रतिशत भाग उत्पादित कर कोनिया तीसरा वृहत्तम चाय उत्पादन करने वाला देश है। कीनिया अपनी चाय उत्पादन का 75 प्रतिशत भाग अन्य देशों को निर्यात कर देता है। कोनिया की चाय का अधिकांश उत्पादन कैरीचो और लोमरू प्रदेशों के समीपवर्ती क्षेत्र में होता है।

(4) श्रीलंका–श्रीलंका का विश्व में चाय उत्पादन में चौथा एवं चाय के निर्यात करने में दूसरा स्थान है। श्रीलंका का मध्य एवं दक्षिणी पठारी क्षेत्र प्रमुख चाय उत्पादक देश हैं। श्रीलंका के कैण्डी प्रदेश एवं समीपवर्ती पेनीप्लेन क्षेत्र में चाय का उत्पादन 900–1300 मीटर की ऊँचाई पर स्थित पहाड़ी ढालों पर किया जाता है। यहाँ भारत से आए हुए लोग और श्रीलंका के आदिवासी लोग बागानों में श्रमिक का कार्य करते हैं।

(5) टर्की – टर्की का चाय उत्पादन की दृष्टि से विश्व में पाँचवां स्थान है। टर्की में काला सागर के तटवर्ती क्षेत्र, पश्चिमी भाग में स्थित पहाड़ी क्षेत्र प्रमुख चाय उत्पादन करने वाले क्षेत्र हैं।

(6) वियतनाम – वियतनाम विश्व का सातवाँ चाय उत्पादक देश बन गया है। यहाँ फ्रांसिसियों ने चाय की कृषि प्रारंभ की थी यहाँ फू हो (Phu Ho) फार्म में चाय के पौधों की नर्सरी है तथा फू–हो (फू–थो), बाउ लोक (Bao–Loc/Lam Dong), प्लेइकू (Pleiku) में चाय की कृषि के शोध संस्थान स्थापित किये। वियतनाम के उत्तर–पश्चिम प्रदेशों में सोन ला (Son La), लाई चाऊ (Lai Chau), डिन बेन (Dien Bien) प्रांतों में चाय की कृषि होती है। उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों में क्वांग निन्ह (Quang Ninh), लांग सोन (Long Son) एवं बेकजिआंग तथा उत्तरी मध्यभूमि में थाई न्यूयन (Thai Nguyen), फू थो, होउ बिन्ह (Hoa Binh) हनोई तथा उत्तरी मध्यवर्ती प्रदेश में चान्ह होअ, नोह एन व उच्च भूमि प्रदेश में लाम डोंग, गया लाई एवं कोन तुम प्रांतों में चाय की कृषि होती है।

(7) इण्डोनेशिया – इण्डोनेशिया का विश्व में चाय उत्पादन करने में सातवाँ स्थान है। चाय के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र जावा के पश्चिमी भाग में, सुमात्रा द्वीप के दक्षिणी–पूर्वी भाग में 800 से 1600 मीटर की ऊँचाई पर स्थित लावायुक्त मिट्टी के क्षेत्र में होता है। पर्याप्त वर्षा, समुचित तापमान, उपजाऊ मिट्टी एवं सस्ते श्रमिक आदि कारक यहाँ चाय उत्पादन में सहायक हैं।

(8) म्यांमार–म्यांमार में त्वांगपेंग (शान राज्य) जिले में होती है जो चीन के पून्नान के पड़ोस में है यहाँ ग्रीन टी होती है। दूसरा लाइपैट क्षेत्र है जहाँ व्यापारिक रूप में चाय का उत्पादन होता है।

(९) अर्जेन्टाइना–दक्षिण अमेरिका का यह देश प्रमुख चाय उत्पादक है। यहाँ प्रतिवर्ष लगभग 50 हजार टन

चाय का उत्पादन होता है जिसका अधिकतम भाग निर्यात कर दिया जाता है।

(10) जापान–विश्व में उत्पादित कुल चाय का 3.1 प्रतिशत चाय जापान में उत्पादित होती है। जापान में पहाड़ी ढालों पर सीढीनुमा खेत बनाकर चाय का उत्पादन किया जाता है। द्वीपीय स्थिति के कारण पर्याप्त वर्षा एवं तापमान, लावायुक्त उपजाऊ मिट्टी, सामान्य सुप्रवाहित पहाड़ी ढाल आदि उपयुक्त दशाएँ पायी जाती हैं। जापान में दक्षिणी होशू का शिजुओका (ैप्रनवां) क्षेत्र, उत्तरी क्यूशू और उत्तरी शिकोकू प्रमुख चाय उत्पादन करने वाले क्षेत्र हैं।

एशिया के अन्य देश–एशिया महाद्वीप में बांग्लादेश का सिलहट जिला, ईरान में एल्बुर्ज पर्वत के ढाल पर जो केस्पियन सागर के दक्षिणी भाग में है, ताइवान का ताईहोकु पहाड़ी क्षेत्र। थाइलैण्ड, पाकिस्तान, कम्बोडिया आदि अन्य चाय उत्पादक देश हैं।

अफ्रीका के पूर्व में स्थित देश–मलावी,युगाण्डा, मोजाम्बिक, तन्जानिया आदि देश पर्याप्त वर्षा एवं उच्च तापमान, उपजाऊ ढालयुक्त धरातल, सस्ते श्रमिक आदि उपयुक्त दशाओं के कारण छिटपुट मात्रा में चाय का उत्पादन करते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार – श्रीलंका की कुल निर्यात से प्राप्त आय का 52 प्रतिशत भाग चाय के निर्यात से ही प्राप्त होता है। श्रीलंका की अर्थव्यवस्था चाय निर्यात पर निर्भर है। भारत, श्रीलंका, कीनिया, इण्डोनेशिया, चीन, बांग्लादेश आदि चाय के प्रमुख निर्यातक देश हैं। इंग्लैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, कनाड़ा, ऑस्ट्रेलिया तथा यूरोपीय महाद्वीप के देश चाय का आयात करने वाले मुख्य देश हैं।

9.7 कहवा (COFFEE)

चाय की तरह कहवा का उपयोग भी एक पेय पदार्थ के रूप में किया जाता है। आधुनिक समय में इसका उपयोग तीव्र गति से बढ़ता जा रहा है। सर्वप्रथम कहवा अफ्रीका के पूर्वी भाग में स्थित इथियोपिया के पठारी भाग में स्थित केफा प्रान्त में एक वन्य झाड़ी के रूप में पाया गया जिसका उपयोग वहाँ के स्थानीय लोग करते थे। जहाँ से इसे लाल सागर होते हुए सऊदी अरब ले जाया गया। यहीं एक अरबवासी ने इसकी गुणवत्ता पहचानी। बाद में अरब के व्यापारियों ने वहाँ से लाकर अरब के यमन प्रदेश में लगाया। आज भी यमन का मोचा कहवा विश्व प्रसिद्ध है। अरब क्षेत्र से ही यह अन्य देशों में ले जाकर लगाया गया। वर्तमान समय में बड़े–बड़े बागानों में कहवे का उत्पादन किया जाने लगा है। सर्वप्रथम क्यारियों में पौध तैयार की जाती है। पौधों को फार्मों में पंक्तियों में लगाया जाता है। कहवे के पौधों को तेज धूप से बचाने के लिए केले जैसे छायादार पौधों को कड़वे के साथ लगाया जाता है। 6–7 वर्षों में कहवा का पौधा फल देश है। कहवा में कैफीन (Caffeine) नामक उत्तेजित तत्त्व पाया जाता है। अतः इसके उपयोग है शरीर में कुछ समय के लिए स्फूर्ति आ जाती है। कहवा 9 मीटर तक बड़ा होता है लेकिन व्यापारिक कृषि की दृष्टि से इसे 1.5 से 2.5 मीटर तक ही रखा जाता है।

कहवा की किस्में (Types of Coffee)–व्यापारिक दृष्टि से निम्न तीन किस्में प्रमुख है–

(i) अरेबिका (।rabic)–विश्व में उत्पादित कहवा का 3/4 भाग इसी किस्म से प्राण होता है। यह सबसे अच्छा कहवा होता है जो देशज मोचा कहवा से बनता है। यह अरब प्रायद्वीः के अतिरिक्त ब्राजील व पूर्वी अफ्रीकी देशों में होता है।

(ii) रोबस्टा (Robust)–यह पश्चिमी अफ्रीकन किस्म है जो कठोर होती है, में शुष्क दशाओं में ही पनपता है। इसका अधिकतम उत्पादन कांगो में होने के कारण इसे कांग कहवा भी कहते हैं। कुल कहवा उत्पादन का 20 प्रतिशत भाग इससे प्राप्त होता है।

(iii) लाइबेरिका (Liberic)– यह अन्य दो किस्मों से घटिया किस्म का होता है। कुल कहवा उत्पादन का लगभग 15 प्रतिशत इससे प्राप्त होता है। यह किस्म लाइबीरिया की मूल किस्म है।

कहवा उत्पादन की भौगोलिक दशाएँ (Geographical Conditions for Coffee Cultivation) – कहवा उत्पादन हेतु पर्याप्त वर्षा एवं उच्च तापमान आवश्यक होता है। यह उष्ण कटिबन्धीय जलवायु का एकसदाबहार पौधा है, जिसका उत्पादन 25° उत्तर से 25° दक्षिण अक्षांशों के मध्य स्थित क्षेत्रों में किया जाता है। कहवे का उत्पादन 800–1800 मीटर ऊँचाई युक्त पहाड़ी ढालों पर किया जाता है।

(i) तापमान (Temperature) कहवा उत्पादन हेतु न्यूनतम तापमान 17° सेण्टीग्रेड तथा अधिकतम 32° सेण्टीग्रेड होना चाहिए। वार्षिक औसत तापमान 21° से. होना चाहिए। अधिकतम धूप से भी पौधा नष्ट हो जाता है। अतः कहवा के पौधों के साथ–साथ छायादार वृक्ष लगाए जाते हैं। यमन में भारी सागरीय कुहरा धूप से रक्षा करता है। इसके लिए उष्ण वर्षा ऋतु तथा शुष्क शीत ऋतु उपयुक्त है।

(ii) वर्षा (Rainfall)–कहवा के विकास हेतु 150 से 250 सेमी. वर्षा उपयुक्त रहती है। 125 सेमी. से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सिंचाई की सहायता से उत्पादन किया जाता है। ताजा हवा तथा प्रकाश से कहवे के पौधे की वृद्धि तीव्र गति से होती है।

(iii) मिट्टी (Soil)–कहवा के उत्पादन से गहन उपजाऊ लोहांश तत्त्व युक्त मिट्टी की आवश्यकता होती है। जंगलों को काटकर तैयार की गई भूमि या लावायुक्त काली मिट्टी कहवा उत्पादन हेतु उपयुक्त मिट्टी होती है।

(iv) धरातल (Topography)–कहवे का उत्पादन पहाड़ी ढालों पर किया जाता है ताकि वर्षा का जल जड़ों में इकट्ठा न हो सके। यह धरातल 600 से 1800 मीटर तक की ऊँचाई बाल होता है। जल के एकत्रीकरण से पौधे की जड़ें गलने लगती हैं। अतः ढाल युक्त पठारी भाग उपयुक्त होता है।

(v) श्रम (Labour)–पौधों को काटने, फल तोड़ने, बीज निकालने, धोने, धूप में सुखाने आदि सभी क्रियाएँ मनुष्य द्वारा हो की जाती हैं। अतः कहवे के उत्पादन हेतु अधिक सस्ते श्रमिकों की आवश्यकता होती है।

उत्पादित कहवे को बाजार में पहुँचाने हेतु परिवहन के साधन और उपभोग की माँग भी कहवे के उत्पादन को प्रभावित करती है।

कहवा का उत्पादन – विश्व में कहवे के प्रमुख उत्पादक देश ब्राजील, कोलम्बिया, मेक्सिको, इण्डोनेशिया, वियतनाम, इथियोपिया, युगाण्डा आदि हैं।

ब्राजील – ब्राजील कहवा उत्पादन में विश्व का प्रथम वृहत्तम उत्पादक देश है। ब्राजील में कहवा के उत्पादन हेतु उत्तम जलवायु, परिवहन की समुचित व्यवस्था, लावा निर्मित उपजाऊ मिट्टी, व्यापारिक हवाओं के द्वारा पर्याप्त वर्षा आदि अनुकूल दशाएँ पायी जाती हैं। ब्राजील की ज्वालामुखी मृदा जिसे स्थानीय भाषा में टेरारोसा (Terra Rossa or Terra RoÛa) कहते हैं, कहवा के लिए अत्यधिक उपयुक्त है। यह मृदा लाल, बैंगनी रंग की होती है। पुर्तगाली भावा ■ Rossa का अर्थ है, बैंगनी। इसका विस्तृत जमाव साओपोलो राज्य में मिलता है।

ब्राजील के प्रमुख कहवा उत्पादक क्षेत्र

(i) साओ पॉलो एवं मिनास गेरास राज्य–ब्राजील के दक्षिणी भाग में स्थित इन राज्यों से ब्राजील के कुल कहवा उत्पादन का 70 प्रतिशत कहवा उत्पादित होता है। यहाँ कहवा का उत्पादन 300–915 मीटर की ऊँचाई पर पठारी एवं पहाड़ी ढालों पर होता है। बड़े–बड़े निजी कृषि फार्मों में विस्तृत बागान लगे हुए हैं। इन कहवे के बड़े–बड़े बागानों को ब्राजील में फैजेण्डा (Fazend) कहा जाता है। यहाँ दक्षिणी पूर्वी व्यापारिक हवाओं से पर्याप्त वर्षा होती है। उपजाऊ मिट्टी पायी जाती है। पठारी ढालों के कारण ठण्डी हवाओं से रक्षा हो जाती है।

(ii) परगना राज्य का उत्तरी भाग, रियो द जनेरो का समुद्र तटीय क्षेत्र एवं एस्पीरिटोसेटो राज्य आदि।

(iii) ब्राजील के उत्तर में बहिया राज्य का दक्षिणी भाग, ब्राजील के पश्चिम में स्थित गोइआज राज्य का पूर्वी भाग भी प्रमुख कहवा उत्पादक देश है।

वियतनाम – वियतनाम विश्व का दूसरा बड़ा कहवा उत्पादक देश बन गया है जहाँ सर्वप्रथम फ्रेंच लोगों द्वारा सन् 1857 में कहवा के बागान लगाये गये। बुऑन मा थोउट (Boon Ma Thout) पठार प्रदेश काफी उत्पादन का प्रमुख क्षेत्र है। यहाँ वियतनाम युद्ध के दौरान काफी विनाश हो गया था। वियतनाम के मध्यवर्ती प्रदेश में डकलक, गिआलाई, कोंटुम, लामडोंग तथा दक्षिण पूर्व भाग में डोंग नाई, रिआवुतंताऊ एवं बिन्ह फुओक प्रमुख कहवा उत्पादक क्षेत्र हैं जहाँ 97 प्रतिशत रोबृस्टा कॉफी होती है।

कोलम्बिया कहवा उत्पादन में कोलम्बिया का विश्व में वियतनाम के बाद तीसरा स्थान हो गया है। कोलम्बिया में अनुकूल भौगोलिक दशाओं के पाए जाने के कारण प्रति हैक्टेयर उत्पादन भी अधिक होता है। कोलम्बिया में कहवे

का उत्पादन छोटे–छोटे फार्मों पर पश्चिमी भाग में 760 से 1980 मीटर की ऊँचाई पर किया जाता है।कुल उत्पादन का तीन–चौथाई भाग मेग्डालेना तथा उसकी सहायक नदियों की घाटियों के ऊँचे कगारों पर, पूर्वी कार्डिलेरा क्षेत्र में स्थित काठका घाटी केक बुकरामंगा एवं बगोटा क्षेत्र में होता है। कोलम्बिया के आन्तरिक भाग में कृषक छोटे–छोटे खेतों में कहवे का छिटपुट उत्पादन करते हैं। यहाँ मेडेलिन, मेनीजेल्स तथा तोलिमा प्रमुख कहवा उत्पादक केन्द्र हैं। इनके अलावा वेनेजुएला, इक्वेडोर एवं दक्षिणी अमेरिका के अन्य कहवा उत्पादक देश हैं।

मध्य अमेरिका – मध्य अमेरिका में स्थित देश मैक्सिको, ग्वाटेमाला, एल. साल्वेडोर, होंडुरास, निकारागुआ, पनामा एवं कोस्टारिका कुल कहवा उत्पादन का 15 प्रतिशत उत्पादन करते हैं। यहाँ अनुकूल भौगोलिक दशाओं के पाए जाने के कारण उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। अधिकतम उत्पादन आन्तरिक क्षेत्र में स्थित पठारी एवं पहाड़ी भागों में तथा प्रशान्त महासागर के तट पर स्थित पर्वत के ढालों पर किया जाता है। यहाँ कहवे के बड़े–बड़े फार्म यूरोपियन कृषकों के हाथों में हैं। उत्पादन का अधिकतम भाग निर्यात कर दिया जाता है। कैरेबियन प्रदेश में स्थित डोमिनिकन रिपब्लिक, जमैका (ब्लू माउण्टेन) एवं हैटी, प्यूर्टोरिको में भी कहवे का उत्पादन होता है। इन देशों में पाये जाने वाले पर्वतों एवं पठारी भागों में कहवे का उत्पादन किया जाता है।

अफ्रीका – अफ्रीका महाद्वीप में स्थित देश विश्व के कहवा उत्पादन का लगभग 33 प्रतिशत उत्पादित करते हैं। यहाँ प्रमुख कहवा उत्पादक देश आइवरी कोस्ट (2.1:) इथियोपिया (3.4:), यूगांडा (2.4:), कीनिया (1.1:) आदि हैं जो अफ्रीका के पूर्वी भाग में पठारी एवं पहाड़ी ढालों पर पाए जाते हैं। अफ्रीकी देशों में उत्पादित अरेबिका किस्म का कम तथा लाइबेरिया एवं रोबस्टा किस्म का उत्पादन अधिक है। यहाँ छोटे–छोटे कृषि फार्मों पर मानवीय न श्रम की सहायता से कहवे का उत्पादन किया जाता है। इनके अतिरिक्त केमरुन (1.1:), मेडागास्कर (0.9:) व तंजानिया (0.8:) में कहवा उत्पादन होता है।

इण्डोनेशिया – यह देश विश्व में कहवा उत्पादन की दृष्टि से चौथा वृहत्तम उत्पादक देश कर्म है। जावा और सुमात्रा द्वीप प्रमुख कहवा उत्पादक प्रदेश हैं। यहाँ 500 से 1600 मीटर की ऊँचाई । पर पहाड़ी ढालों पर लावा मिट्टी है जो कहवा की दृष्टि से गहन उपजाऊ मिट्टी है। यहाँ उच्च में कोटि के कहवे का उत्पादन किया जाता है। यहाँ का जावा कहवा प्रसिद्ध है।

भारत–भारत में सर्वप्रथम कहवे का उत्पादन कर्नाटक में एक पहाड़ी पर मक्का (Macca) के एक मुस्लिम संत बाबा बूदन द्वारा किया गया। उसी के नाम पर आज इस क्षेत्र को बाबा बूदन की पहाड़ी कहते हैं। यहाँ विश्व के कुल कहवा उत्पादन क्षेत्र का 2 प्रतिशत क्षेत्र पाया जाता है। भारत में उत्पादित कहवे का 99 प्रतिशत भाग कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु में होता है जिसका 70 –प्रतिशत उत्पादन अकेले कर्नाटक राज्य की पहाड़ियों पर किया जाता है। आन्ध्र प्रदेश में वर्तमान समय में सरकारी सहयोग की सहायता से फार्मों पर कहवे का उत्पादन किया जा रहा है।

यमन अरब प्रायद्वीपीय के दक्षिणी–पश्चिम भाग में स्थित यमन कहवा उत्पादन विश्व यमन अयान रखता है। यहाँ लाल सागर के तटीय भाग में स्थित पहाड़ियों पर 300 विश् मीटर की ऊँचाई पर स्थित ढालों पर कहवे का उत्पादन किया जाता है। यमन का बोत्र कहवा विश्व प्रसिद्ध है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार – कहवे का अधिकांश उत्पादन विकासशील देशों में होता है। अ निर्यात का 95 प्रतिशत कहवा विकासशील देशों से प्राप्त होता है। कुल निर्यात का 31 प्रतिशत ब्राजील, कोलम्बिया से प्राप्त होता है। अफ्रीकी देश, मध्य अमेरिका एवं इण्डोनेशिया प्रमु निर्यातक देश हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका मुख्य कहवा उत्पादक देश है। जापान, यूरोपियन प्रमुख आयात करने वाले देश हैं।

9.8 कपास (COTTON)

कपास एक रेशेदार फसल है जिसका उपयोग वस्त्र निर्माण करने में किया जाता है। अतः यह एक औद्योगिक फसल है। कपास के वस्त्र, बिस्तर, सज्जा के कपड़े आदि बनाए जाते हैं। कपास का उद्‌गम स्थान भारत को माना जाता है। पुराने अवशेषों के अनुसार आज से लगभग 3000 वर्ष पूर्व से भारत में कपास का उत्पादन किया जा रहा है। भारत से ही कपास के पौधों को चीन, मिस्त्र आदि देशों में स्थानान्तरित किया गया। कपास उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में उत्पादित होने वाला पौधा है। इसका अधिकतम उपयोग सूती वस्त्रों के निर्माण

में किया जाता है।

कपास की किस्में (Kinds of Cotton)—कपास के रेशे की लम्बाई, रंग, आकार और उसके गुणों के आधार पर इसे तीन किस्मों में विभाजित किया जाता है—

(i) लम्बे रेशे वाली कपास (Long Staple Cotton)— रेशे की लम्बाई 3 से 6.25 सेमी. तक पायी जाती है। यह सर्वोत्तम उच्च कोटि की कपास है। इसे द्वीपीय कपास (प्संदक ब्वजजवद) भी कहते हैं। यह चमकदार होती है। इसका अधिकतर उत्पादन संयुक्त राज्य अमेरिका और मिस्र में होता है।

(ii) मध्यम रेशे वाली कपास (डमकपनउ ैजंचसम ब्वजजवद)—कपास के रेशे की लम्बाई 2.20 से 3 सेमी. तक होती है। अधिक चमकीली होने के कारण इसे रेशम के साथ मिश्रित करके कपड़ों का निर्माण किया जाता है। इसे शमिस्त्री कपासश भी कहते हैं।

(iii) छोटे रेशे वाली कपास (Short Staple Cotton)—यह घटिया किस्म की कपास होती है जिसके रेशे की लम्बाई 2 सेमी. से कम पायी जाती है।

कपास उत्पादन की भौगोलिक दशाएँ (Geographical Condition for Cotton Cultivation)— कपास की फसल का उत्पादन उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में किया जाता है। इसके विकास हेतु अधिकतम तापमान की आवश्यकता होती है। अतः कपास का उत्पादन 40° उत्तर से 30° दक्षिण अक्षांशों के मध्य किया जाता है। कपास गॉसिपियम (Gossypium) नामक पौधे का वंशधर माना जाता है जो एक झाड़ीनुमा पौधा होता है।

(i) तापमान (Temperature) कपास उत्पादन हेतु औसत तापमान 200 से 250 से. होना चाहिए। बीज बोते समय 20° से. तथा पकते समय क्रमिक वृद्धि होकर 250 से 30° से. तापमान होना चाहिए। कपास उत्पादन हेतु 200—210 दिन पाला रहित मौसम होना चाहिए। अन्यथा इसमें बॉल विविल नामक रोग लग जाता है। इसके फूलों के पकते समय स्वच्छ आकाश, तेज धूप आवश्यक है ताकि अधिक चमकदार कपास का उत्पादन हो सके।

(ii) वर्षा (Rainfall) कपास उत्पादन हेतु औसत वर्षा 75 से 100 सेमी. होनी चाहिए। 75 सेमी. से कम वर्षा होने पर सिंचाई की आवश्यकता होती है। रात्रि में होने वाली वर्षा कपास के पौधे के विकास में अधिक उपयुक्त मानी जाती है। समुद्र की ओर से चलने वाली स्वच्छ वायु कपास पौधों के विकास में अधिक लाभदायक है।

(iii) मिट्टी (Soil)—कपास उत्पादन हेतु गहन उपजाऊ मिट्टी की अधिक आवश्यकतां होती है। चूने के अंशयुक्तलावा निर्मित काली मिट्टी अधिक उपयुक्त रहती है।

(iv) धरातल (Topography)—व उत्पादन हेतु समतल और सुप्रवाहित धरातल होना चाहिए। कपास का अधिकतम उत्पादन मशीनों की सहायता से बड़े—बड़े कृषि फार्मों पर किया जाता है। अतः पानी के समुचित रूप से रुकने, परिवहन आदि क्रियाओं हेतु समतल धरातल होना चाहिए।

(v) उर्वरक (Fertilizer)—कपास के उत्पादन द्वारा मिट्टी के अधिकांश पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। अतः फसल उत्पादन के लिए मिट्टी को उपजाऊ बनाए रखने हेतु हड्डी की खाद, खली खाद, गोबर की खाद, अमोनियम सल्फेट एवं यूरिया आदि उर्वरकों का अधिकतम उपयोग किया जाता है।

(vi) श्रमिक (Labour)—कपास उत्पादन हेतु खेत तैयार करने, फसल बोने, निराने, सींचने तथा कपास की फसल पकने पर डोंडों की चुनाई का कार्य आदि सभी क्रियाएँ मनुष्य द्वारा ही की जाती हैं। अतः कपास उत्पादन हेतु सस्ते एवं अधिक मात्रा में श्रमिकों की आवश्यकता होती है।

कपास की निम्नलिखित चार व्यापारिक प्रजातियाँ होती हैं—

1. गोसीपियम हिसूंटम (Gossypium Hirsutum) यह किस्म मध्य अमेरिका, मैक्सिको, फ्लोरिडा एवं कैरिबियन देशों की एक देशज या मूल प्रजाति है।
2. आर्बोरियम या वृक्ष कपास (Arborium or Tree Cotton)— यह भारत एवं पाकिस्तान में बोयी जाती है।

3. बायेंडिब्सी या मिश्री (Barbadebse or Creole or Egyptian Cotton) यह दक्षिणी अमेरिकी प्रजाति है।

4. हर्षेसियम कपास (Hebaceum or Levantine Cotton) यह दक्षिण अफ्रीका एवं मध्य पूर्व में बोयी जाती है।

कपास का विश्व में उत्पादन

चीन – चीन 1980 से पूर्व कपास उत्पादन में विश्व में तीसरे स्थान पर था लेकिन 1980 के बाद कपास के उत्पादन में चीन ने तीव्र गति से वृद्धि की है। 2017–18 में चीन विश्व में द्वितीय वृहत्तम कपास उत्पादक देश बन गया है। 2017–18 में चीन में कपास का कुल उत्पादन 59.87 लाख मीट्रिक टन हुआ जिसका अधिकांश भाग निम्न क्षेत्रों में उत्पादित हुआ–

(i) मध्य–पूर्वी प्रदेश–चीन के मध्य–पूर्वी भाग में स्थित यांग्टीसिक्यांग नदी की घाटी के मध्य भाग में स्थित हेंकाऊँ क्षेत्र, नदी का डेल्टाई भाग, शंघाई के उत्तरी भाग में स्थित समुद्र तटीय क्षेत्र जहाँ नमक युक्त कपास उत्पादक मिट्टी पायी जाती है।

(ii) उत्तरी क्षेत्र–चीन के उत्तरी भाग में हांग्हो नदी एवं उसकी सहायक वाई नदी की घाटी में जहाँ उपजाऊ काँप मिट्टी पायी जाती है।

(iii) चीन का पश्चिमी भाग।

(iv) विक्यांग क्षेत्र में जहाँ सिंचाई द्वारा कपास का उत्पादन किया जाता है।

भारत –कपास उत्पादन करने वाले क्षेत्रों में महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, पंजाब, गुजरात, तमिलनाडु, कर्नाटक एवं राजस्थान है। कपास भी अधिक श्रम चाहने वाली पैदावार है। वर्तमान में कपास का सर्वाधिक क्षेत्र महाराष्ट्र में है क्योंकि यहाँ की काली मिट्टी कपास के लिए अधिक उपयुक्त है।देश में वर्तमान में 62.05 लाख टन कपास का उत्पादन हुआ है एवं उत्पादन की दृष्टि से भी महाराष्ट्र प्रथम स्थान रखता है। कपास की खेती में निरन्तर देखभाल की आवश्यकता होती है। इसलिएसे हर स्थान पर उत्पादित नहीं किया जा सकता है। वर्तमान में औसत उत्पादन 321 कि. ग्रा. प्रति हैक्टेयर है। परन्तु पंजाब प्रथम स्थान पर है जिसका प्रमुख कारण आधुनिक सुविधाओं के साथ निरन्तर इस क्षेत्र में सिंचाई की सुविधाएँ प्राप्त करना है।

संयुक्त राज्य अमेरिका – संयुक्त राज्य अमेरिका में विगत दो–तीन दशकों में कपास उत्पादन निरन्तर कम हुआ है क्योंकि यहाँ की कपास की पेटी में मृदा अवनयन होने के साथ ही सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन भी आये हैं। इस कारण वर्तमान में कपास उत्पादन की दृष्टि से संयुक्त राज्य अमेरिका तीसरे स्थान पर आ गया है। 2017–18 में यहाँ 45.55 लाख मीट्रिक टन कपास का उत्पादन हुआ। यहाँ प्रमुख कपास उत्पादक क्षेत्र निम्न हैं–

(i) दक्षिणी–पूर्वी भाग–वर्जीनिया राज्य के दक्षिणी भाग से पश्चिमी टेक्सास तथा ओक्लाहोमा राज्यों के मध्य भाग में स्थित क्षेत्र कपास उत्पादन में विश्व में प्रसिद्ध प्रदेश हैं। इसे कपास की पेटी (ब्वजजवद ठमसज) कहते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थित कपास की पेटी को उत्तरी सीमा 37° उत्तरी अक्षांश तक है, जहाँ 200 दिन पालामुक्त रहते हैं, इसकी दक्षिणी एवं पूर्वी सीमा एवं पश्चिमी सीमा 50 सेमी. वार्षिक वर्षा द्वारा निर्धारित होती है। कपास की पेटी का विस्तार संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिण–पूर्वी भाग में समुद्र तटीय क्षेत्र, पर्वतीय क्षेत्र, टेन्नेसी घाटी, मिसिसीपी द्वारा निर्मित काँप मिट्टी का मैदान, टेक्सास, आक्लाहोमा आदि क्षेत्रों में पाया जाता है।

(ii) फ्लोरिडा का उत्तरी भाग तथा वर्जीनिया का दक्षिणी भाग।

(iii) पश्चिमी क्षेत्र–संयुक्त राज्य अमेरिका के पश्चिमी भाग में अनुकूल भौगोलिक दशाओं के पाए जाने के कारण कपास के उत्पादन का एक नवीनतम क्षेत्र है। यहाँकैलिफोर्निया में स्थित सान ज्वेकिन एवं इम्पीरियल घाटी, एरिजोना, न्यूमैक्सिको के मध्य एवं दक्षिणी भाग में स्थित क्षेत्र प्रमुख कपास उत्पादक देश हैं।

पाकिस्तान– पाकिस्तान कपास उत्पादन में विश्व में पाँचवाँ वृहत्तम देश है। प्रमुख कपास उत्पादक क्षेत्र लायलपुर, माँटगुमरी, मुल्तान, लाहौर, शेखपुर, सक्खर आदि क्षेत्रों में सिन्धु तथा उसकी सहायक नदियों से निकाली गई नहरों द्वारा प्राप्त जल से सिंचाई करके कपास का उत्पादन किया जाता है। यहाँ कपास का प्रति हैक्टेयर उत्पादन

552 किग्रा. होता है जो भारत से अधिक है।

रूस एवं स्वतन्त्र राष्ट्र–रूस का कपास उत्पादन की दृष्टि से विश्व में प्रमुख स्थान रहा है। यहाँ प्रमुख कपास उत्पादक क्षेत्र अग्र हैं–

(i) यूक्रेन का दक्षिणी भाग एवं क्रिमिया क्षेत्र

(ii) कॉकेशस पर्वत का पूर्वी तथा पश्चिमी भाग जहाँ सिंचाई की सहायता से कपास का उत्पादन किया जाता है।

(iii) मध्य एशिया के दक्षिणी–पश्चिमी भाग में स्थित दक्षिणी कजाखस्तान, उज्बेकिस्तान, (फरगना घाटी) तुर्कमेनिस्तान का दक्षिणी–पूर्वी भाग आदि।

ब्राजील–विश्व में कपास उत्पादन की दृष्टि से ब्राजील का चौथा स्थान है। प्रमुख कपास उत्पादक क्षेत्र ब्राजील के समुद्र तटीय भाग में स्थित है। ब्राजील में उत्पादित कपास का 50 प्रतिशत भाग इसके उत्तरी–पूर्वी भाग में स्थित पेरानाम्बुकों एवं बहिया राज्यों के समुद्र तटीय क्षेत्र में होता है। दूसरा प्रमुख कपास उत्पादक क्षेत्र मिनास–गेरास एवं साओपोलो राज्यों में स्थित है।

टर्की–टर्की कुल उत्पादित कपास का 33 प्रतिशत भाग टर्की निर्यात कर देता है। इजमिट एवं अदाना क्षेत्र प्रमुख कपास उत्पादक क्षेत्र हैं।

मिस्त्र –मिस्र में उत्पादित लम्बे रेशे वाली कपास अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में सुप्रसिद्ध मानी जाती है। मिस्त्र में कपास के उत्पादन का सम्पूर्ण क्षेत्र नील नदी के डेल्टाई भाग, मध्य एवं निचली घाटी में नील के जल से सिंचाई द्वारा होता है। निर्यात की वस्तुओं में कपास का मिल में प्रमुख स्थान है। यहाँ विश्व में उत्पादित कपास के 1.2 प्रतिशत कपास का उत्पादन होता है।

मैक्सिको – विश्व में कपास उत्पादन की 1.1 प्रतिशत कपास का उत्पादन मैक्सिको में होता है।यहाँनदियों द्वारा लाई गई काँप मिट्टी में कपास का अधिकतम उत्पादन होता है। मुख्य उत्पादक क्षेत्र निम्न हैं–

i- कोलोरेडो नदी का डेल्टाई क्षेत्र जहाँ काँप मिट्टी पायी जाती है।

ii- रियो ग्रांडे नदी का मध्य निचली घाटी क्षेत्र

iii- आन्तरिक पठारी क्षेत्र

iv- पश्चिम में स्थित समुद्र तटीय क्षेत्र

सूडान – यहाँ सर्वप्रथम 1890 में पूर्वी सूडान के टोकर डेल्टा में कपास की कृषि प्रारंभ की गई थी। सूडान में कपास का उत्पादन नील नदी के ऊपरी घाट में होता है। नील नदी से प्राप्त जल से सिंचाई द्वारा उत्तम किस्म की कपास का उत्पादन किया जाता है। यह वर्तमान में उत्तरी सूडान में है। सूडान का गेजिश मैदान यहाँ का प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है। इनके अलावा सीरिया, ईरान, पेरू, अर्जेन्टाइना, निकारागुआ, ग्वाटेमाला, युगांडा, तंजानिया, मोजाम्बिका, जायरे, स्पेन तथा ग्रीस अन्य प्रमुख कपास उत्पादक देश हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार –विश्व में उत्पादित कुल कपास से लगभग 33 प्रतिशत भाग विश्व के विभिन्न देशों केमध्य व्यापार होता है। संयुक्त राज्य, पाकिस्तान, मिस्र, टर्की, उत्तरी सूडान, ब्राजील आदि देश कपास के प्रमुख निर्यातक देश हैं जो यूरोपीय एवं एशियाई देशों की माँग की पूर्ति करते हैं। पश्चिमी यूरोपीय देश तथा जापान आदि प्रमुख आयातक देश हैं। कोरिया, हांगकांग, जापान, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड आदि देशों में सूती वस्त्रों के उत्पादन में वृद्धि के कारण आधुनिक समय में कपास के प्रमुख आयातक बन गए हैं। भारत उत्तम किस्म की लम्बे रेशे वाली कपास का आयात करता है, लेकिन छोटे रेशे वाली कपास का विभिन्न देशों को निर्यात करता है।

9.9 सारांश

फसल किसी भी अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करते है। विश्व में फसलों के उत्पादन उस राष्ट्र को प्रगति को प्रदर्शित करते है। प्रमुख फसलों के अन्तर्गत चावल, मक्का, चाय, कहवा एंव कपास का प्रमुख रूप से

अध्ययन किया है। विश्व की अर्थव्यवस्था में प्रमुख रुप से इन फसलों का योगदान है, जो विश्व के अलग– अलग क्षेत्रों में जलवायु के अनुरुप उत्पादित की जाती है। फसलों की खेती के लिए सस्ता एंव प्रचुर श्रम बकु की आवश्यकता होती है।

9.10 बोध प्रश्न

1– जूट के उगने की आवश्यक दशाओं तथा प्रमुख उत्पादक क्षेत्रों का विवरण दीजिए ।

2– चाय /कहवा के लिए आवश्यक दशाओं, उत्पादन क्षेत्रों दीजिए तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विवरण ।

3– चावल, एंव मक्का के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का तुलनात्मक विवरण दीजिये ।

4– चावल की खेती के लिए आवश्यक दशाओं तथा विश्व के प्रमुख उत्पादन क्षेत्रों का विवरण दीजिए ।

बहु विकल्पीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न–1. विश्व में चावल का वृहत्तम उत्पादक देश है ?

(अ) संयुक्त राज्य अमेरिका **(ब)** इंडोनेशिया

(स) भारत **(द)** चीन

प्रश्न–2 एशिया का चावल का कटोरा है –

(अ) बांग्लादेश **(ब)** थाइलैण्ड

(स) श्रीलंका **(द)** इन्डोनेशिया

9.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1 सिंह, जगदीश, एवं सिंह, के.एन.(2010) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।

2 मौर्य, एस. डी. (2022), आर्थिक भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज।

3 श्रीवास्तव, वी.के. एवं राव, बी.पी. (2002), आर्थिक भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।

4 गौतम, अलका, (2019) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।

5 अलेक्जेंडर, जे.डब्लू. (1979) इकोनॉमिक ज्योग्राफी, प्रेंटिस हाल।

6 लांगमैन, जी.सी. एण्ड मार्गन, जी.सी. (1982) हयूमन एण्ड इकोनॉमिक ज्योग्राफी,आक्सफोर्ड प्रेस।

इकाई–10 विश्व के कृशि प्रदेश, एवं उनकी विशेशताएं

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 विश्व के कृषि प्रदेश

10.3.1चलवासी पशुचारण प्रदेश

10.3.2.व्यापारिक पशुपालन प्रदेश

10.3.3प्रारंभिक जीवन निर्वाह कृषि प्रदेश

10.3.3.1 स्थानांतरणशील कृषिव्यवस्था

10.3.3.2 प्रारंभिक स्थाई कृषिव्यवस्था

10.3.3.3 गहन जीविकोपार्जन कृषिव्यवस्था

10.3.3.3.1 चावल प्रधान जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था

10.3.3.3.2 चावल विहीन जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था

10.3.4 व्यापारिक पादप रोपण कृषि

10.3.5. भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश

10.3.6 व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन कृषि प्रदेश

10.3.7. व्यापारिक शस्य एवं पशु उत्पाद मिश्रित कृषि प्रदेश

10.3.8. व्यापारिक दूध पशुपालन कृषि प्रदेश

10.3.9. जीविकोपार्जन एवं उत्पाद कृषि प्रदेश

10.3.10.विशिष्टकृत प्रधान उद्यान कृषि प्रदेश

10.4. सारांश

10.5. बोध प्रश्न

10.6 संदर्भ ग्रंथ

10.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में विश्व के कृषि प्रदेश का वर्णन किया गया है किसी प्रदेश का उद्‌भव सीमांकन सामान्यतः उसकी विशेषताओं पर ही निर्भर होता है कृषि प्रदेश का निर्धारण अनेक चरों पर ही निर्भर है जैसे कृषि पद्धति फसलों की बुवाई फसलों के चयन में रुचि जुताई का प्रतिरूप फसल प्रतिरूप फसल चक्र सिंचाई की प्रविधि कृ षकों की मनोदशा कृषक की सूची प्रशिक्षण कृषकों की धार्मिक मान्यताएं बाजार सरकारी नीति सामाजिक आर्थिक विकास प्राकृतिक कारक जैसे संरचना उच्चावच, मृदा,ढाल, सूर्यातप, तापमान, पवन, चक्रवात, वर्षा, मेघ, कोहरा आदि अनेक ऐसे कारक हैं जिस पर कृषि कार्य निर्भर है इन्हीं कारकों के आधार पर उसी प्रदेश का सीमांकन भी किया जाता है। विश्व कृषि प्रदेश का सीमांकन हंटिंगटन, एलबम धामन, कोस्टरोविकी, ऐडम्स रैकेट, कवाची गोल्ड, टेबलेट आदि विद्वानों ने किया है। विद्वान हिव्टीलसी ने 1936 में पांच आधार पर विश्व को 13 कृषि प्रदेशों में विभाजित किया है। चलवासी पशुचारण प्रदेश, व्यापारिक पशुपालन प्रदेश, स्थानांतरण शील कृषि पशुचारण प्रदेश, व्यापारिक पशुपालन प्रदेश, स्थानांतरणशील कृषि प्रदेश, प्रारंभिक स्थाई कृषि प्रदेश, चावल प्रधान गहन जीविकोपार्जन कृषि प्रदेश, व्यापारिक पादप रोपण कृषि प्रदेश, भूमध्यसागरीय कृषि व्यवस्था व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन कृषि प्रदेश, व्यापारिक एवं पशु उत्पाद अथवा मिश्रित कृषि प्रदेश, जीविकोपार्जन एवं उत्पाद कृषि प्रदेश, व्यापारिक दुग्ध पशुपालन कृषि प्रदेश, विशिष्ट उद्यान कृषि प्रदेश। इस इकाई के अध्ययन से इस बात की समझ

विकसित होती है कि विश्व के किस किस क्षेत्र में कौन–कौन सी फसलों को उगाया जाता है और यह भी ज्ञान हो जाता है कि वहां का आर्थिक स्तर क्या है वहां पर निवास करने वाले जनता की आर्थिक सामाजिक राजनीतिक मनोदशा कैसी है और वहां पर जीवन स्तर क्या है मध्यम स्तर निम्न स्तरीय उच्च स्तर का जीवन है या नहीं है और किस क्षेत्र में कौन सी फसल उगाई जाती है वहां के लोगों का भोजन में उस फसल की उपयोगिता क्या है इस आधार पर उनका स्वास्थ्य उनका शारीरिक संरचना शारीरिक सौष्ठव कार्यक्षमता भी स्पष्ट हो जाती है इस इकाई के अध्ययन से हम किसी क्षेत्र की अन्य तत्वों की जानकारी प्राप्त कर लेते हैं

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित बिंदुओं को समझा जा सकता है .

1 यह जान सकेंगे कि विश्व में कृषि प्रदेश कितने हैं?

2 इकाई के अध्ययान से आपको व्यापारिक पशुपालन कृषि प्रदेश का ज्ञान होगा।

3 स्थानांतरण कृषि व्यवस्था को आप समझ सकेंगे।

4 चावल प्रधान एवं चावल विहीन जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था की विशेषताओं को आप समझ सके।

5 भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश की विशेषताओं को समझ सकेंगे ।

6 व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन कृषि प्रदेश को समझ सकेंगे ।

7 विशिष्टीकृत उद्यान कृषि क्या है इसको आप हल कर सकेंगे।

8 विश्व के किन किन भागों में कौन सी खेती की जाती है, वहां का आर्थिक स्तर क्या है, इसका ज्ञान होगा।

10.3 विश्व के कृषि प्रदेश

10.3.1 चलवासी पशुचारण प्रदेश–

इस प्रदेश को खानाबदोश की अर्थव्यवस्था या घुमक्कड़ी अर्थव्यवस्था के नाम से भी जानते हैं ऐसी अर्थव्यवस्था उन क्षेत्रों में पाई जाती है जहाँ पर भौगोलिक दशाएँ सघन उत्पादन के लिए अनुकूल नहीं होती हैं। यहाँ पर प्राकृतिक रूप से पशुओं के लिए चारे की उपलब्धता अधिक होती है। ऐसे क्षेत्र प्रायः शुष्क होते हैं या प्राकृतिक रूप से विलक्षण होते हैं जहाँ पर उच्चावच, जलवायु, जल की उपलब्धता, उपजाऊ मिट्‌टी आदि की विषम परिस्थितियाँ पाई जाती हैं। सहारा से लेकर अरब के शुष्क भाग तक एवं तिब्बत, मंगोलिया, टुण्ड्रा, मध्य एशियाई देश जहाँ पर ऐसी अर्थव्यवस्था पाई जाती है वहाँ के लोगों का जीवन पूरी तरह से पशु पर ही आश्रित होता है। ऐसे लोग पशुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर के चराने का कार्य करते हैं। इनके पशुओं में बकरी, ऊँट, भेंड़, रेनडियर प्रमुख हैं। यहाँ की प्राकृतिक दशाएँ भेड़ पालन, बकरी पालन के लिए अधिक अनुकूल होती हैं यहाँ ऊन, मांस, दूध, चमड़ा आदि कच्चे पदार्थ आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। इस अर्थव्यवस्था की धुरी पशुपालन है क्योंकि यहाँ रहने वाले लोगों के जीवन यापन का मूल आधार पशु होते हैं यहाँ पर अर्थव्यवस्था का दूसरा महत्वपूर्ण अंग स्थानांतरणशील खेती ही है चारे के लिए पशुओं के साथ चाय की कृषि करना इन लोगों के लिए एक आवश्यकता भी है इसलिए चारे का उत्पादन आवश्यक होता है। प्राकृतिक उपचार एवं जल द्वारा इनके स्थान का निर्धारण होता है प्रायः कबीलाई समाज होता है ऐसी कृषि या अर्थव्यवस्था जनजातियों से सम्बन्धित है इस कृषि कार्य में शामिल जनजातियाँ जैसे कज्जाक, खिरगिज, कालमैक्स, मंगोल आदि जनजातियाँ शामिल हैं। यह लोग अपने निवास स्थान को गुफा या हिम, झोपड़ी या तंबू के रूप में विकसित करते हैं। इनके आवास निर्माण की सामग्री अत्यन्त हल्की होती है इससे यह सरलतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता हैं। वर्तमान समय में ऐसी अर्थव्यवस्था का दिन प्रतिदिन ह्रास हो रहा है। सरकारें, लोकतंत्र सदैव बदलती रहती हैं साम्यवादी सरकारों ने इन खानाबदोश जनजातियों की जीवनशैली को स्थाई एवं नियंत्रित करने का प्रयास किया, उन्हें भूभाग पर स्वामित्व प्रदान किया। अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया में व्यापारिक पशुपालन वर्तमान समय में विकसित हो गया है। इन भागों में जल वर्षा कम होती है इसलिए सीमित संसाधनों के साथ स्थान परिवर्तन आवश्यक है। चलवासी कृषि अर्थव्यवस्था की आधुनिक प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं–

प्रथम– चलवासी पशुचारण क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या तेजी से घट रही है।

द्वितीय–समशीतोष्ण घास के मैदान धीरे–धीरे व्यापारिक पशुपालन की अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो रहे हैं शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदान का विस्तार अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका।

तृतीय–चलवासी पशुचारण वाले क्षेत्र की खानाबदोश जनजातियां अब धीरे–धीरे स्थायी खेती प्रारंभ कर दी हैं और उनके स्थानीय जनजीवन में स्थायित्व देखने को मिल रहा है। अस्थायी चलवासी खेती धीरे–धीरे समाप्त प्राय हो रहा है।

चतुर्थ–खानाबदोश जनजातियां आधुनिक सभ्यता–संस्कृति के संपर्क में शामिल हो रही हैं जिससे उनकी जीवनशैली, सोच, संस्कृति, व्यवहार में परिवर्तन हो रहा है। यह जनजातियां साइबेरिया, टुंड्रा, उत्तरी अफ्रीका, संयुक्त अरब गणराज्य, टर्की, ईरान, सऊदी अरब के क्षेत्र में स्थाई कृषि व्यवस्था का कार्य प्रारम्भ कर दी हैं।

10.3.2 व्यापारिक पशुपालनप्रदेश–

व्यापारिक पशुपालन का कार्य उन क्षेत्रों में सम्पन्न किया जा रहा है जहाँ पर पशुपालन के लिए अनुकूल चारे की व्यवस्था एवं जलवायु हो। ऐसे क्षेत्रों जहाँ विश्व के अर्द्ध शुष्क भाग हैं वहाँ पर पशुपालन का कार्य अर्थ उपार्जन अथवा व्यापारिक दृष्टिकोण से सम्पन्न किया जा रहा है। व्यापारिक पशुपालन कार्य की शुरूआत का श्रेय यूरोपीय प्रवासियों को जाता है यह लोग नई दुनिया में घास के क्षेत्रों में भू स्वामित्व का अधिकार प्राप्त करके अस्थाई रूप से निवास करने लगे, अपने निजी चरागाह का विकास किए और जो चारों ओर से घेरे रहते थे ऐसे चरागाह को रेंच कहते हैं। व्यापारिक पशुपालन केवल संयुक्त राज्य अमेरिका में ही नहीं बल्कि दक्षिण अफ्रीका, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, अर्जेंटीना आदि देशों में बड़े पैमाने पर किया जाता है इस प्रकार भौगोलिक दृष्टिकोण से व्यापारिक पशुपालन कार्य के क्षेत्रों को 2 वर्ग में विभाजित कर सकते हैं–

1. उष्णकटिबंधीय घास मैदान
2. समशीतोष्ण घास मैदान क्षेत्र

उष्णकटिबंधीय घास के मैदान प्रायः 10 से 20 डिग्री अक्षांश के मध्य विस्तृत हैं। इसमें सबसे बड़ा क्षेत्र अफ्रीका महाद्वीप में है जिसे सवाना कहते हैं यह सवाना सूडान देश में विस्तृत भू–भाग पर फैला है। समशीतोष्ण घास क्षेत्र का विस्तार न्यूजीलैंड, ऑस्ट्रेलिया, मध्य एशिया, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, उत्तरी अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका के क्षेत्र में विस्तृत पाया जाता है।

दक्षिण अमेरिका–

दक्षिणी अमेरिका में दक्षिणी ब्राजील, युरूग्वे, अर्जेंटीना आदि देशों में घास क्षेत्र का विस्तार पाया जाता है यह घास क्षेत्र व्यापारिक पशुपालन के लिए विश्व प्रसिद्ध है यहाँ पर पशुपालन का कार्य अत्यन्त विकसित अवस्था में है।

युरूग्वे और दक्षिण ब्राजील की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार पशुपालन और युरूग्वे की 60ः भूमि और 60ः निर्यात इन्हीं पशुपालन से सम्बन्धित उत्पादों से होता है। युरूग्वे की अर्थव्यवस्था पूरी तरह से अर्जेंटीना से मिलती जुलती है। युरूग्वे और ब्राजील फिर भी अर्जेंटीना के पंपास की तुलना में कम विकसित है क्योंकि यहाँ पर जलवायु अर्जेंटीना की तरह अनुकूल नहीं है। दक्षिणी ब्राजील में संपूर्ण देश की लगभग 75ः भेड़ तथा 13ः पशु पाले जाते हैं अर्जेंटीना की तरह यहाँ पर भी पशुओं के पोषण की क्षमता सीमित पाई जाती है।

अर्जेंटीना–

अर्जेंटीना का पंपास घास मैदान अत्यन्त उपजाऊ है। प्राकृतिक चारागाह के लिए विश्व प्रसिद्ध है। यहाँ पर देश की एक तिहाई भेड़ पाली जाती है। यह क्षेत्र गौ मांस उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ पर सर्वाधिक गौ मांस उत्पादन होता है। अर्जेंटीना व्यापारिक पशुपालक देश है, यह विश्व का लगभग एक तिहाई गौ मांस निर्यात करने वालादेश है। विश्व के समस्त ऊन निर्यात का 9ः अर्जेंटीना द्वारा किया जाता है। यहाँ से भेड़ एवं मेंमना की दृष्टि से अर्जेंटीना देश में चौथे स्थान पर है। अर्जेंटीना में बड़े स्तर पर बाजार की उपलब्धता है जिससे मांस उद्योग व पशुपालन उद्योग को अधिक बढ़ावा मिलता है। पंपास के अतिरिक्त यहाँ पर पराना पराम्वे, युरूग्वे नदियों

के मध्यवर्ती भाग या पर्वतीय क्षेत्र, शुष्क मैदान, पेंटागोनिया तथा तिएरा, डेल फ्यूगो तक विस्तृत भू–भाग है। भेड़ पालन अर्जेंटीना के सुदूर दक्षिण भाग तक विशेष रूप से किया जाता है यह दक्षिणी भाग अर्जेंटीना के समस्त ऊन निर्यात का 50ः उत्पाद उत्पन्न करता है।

उत्तरी अमेरिका का व्यापारिक पशुपालन क्षेत्र–

उत्तरी अमेरिका के अन्तर्गत कनाडा, संयुक्त राज्य अमेकिरा के प्रेयरी प्रदेश को शामिल करते हैं इसके साथ ही साथ उत्तरी मेक्सिको के मांस प्रदेश को भी व्यापारिक पशुपालन के अन्तर्गत शामिल किया गया है। यहाँ का भौगोलिक वातावरण व्यापारिक पशुपालन के लिए अत्यंत अनुकूल वृहत बाजार है, तकनीकी विकास हुआ है, मांस का व्यवसाय बड़े पैमाने पर विकसित हुआ है, यहाँ पर यूरोप से आने वाले प्रवासियों के इस प्रदेश में जंगली भैंसे स्वच्छंद रूप से विचरण करते थे जो रेड इंडियन जो यहाँ के मूल निवासी थे उनका मुख्य संसाधन था।

सर्वप्रथम स्पेनिश लोगों ने अपने साथ में गाय, बैल, घोड़े ले आए और इन लोगों ने कैलिफोर्निया, मैक्सिकों में पशुपालन कार्य का विकास किया क्योंकि यहाँ पर घास पूरे साल भर उपलब्ध रहती थी। पशुओं के बड़े हो जाने पर व परिपक्व हो जाने पर वे अमेरिका के पूर्वी बाजार क्षेत्र अटलांटिक तट पर लाए जाते थे और उसके बाद वहाँ से कनाडा के पर्वतीय चरागाही प्रदेशों में पश्चिमी राकी की पर्वतश्रेणियों के आस पास के क्षेत्रों में पशुचारण का कार्य प्रारंभ किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका के व्यापारिक पशुपालन कार्य के लिए न केवल प्राकृतिक कारक बल्कि मानवीय कारक भी अत्यधिक उत्तरदायी हैं वहाँ सामाजिक–सांस्कृतिक रूप से पशुपालन कार्य को बढ़ावा मिला है। रेल यातायात की सुविधा, विस्तृत मक्का की खेती, विस्तृत बाजार क्षेत्र, प्रशीतक की व्यवस्था, मांस के लगातार बाजार में खपत और मांस को दूर तक भेजने के लिए व्यवस्था, अच्छे व बड़े–बड़े कंटेनर, वैज्ञानिक शिक्षण प्रशिक्षण की सुविधा, संरक्षण, सरकारी सुविधा व सरकारी नीति, अमेरिका में व्यापारी पशुपालन कार्य के लिए उत्तरदायी हैं यहाँ पर रेंच वृहत मैदान में राकी की घाटियों में शुष्क प्रदेश के सिंचित क्षेत्रों में बहुतायत पाए जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में 40ः मानव पार्षद परिषद हेड पाई जाती है। मांस भेड़ों और पशुओं के अलावा बकरियों से भी प्राप्त होता है। पशुपालन दूध के लिए विशेष करके गायों का सिंचित क्षेत्रों में किया जाता है।

आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड–

आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में यूरोपीय आप्रवासी जब गए तो अपने साथ अनेक जानवर भी ले गए थे इन क्षेत्रों में भेड़ों की संख्या वहाँ की जनसंख्या से अधिक है। भेड़ आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड की अर्थव्यवस्था का आधार है। आस्ट्रेलिया न्यूजीलैंड में प्रति व्यक्ति 2 पशु, 16 से अधिक भेड़ें पाई जाती हैं संपूर्ण निर्यात में 60ः योगदान पशुपालन का इसमें 12ः मांस, 40ः ऊन का योगदान है। विश्व निर्यात पर 29ः गोमांस एवं 46ः ऊन केवल आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड से निर्यात किया जाता है। यहाँ के रेंच बड़े आकार के हैं। पशुपालन का कार्य पूरी तरह से वैज्ञानिक और आधुनिक है। चारागाह को बाड़ों में विभाजित किया गया है और विभिन्न प्रकार के जानवरों को उनकी आयु के अनुसार अलग–अलग बाड़े में वैज्ञानिक पशुपालन के लिए रखा जाता है। इनके पशुपालन कार्य में बड़े पैमाने पर पूँजी का निवेश होता है। व्यापारिक पशुपालन उद्योग का विकास क्वींसलैंड दक्षिणी बेस, विक्टोरिया आदि प्रांतों में हुआ है। वर्षा और तापमान के आधार पर भेड़ों का प्रादेशिक वितरण पाया जाता है। 50 से 75 सेंटीमीटर वर्षा वाले क्षेत्र पशुपालन कार्य के लिए सर्वोत्तम माने जाते हैं और भेड़ पालन के लिए 21 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान भी सर्वोत्तम माना जाता है।

10.3.3 प्रारंभिक जीवन निर्वाह कृषि व्यवस्था–

इस कृषि व्यवस्था में उत्पादन कम होता है, यह विस्तृत कृषि व्यवस्था है, यह कृषि कार्य उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में की जाती है। इस कृषि व्यवस्था के अन्तर्गत अमेजन मैदान से एंडीज पर्वत सहित प्रशांत महासागर का तटवर्ती क्षेत्र, मैक्सिको का क्षेत्र, मध्य अमेरिका का तटवर्ती क्षेत्र, दक्षिणी पूर्वी एशिया, मेडागास्कर, पूर्वी अफ्रीका, सहारा के दक्षिण मध्य एवं पश्चिमी अफ्रीका आदि क्षेत्र इस कृषि व्यवसाय में शामिल हैं इस जीवन निर्वाहन कृषि व्यवस्था तीन रूप में पाई जाती है जो इस प्रकार है–

10.3.3.1 . स्थानांतरणशील कृषि व्यवस्था

10.3.3.2 . प्रारंभिक स्थाई कृषि व्यवस्था

10.3.3.3 गहन जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था

10.3.3.1स्थानांतरणशील कृषि व्यवस्था–

स्थानांतरणशील कृषि व्यवस्था वास्तव में स्थाई नहीं होती है इसे कई नामों से जानते हैं इसे ैसी ंदक ठनतद खेती कहते हैं। इसे आदिम जनजातियों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इस कृषि कार्य में कृषि यंत्र का उपयोग नहीं होता है। यह कृषि अमेरिका के अमेजन बेसिन क्षेत्र में, दक्षिण पूर्वी एशिया, पूर्वी द्वीप समूह, अफ्रीका के कांगो बेसिन क्षेत्र में, दक्षिणी एशिया में की जाती है इस कृषि को भिन्न–भिन्न नाम से भी जानते हैं जैसे श्रीलंका में चेना, फिलीपींस में कैनजिंग, हिंद चीन में लदांग, सूडान में नगासू, अमेरिका में मिल्पा इसी तरह से आसाम में झूम, भारत में इसके अनेक नाम हैं जैसे भारत के विभिन्न क्षेत्रों में वालरा, खील, कुमारी, पोदू आदि नाम हैं। यह कृषि प्राकृतिक रूप से विषम परिस्थितियों वाले क्षेत्रों में सम्पन्न की जाती है। उष्णकटिबंधीय प्रदेश में यह कृषि कार्य आदिम जनजातियों द्वारा होती है जहाँ पर अत्यधिक जल वर्षा, वर्षभर ऊँचा तापमान पाया जाता है। किसान सबसे पहले जंगल को काटकर या जलाकर साफ करते हैं और इसके बाद उन सघन वनों के स्थान पर क्षेत्र का चयन करते हैं और दो–तीन वर्ष तक इसी प्रकार खेती का कार्य करते हैं आग द्वारा जंगल को जलाकर खेत तैयार किया जाता है, खेत का आकार छोटा होता है लगभग 2 हेक्टेयर तक होता है। खेती में मानव श्रम का उपयोग अधिक होता है। खाद और पूंजी का निवेश ना के बराबर होता है। खेत व्यक्तिगत नहीं होते बल्कि पूरे समुदाय का होता है ये किसी स्थान पर या किसी खेत में लगभग 2 वर्ष तक खेती का कार्य करते हैं उसके बाद यह खेती छोड़ कर चले जाते हैं तथा अन्यत्र दूसरा कृषि क्षेत्र तैयार कर लेते हैं क्योंकि वर्षा के कारण मिट्टी का लगातार कटाव होता रहता है इसलिए मृदा की उर्वरता तीव्रता से घट जाती है उत्पादन कम होने लगता है परिश्रम अधिक करना पड़ता है, उत्पादित फसलों की मांग अधिक होती है और यह लोग जीवन निर्वाहन का कार्य करते हैं। खाद्यान्न फसलों का ही उत्पादन करते हैं जिससे किसी तरह यह अपना जीवन यापन कर सके। इनके प्रमुख फसलों में ज्वार, बाजरा, धान, मक्का, गन्ना, पाम, मूंगफली, मोनिया, सेम, केला, टमाटर आदि फसलों की खेती करते हैं क्योंकि यह कृषि आदिवासी लोग करते हैं। यह आदिवासी लोग कृषि के साथ–साथ मुर्गी पालन तथा अन्य पशु का भी पालन करते हैं कृषि के अलावा शिकार करना, वन्य वस्तु का संग्रह करना, मछली मारना इनके जीवन का एक महत्वपूर्ण उद्यम है। यह आदिवासी लोग विषम जलवायु में कृषि कार्य सम्पन्न करते हैं जलवायु के ही कारण इनके अर्थव्यवस्था में पशुओं का अभाव है। यह लोग रूढ़िवादी होते हैं, इनकी जनसंख्या बहुत कम है, जनघनत्व बहुत कम है यह अपनी परम्परागत कृषि कार्य को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते हैं।

10.3.3.2प्रारंभिक स्थाई कृषि–

प्रारंभिक स्थाई कृषि व्यवस्था अनुकूल स्थानों पर सम्पन्न की जाती है यह कृषि स्थानांतरणशील खेती करने वाले आदिवासियों के अस्थाई बसने से अथवा चलवासी पशुचारण का कार्य करने वाले आदिवासियों के अस्थाई रूप से बस जाने पर सम्पन्न की जाती है। यह कृषि स्थानांतरणशील कृषि और चलवासी पशुचारण कृषि व्यवस्था का विकसित रूप है। यह कृषि व्यवस्था पश्चिमी द्वीप समूह, मध्य अमेरिका के पहाड़ी और पठारी भूभाग पर, एंडीज श्रेणी के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में, पूर्वी अफ्रीका के पठारी भूभाग में, कीनिया, नाइजीरिया, घाना के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में पूर्वी द्वीप समूह, हिंद चीन के भाग में जहाँ पर जनजातियाँ अस्थाई रूप से बस गई हैं वहाँ पर की जाती हैं यह कृषि भी आदिम प्रकार की है। उर्वरकों की कमी होती है इसलिए मृदा की उर्वरता को संतुलित रखने के लिए खेत को परती छोड़ा जाता है। उष्णकटिबंधीय आर्द्र क्षेत्र, ऊँचे पठार, पहाड़ी भाग उष्णकटिबंधीय मौसमी जलवायु वाले मैदानी क्षेत्र जहाँ पर जनसंख्या घनत्व तुलनात्मक रूप से अधिक है वहाँ पर भी यह कृषि कार्य किया जाता है। उन भागों में भी जहाँ पर शुष्कता अधिक है, जल वर्षा कम होती है वहाँ पर भी इस प्रकार की कृषि की जाती है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में विशेष करके पठारी भागों में बागाती कृषि बड़े पैमाने पर की जा रही है। इस कृषि में कोको, खजूर, रबर की कृषि सुगमता पूर्वक की जा रही है। स्थानीय किसानों की कृषि पद्धति में भी परिमार्जन हुआ है यह कृषि स्थानांतरित कृषि एवं चलवासी पशुचारण कृषि की तुलना में अधिक गहन है। यहाँ पर इस कृषि का विकास खान के आसपास तीव्र गति से हो रहा है। कृषक कृषि कार्य के अलावा पशुपालन का कार्य भी करते हैं इनके द्वारा पाले जाने वाले पशुओं में गाय, बकरी, घोड़ा, खच्चर, भेंड़ प्रमुख हैं।

10.3.3.3गहन निर्वाहन कृषि–

यह कृषि व्यवस्था मानसून एशिया के देशों में पाई जाती है जहाँ पर भौगोलिक दशाएं कृषि कार्य संपादित करने के लिए अनुकूल होती हैं इस कृषि व्यवस्था में स्थानीय उपयोग के लिए खाद्यान्न फसलों का उत्पादन किया जाता है। विश्व की अधिकांश जनसंख्या इस कृषि कार्य में लगी हुई है। लगभग एक तिहाई जनसंख्या गहन निर्वाह कृषि कार्य करती हैं जनसंख्या अधिक और कृषि भूमि कम होने से लोगों के भरण–पोषण के लिए गहन कृषि को अपनाना अनिवार्य हो जाता है गहन निर्वाह कृषि व्यवस्था की विशेषताएं निम्नांकित हैं–

1. निर्वाहन कृषि व्यवस्था में चावल की खेती की प्रधानता है
2. यहाँ पर पशुपालन का कार्य गौण है
3. जनसंख्या अधिक है लिहाजा भरण–पोषण के लिए यह कृषि अपनायी जाती है।
4. मानव श्रम की अधिक आवश्यकता एवं उपयोगिता होती है।
5. कृषि क्षेत्र छोटे–छोटे और बिखरे रूप में पाये जाते हैं।
6. किसान अपने गांव में ही अस्थाई निवास बनाकर रहते हैं।

इस कृषि व्यवस्था में आधुनिक कृषि यंत्रों का प्रयोग अत्यन्त कम किया जाता है, उन्नतशील बीज, प्रौद्योगिकी, रेलवेज, कीटनाशक दवाओं, रसायनों, रासायनिक उर्वरकों आदि का प्रयोग अत्यन्त कम होता है।

गहन निर्वाहन कृषि व्यवस्था में प्रति व्यक्ति उत्पादन अत्यन्त कम होता है इसलिए किसान बाजार में अपने उत्पाद को बेचने में असमर्थ होता है लिहाजा कृषकों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती है। आवश्यकताओं की पूर्ति अत्यन्त मुश्किल से हो पाती है। यहाँ के कृषक जो भी अनाज पैदा करते हैं उसी पर उनका जीवन निर्भर करता है वे लोग उसका स्वयं उपभोग कर लेते हैं जिससे उत्पादन बाजार में नहीं पहुंच पाता।

भोजन में सब्जी, दाल आदि का प्रयोग अत्यन्त कम होता है जनसंख्या अधिक होने से उत्पादन की खपत स्थानीय स्तर पर ही हो जाती है। इस कृषि व्यवस्था में बाजार के लिए उत्पादन नहीं हो पाता इस कारण यहाँ पर बड़े–बड़े बाजार, हाट, मण्डियों का अभाव होता है। गहन निर्वाह कृषि व्यवस्था को फसलों की प्रधानता के आधार पर दो भागों में विभाजित करते हैं–

10.3.3.3.1चावल प्रधान गहन जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था

10.3.3.3.2चावल विहीन गहन जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था

10.3.3.3.1चावल प्रधान गहन जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था

चावल प्रधान गहन जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था विश्व के उन क्षेत्रों में अपनाई जाती है जहाँ पर वर्ष भर ऊँचा तापमान पाया जाता है, वार्षिक वर्षा 200 सेंटीमीटर से अधिक पाई जाती है यहाँ पर भौगोलिक दशाएं चावल की कृषि के लिए उपयुक्त होती हैं इसीलिए यहाँ पर वर्ष में तीन बार चावल की खेती की जाती है, चावल की इसी कृषि व्यवस्था को 'सावाह' ॅ्रद्ध कृषि के नाम से भी जाना जाता है। मानसून एशियाई देशों में विश्व का लगभग संपूर्ण चावल उत्पादन होता है। इन चावल उत्पादक देशों में चीन, भारत, इंडोनेशिया, बांग्लादेश, थाईलैंड, वियतनाम, म्यानमार, जापान आदि प्रमुख हैं यह सभी देश मिलकर विश्व के लगभग 90ः चावल का उत्पादन करते हैं इन देशों में चावल की कृषि का कार्य डेल्टाई भागों में, बाढ़ के मैदानी क्षेत्र में या सीढ़ीदार, निम्नवर्ती भागों में सुगमतापूर्वक की जाती है। चावल की खेती के लिए गंगा, ब्रह्मपुत्र, मीनांग, इरावदी, सीक्यांग, यांग्टीसीक्यांग, कृषि भूमि उपयोग की दृष्टि से दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में चावल के अन्तर्गत सर्वाधिक कृषि भूमि का उपयोग किया जाता है जिसमें लाओस के संपूर्ण कृषि भूमि पर 95ः पर चावल की खेती, थाईलैंड के संपूर्ण कृषि भूमि के 65ः पर खेती, म्यानमार के सम्पूर्ण कृषि भूमि के 60ः पर इसी तरह से जापान में 42ःए भारत और चीन के 25ः से अधिक भाग पर धान की खेती की जाती है। धान या चावल के कृषि क्षेत्र में जनसंख्या का बसाव अधिक पाया जाता है, मानसूनी एशियाई देशों में जनघनत्व अधिक है, चावल उत्पादन के अधिकांश भाग का स्थानीय खपत है। मानसून एशियाई देशों में उत्पादन का अधिकांश भाग इन्हीं मानसूनी एशियाई देशों में कुछ देश जैसे कंबोडिया, थाईलैंड, ताइवान, दक्षिणी वियतनाम, म्यानमार आदि चावल का निर्यात भी करते हैं दक्षिणी पूर्वी एशिया के वही

देश जहाँ पर जनसंख्या का बसाव अधिक है एवं जनघनत्व अधिक है, चावल का अधिक उत्पादन भी करते हैं इस तरह जनसंख्या घनत्व और चावल उत्पादन क्षेत्र में धनात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है।

10.3.3.3.2चावल विहीन जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था–

मानूसन एशिया के अधिकांश भूभाग में जल वर्षा कम होती है, तापमान भी कम होता है वहाँ पर चावल की खेती प्रमुखता से नहीं की जाती है। मानसून एशिया के वे भाग जहाँ पर औसत वार्षिक वर्षा 100 सेंटीमीटर से कम एवं निम्न तापमान होता है वहाँ पर चावल के अतिरिक्त अन्य फसलों की कृषि की जाती है ऐसे क्षेत्रों में शुष्क कृषि की विशेषताएं पाई जाती हैं और ज्वार–बाजरा, अरहर, मक्का, तिलहन जैसी फसलें उगाई जाती हैं जहाँ कहीं भी सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है वहाँ पर गेहूँ और कपास का भी उत्पादन किया जाता है तापमान और वर्षा के आधार पर गेहूँ, ज्वार, बाजरा आदि किसी एक फसल की प्रधानता होती है। दक्षिणी पूर्वी एशिया विश्व का लगभग 60ः से अधिक पीनट, 57ः ज्वार बाजरा, 40ः सोयाबीन, 20ः गेहूँ और 16ः से अधिक जौ का उत्पादन करता है। मौसमी परिवर्तन अनवरत् होता रहता है इसी मौसमी परिवर्तन के परिणामस्वरूप जीविकोपार्जन कृषि को हम तीन वर्गों में विभाजित करते हैं–

प्रथम– ग्रीष्मकालीन मौसम की फसलें

द्वितीय– वर्षाकालीन मौसम की फसलें

तृतीय– शुष्क मौसम की फसलें

ऐसी कृषि व्यवस्था वाले भाग में जनघनत्व अधिक पाया जाता है, जनसंख्या का बसाव अधिक है, यहाँ पर कृषक वर्ष में दो या तीन फसलें उत्पन्न करता है। किसान वर्षा काल में ज्वार, बाजरा, मक्का, गन्ना, चावल; शीतकाल में गेहूँ, जौ, चना, मटर; ग्रीष्मकाल में जायद की फसलें, सब्जियां जैसे तोरई, भिण्डी, लौकी, कद्दू, पालक के अलावा मूंग, हरे चारे की खेती का कार्य करता है जहाँ कृषि हेतु सिंचाई की सुविधा अधिक है वहाँ पर ग्रीष्मकालीन कृषि की जाती है। इस कृषि व्यवस्था में दुग्ध और मांस के लिए पशुपालन का भी कार्य किया जाता है। जनसंख्या की अधिकता के कारण कृषक खाद्यान्न फसलों को प्रमुखता से उत्पन्न करना आवश्यकता समझता है पशुपालन के कार्य तो होते हैं बस उसके लिए चरागाह बिल्कुल नगण्य होता है। निम्न आय वाले परिवार के लोग बकरी, भेड़, सूअर, मुर्गी आदि पालते हैं और इस भाग के अधिकांश लोग शाकाहारी भी होते हैं, कृषक हल जोतने के लिए पशुओं विशेषकर के बैल का पालन कार्य करते हैं, दूध के लिए गाय और भैंस प्रमुखता से पालते हैं पिछले कुछ वर्षों से भारत सरकार, राज्य सरकार द्वारा दूध, पशुपालन के लिए पशुओं गाय, भैंस, सूअर, भेड़, मुर्गी, मत्स्य, रेशम के कीड़ों के लिए रेशम कीट आदि के पालन के लिए विशेष प्रोत्साहन का कार्य किया जा रहा है। ऐसे पशुपालकों को फौरी या तत्काल सरल बैंकिंग व्यवस्था, सस्ते ब्याज पर रेड सब्सिडी तथा उत्पादन के विक्रय की गारंटी जैसे अनेक योजनाओं के माध्यम से विकास के पथ पर पशुपालन को बढ़ाया जा रहा है।

10.3.4 व्यापारिक पादप रोपण कृषि–

व्यापारिक पादप रोपण कृषि व्यवस्था वास्तव में विदेशी कृषि प्रणाली है इस कृषि का इतिहास लगभग 100 वर्ष पुराना माना जाता है इस कृषि व्यवस्था में कहवा, नारियल, चाय, कोको, रबर, मसाले, केला, गन्ना आदि की खेती बागानों में व्यापारिक उद्‌देश्य से सम्पन्न की जाती है इस कृषि का विकास एवं प्रोत्साहन समशीतोष्ण कटिबंधीय देशों को उत्पाद का निर्यात करने के उद्‌देश्य से अनेक उष्णकटिबंधीय देशों में उपनिवेशवाद के दौरान सम्पन्न किया गया। उपोष्ण कटिबंधीय देशों में चाय, कपास, तंबाकू की भी खेती की जाती है, खाद्यान्न फसलों का उत्पादन वहाँ के आस–पास के श्रमिकों और पशुओं के लिए किया जाता है। बागाती या रोपण कृषि के विकास में प्रारम्भ में यूरोप और उत्तरी अमेरिका द्वारा पूंजी लगाई गयी थी, श्रमिक स्थानीय होते थे, प्रशासनिक और कुशल तकनीकी श्रमिक, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवाएं, कृषि यंत्र, कल कारखाने, मशीन के पुर्जे, यातायात के साधन आज सभी यूरोप और उत्तरी अमेरिका अथवा समशीतोष्ण देशों से ही आयात किया जाता था। विश्व के बाद आधी खेती के प्रमुख क्षेत्रों में अफ्रीका, दक्षिण पूर्वी एशिया, लैटिन अमेरिका प्रमुख थे बागाती कृषि की विशेषताएं अनेक हैं जो निम्नांकित हैं–

1. बड़े पैमाने पर कृषि

2. एक फसल की कृषि पद्धति

3. रोपण कृषि और श्रमिक

4. बागाती कृषि तथा बाजार

5. बागाती कृषि में यातायात के साधनों का महत्व

6. बागाती कृषि में विदेशी पूंजी और प्रबंध

7. बागाती कृषि और औद्योगिक प्रक्रिया

बड़े पैमाने की कृषि–

व्यापारिक पादप रोपण कृषि बड़े–बड़े कृषि फार्म पर की जाती है इसलिए सामान्य भू–जोत की तुलना में इसका आकार अधिक होता है यह बागाग 15 से 20 हेक्टेयर से लेकर सैकड़ों हेक्टेयर के आकार में विस्तृत पाए जाते हैं, किसान 1200 तक के क्षेत्र अधिक पसंद करते हैं कहीं–कहीं पर बागान 40 हेक्टेयर तक विस्तृत पाये जाते हैं भारत देश में अधिक विस्तृत बागान नहीं मिलते। लाइबेरिया के हर्बल नामक स्थान पर फायर स्टोन कंपनी का बागान लगभग 64001 हेक्टेयर क्षेत्रफल का है। भारत देश में चाय, कहवा, अन्य फसलों की बागाती खेती की जाती है लेकिन चाय बागानों का क्षेत्रफल 120 से 140 हेक्टेयर पाया जाता है।

एक फसल की कृषि

व्यापारिक पादप रोपण कृषि में फसलों का विशिष्टीकरण पाया जाता है। इस क्षेत्र में केवल एक ही वस्तु का उत्पादन होता है जैसे–असम में चाय, मलाया में रबर, ब्राजील में कहवा, क्यूबा में गन्ना की खेती प्रमुख है। इस कृषि में भौतिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कारक महत्वपूर्ण प्रभावित करने वाले कारक होते हैं। इसके अलावा प्रबंध तंत्र, श्रमिक, बाजार आधिकारिक भी प्रभावित करते हैं। यह सारे कार्य केवल सभी फसलों के लिए उत्तरदायी होते हैं। बागाती खेती में कोको, केला, मसाले, कहवा, चाय, नारियल, गन्ना, रबर आदि फसलों को सुगमतापूर्वक उगाया जाता है। इन फसलों के कृषि किन–किन क्षेत्रों में की जाती है उसे निम्न पंक्तियों में समझा जा सकता है रबर मलेशिया, हिंद एशिया मे; चाय श्रीलंका, भारत में आसाम, नीलगिरी की पहाड़ी, चीन की पहाड़ी; नारियल, फिलिपिन, दक्षिण भारत में, पश्चिमी अफ्रीका, ब्राजील; कपास, पीरू, कहवा, ब्राजील, कोलंबिया, दक्षिणी भारत; गन्ना, क्यूबा, पीरू, वेनेजुएला, पूर्वी अफ्रीका, मेडागास्कर, ब्राजील, भारत; केला पश्चिमी द्वीप समूह, मध्य अमेरिका, भारत आदि देशों में सफलतापूर्वक उगाया जाता है।

कृषि पद्धति–

व्यापारिक पादप रोपण कृषि पद्धति बागाती खेती की एक प्रमुख विशेषता है यहाँ पर गेहूँ, धान अथवा अन्य फसलों की तरह बीज को बोकर नहीं उगाते हैं बल्कि उसका रोपण किया जाता है इसमें निम्नलिखित दो प्रकार से उपजें उत्पन्न की जाती हैं प्रथम अनेक बार रोपड़ वाली फसलें जैसे गन्ना, कपास; वृक्ष युक्त फसलें जैसे रबर, कहवा, चाय, कोको।

रोपण कृषि और श्रमिक–

रोपण कृषि पूरी तरह से श्रमिकों पर आधारित है। इस कृषि की सबसे बड़ी समस्या प्रशिक्षित श्रमिकों की है इसीलिए सघन आबादी वाले देशों से रोपण कृषि करने वाले क्षेत्र में श्रमिकों का आयात किया जाता है। भारत, अफ्रीका आदि अनेक देश हैं जहाँ से भारी संख्या में श्रमिक विभिन्न देशों में प्रवास किए हैं मारीशस, क्यूबा, ब्रिटिश गियाना, फिजी, नेपाल, श्रीलंका, मलाया में अनेक श्रमिक भारतीय मूल के श्रीलंका और मलेशिया के चाय बागानों में आज भी भारतीय मूल के तमिल लोग श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं। हवाई द्वीप में जापान, फिलीपींस के श्रमिकों की संख्या अधिक पाई जाती है। सुमात्रा और बोर्नियो में चीनी देश के निवासी श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं बागाती खेती में खेत को तैयार करने, रोपण करने, पौधों का निरीक्षण, पत्तों की छटाई, फसलों की चुनाई, उर्वरकों के प्रयोग, दवाओं के छिड़काव, खरपतवार, देखरेख, उत्पादित वस्तुओं के बाजार तक परिवहन आदि अनेक कार्य के लिए कुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है। आज भी ऐसी मशीनों का आविष्कार नहीं हो पाया है जिससे बागाती खेती में किए जाने वाले कार्य जैसे गन्ने को काटने, छीलने, ट्रैक्टर ट्राली, ट्रक में लादने, कहवा को इकट्ठा करने, पौधों की देखरेख, कपास चाय को चुनने, रबर के वृक्षों से लेटेक्स निकालने का कार्य कर सके इसीलिए रोपण कृषि में समस्त कार्य का सम्पादन इन्हीं श्रमिकों द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है।

रोपण कृषि तथा बाजार–

रोपण कृषि का विकास यूरोपीय लोगों द्वारा गर्म प्रदेशों में किया गया। इस कृषि का मुख्य उद्देश्य यूरोपीय देशों को उत्पाद का निर्यात करना था जैसे–जैसे उपनिवेशवाद के दौरान बाजार प्राप्त होता गया वैसे वैसे रोपण कृषि का विस्तार और विकास हुआ। आज अनेक देश उपनिवेशवाद की सत्ता से मुक्त होकर स्वतंत्र देश हो गए और अब यह बागाती खेती उन देशों से होने वाले निर्यात के लिए महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में है इससे बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त हो रही है।

रोपण कृषि और परिवहन–

रोपण कृषि में परिवहन के साधनों का अधिक महत्व है क्योंकि उत्पादित माल को बाजार तक पहुंचाने के लिए सस्ते और सुविधायुक्त साधन की आवश्यकता होती है क्योंकि बाजार एक कृषि फार्म से दूर होते हैं और कृषि फार्म हजारों एकड़ क्षेत्रफल में फैला होता है इसलिए कृषि फार्म के मध्य सड़कें भी होती हैं जिससे उत्पादित सामान आसानी से एकत्र किया जा सकता है बागान से बाजार, बंदरगाह तक सस्ते एवं सुविधायुक्त परिवहन के साधन की आवश्यकता होती है।

बागाती खेती पूँजी एवं प्रबन्ध–

रोपण खेती में पूँजी की आवश्यकता बड़े पैमाने पर होती है। यह खेती उष्ण एवं उपोष्ण कटिबंध क्षेत्रों में यूरोपीय देशों द्वारा प्रारंभ किया गया था। डच, अंग्रेज, पुर्तगाल, फ्रांसीसी आदि उपनिवेशवाद के दौरान पूर्वी द्वीप समूह, भारत, श्रीलंका, पश्चिमी द्वीप समूह, अफ्रीका में घाना, नाइजीरिया व अन्य देशों में अपने उपनिवेश स्थापित किए और यह लोग वहाँ पर अपने कुशल प्रबंधन द्वारा स्थानीय कृषकों को रोपण कृषि करना सिखाया। यूरोपीय लोग वैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग भी करते थे। बागाती खेती में अधिक पूंजी भी लगी हुई थी एशिया महाद्वीप के या अन्य देशों के उपनिवेश धीरे–धीरे स्वतंत्र होते गए और वहाँ के प्रादेशिक विकास संस्थाओं ने बागाती खेती का प्रबंधन अपने हाथ में ले लिया, आज भी अफ्रीका के कुछ देशों में विदेशी पूंजी द्वारा रोपण खेती की जा रही है।

बागाती खेती एवं औद्योगिक प्रक्रिया–

रोपण कृषि की सभी फसलों का परिष्करण आवश्यक होता है कृषि फार्म पर जिस तरह से उत्पाद प्राप्त होते हैं वे उसी रूप में उपभोक्ताओं तक बाजार में नहीं भेजे जाते क्योंकि परिवहन के दौरान इनके नष्ट होने की संभावना बनी रहती है, रखरखाव का खर्च भी अधिक होता है इसीलिए इसका परिशोधन आवश्यक होता है जैसे लेटेक्स, हरी चाय, गन्ना, परिष्करण एवं औद्योगिक परिशोधन के बाद उत्पाद का वजन और मात्रा घट जाता है इसीलिए आर्थिक लाभ की दृष्टि से कृषि फार्म के पास ही उत्पाद के परिशोधन हेतु संयंत्र लगाए जाते हैं विश्व के लगभग सभी देशों में रोपण कृषि की ओर रूचि बढ़ी है और मशीनों के सहयोग से गर्म जलवायु वाले क्षेत्रों में ऊँचे स्थानों पर खेतों को तैयार करके फसलों की रोपाई, उसकी कटाई आदि का कार्य कुशलता पूर्वक किया जा रहा है। अनेक उन्नतशील प्रजातियां विकसित कर ली गई हैं वह कम समय में उत्पाद देना शुरू कर देती हैं अब दिन प्रतिदिन इसका विस्तार और विकास तीव्रगति से बढ़ रहा है।

10.3.5. भूमध्यसागरीय कृषि व्यवस्था–

भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश में भौगोलिक और प्राकृतिक विशेषताओं का महत्वपूर्ण योगदान है इस प्रदेश का नामकरण किसी फसल विशेष पर निर्भर नहीं करता है यह कृषि दोनों गोलार्द्धों में 30 से 45 डिग्री अक्षांश के मध्य महाद्वीपों के पश्चिमी किनारे पर की जाती है इस कृषि का सर्वाधिक विस्तार भूमध्य सागर के तटवर्ती देशों में है इसीलिए इसे भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश के नाम से जानते हैं। भूमध्य सागर के चारों ओर फैले देश जैसे पुर्तगाल, स्पेन, दक्षिणी फ्रांस, यूनान, इटली, सीरिया, जॉर्डन, लेबनान, इजरायल, ट्यूनीशिया, मोरक्को, अल्जीरिया आदि देश हैं इसके अलावा उत्तरी अमेरिका में मध्यम दक्षिणी कैलिफोर्निया दक्षिण अमेरिका में मध्यवर्ती चिल्ली का पश्चिमी भाग दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका ऑस्ट्रेलिया में दक्षिण ऑस्ट्रेलिया का मरे डार्लिंग प्रदेश कृषि प्रदेश के अन्तर्गत शामिल है। भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश के अन्तर्गत निर्वाहन कृषि व्यापारिक कृषि पशुपालन और ग्रीष्मकाल में सिंचाई सुविधा पर आधारित कृषि उत्पादन और शीतकाल में वर्षा पर आधारित फसल का उत्पादन खाद्यान्न, साग–सब्जी, फल आदि उगाया जाता है यहाँ की कृषि में अनेक प्रणालियां हैं क्योंकि यह ऐसा कृषि प्रदेश है जहाँ

पर पर्वत, तटीय मैदान, घाटी, बड़े मैदान, छोटे मैदान अनेक धरातलीय स्वरूप एक साथ पाए जाते हैं। यहाँ पर क्षेत्रीय भिन्नता पाई जाती है इन क्षेत्रों में कृषि से सम्बन्धित अनेक कार्य बड़ी सरलता पूर्वक किए जाते हैं यहाँ पर फल उत्पादन, खाद्यान्न उत्पादन, भेड़, बकरी का पालन प्रमुख रूप से किया जाता है। भूमध्यसागरीय जलवायु में ऐसी कृषि का विस्तार है जहाँ भूमध्यसागरीय जलवायु में शीतकाल में वर्षा होती है, ग्रीष्मकाल शुष्क होता है। वायुदाब पेटी, पवन पेटी, के खिसकाव का प्रभाव होता है यहाँ पर पर्वतीय ढाल पर अधिक वर्षा होती है लगभग 100 सेंटीमीटर होती है जबकि निचले भाग पर लगभग 25 सेंटीमीटर वर्षा होती है। धरातलीय विषमता, जलवायुगत विषमता के कारण यहाँ पर फसल उत्पादन और पशुपालन में विविधता पाई जाती है। कृषि व्यवस्था में प्राकृतिक कारकों के साथ सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यक्रम का भी योगदान है। यहाँ पर यातायात साधनों की सुलभता, जनसंख्या के दबाव, सरकारी नीति, बाजार, सागर तट की स्थिति, विपणन व्यवस्था आदि के कार्य यहाँ पर कृषि अधिक विकसित रूप में की जाती है। भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश प्राचीन सभ्यता का केन्द्र रहा और यहाँ पर जनसंख्या का घनत्व अधिक पाया जाता है यह कृषि व्यवस्था जीवन निर्वाह एवं व्यापारिक दोनों प्रकार से सम्पन्न की जाती है। व्यापारिक कृषि एवं जीवन निर्वाह कृषि दोनों व्यवस्था यहाँ की वर्षा, बाजार, जनसंख्या, कृषि, तकनीक, पूंजी, प्रबन्ध, सरकारी नीति द्वारा निर्धारित और नियंत्रित होती है। अफ्रीकी देशों में वर्षा कम होती है यहाँ पर गेहूँ से शराब और जैतून का तेल विश्व प्रसिद्ध उत्पाद माना जाता है। कैलिफोर्निया में अंगूर की खेती, सानज्वेकिन की घाटी में प्रसिद्ध है यहाँ पर साग–सब्जी, कपास का उत्पादन किया जाता है। यूनान में गोद एवं शराब; स्पेन में संतरा, जैतून, शराब; कैलिफोर्निया में संतरे, अंगूर शीतकालीन सत्र में बहुलता से उगाई जाती है इस कृषि व्यवस्था में उष्ण, शुष्क, ग्रीष्मकाल, मृदुल और नम शीतकाल में पर्वतीय समीपता, छोटी पृथक घाटियां, पर्वतपदीय मैदान आदि अनेक विविधतापूर्ण धरातलीय स्वरूप है जिस कारण से यहाँ पर कृषि की निम्नलिखित चार व्यवस्था पाई जाती है।

(1) ग्रीष्मकाल में सिंचाई से पैदा होने वाली फसलें–

ग्रीष्मकाल में बर्फ पिघलकर नदियों में प्रवाहित होती है, यह जल मैदानों और निम्न भागों में आसानी से पहुंच जाता है, नदियों में प्रवाहित जल से सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होती है और इससे किसान चारा की फसलें, फल की खेती, सब्जी की खेती सरलतापूर्वक सम्पन्न करते हैं। फल और सब्जी के उत्पादन के लिए यह मैदान अत्यन्त उपयुक्त होता है, यहाँ पर सभी समशीतोष्ण जलवायु की सब्जियां सफलतापूर्वक उगाई जाती हैं। यहाँ पर चारा फसल, अल्फाल्फा, क्लोवर, कूपाइन, वर्च सफलतापूर्वक उगाया जाता है इन्हीं चारा फसलों पर दुधारू जानवर पाले जाते हैं और दुग्ध डेयरी उद्योग यहाँ का प्रसिद्ध उद्योग है।

(2) बिना सिंचाई के सहयोग से फल का उत्पादन–

इस कृषि पद्धति के द्वारा खजूर, अंगूर, अंजीर और जैतून की खेती की जाती है यहाँ पर लताएं और वृक्षों का रोपण कर किया जाता है सिंचाई की सुविधा, उबड़ खाबड़ भूभाग में नहीं उपलब्ध हो पाती है जहाँ पर 25 से 75 सेंटीमीटर वर्षा होती है वहाँ जैतून प्रमुख रूप से उगाया जाता है यहाँ पर जैतून की खेती के लिए सभी पर्यावरण दशाएं सुलभ हैं इसीलिए विश्व का 90ः जैतून का उत्पादन भूमध्यसागरीय जलवायु प्रदेश में किया जाता है। भूमध्यसागरीय जलवायु प्रदेश को जैतूनी जलवायु प्रदेश के नाम से भी जानते हैं। जैतून की विशिष्टता भूमध्यसागरीय जलवायु के प्रमुख देश मोरक्को, पुर्तगाल, ट्यूनीशिया, ग्रीस, स्पेन, इटली आदि प्रमुख देश जैतून उत्पादन के लिए विश्व प्रसिद्ध हैं। असिंचित क्षेत्रों में दूसरी महत्वपूर्ण फसल अंगूर है जहाँ पर वार्षिक वर्षा 35 सेंटीमीटर से अधिक होती है उन क्षेत्रों में अंगूर की खेती सफलतापूर्वक उगाई जाती है भूमध्यसागरीय बेसिन में दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका के मध्य, चिली के पश्चिमी भाग में, आस्ट्रेलिया में अधिक मात्रा में अंगूर की खेती शुष्क कृषि के रूप में संपादित की जा रही है।

चारागाही एवं पशुपालन व्यवस्था–

यह प्रणाली पूरी तरह से जलवायु पर निर्भर है चरागाह थोड़े समय के लिए उपलब्ध हो पाता है क्योंकि निचले भाग में गर्मी अधिक होती है और पर्वतीय भाग पर शीतकालीन वर्षा होती है जिससे चरागाह के विकास के लिए अल्प समय मिल पाता है। उबड़–खाबड़ धरातलीय स्वरूप जलवायु अभिक्षमता, मौसम की वनस्पतियों और जटिल परिस्थितियों के कारण यहाँ की कृषि व्यवस्था के पशुपालन को दो वर्गों में रखा गया है।

() बड़े पशुओं का पालन–

इस व्यवस्था में मिश्रित कृषि विशिष्ट रूप में पाई जाती है भौगोलिक दशाएं पशुपालन उद्योग में सहायक हैं यहाँ पर सिंचाई के आधार पर ग्रीष्मकाल में अल्फाल्फा, वर्च, ब्लू पाइन आदि चारा फसलों के आधार पर पशुओं को पाला जाता है नगर के समीपवर्ती क्षेत्रों में दूध, पशुपालन एक महत्वपूर्ण व्यापारिक उद्यम है। कहीं–कहीं पनीर और मक्खन का उत्पादन भी किया जाता है, ताजे दूध की आपूर्ति स्थानीय भागों के लिए की जाती है। ताजे दूध की आपूर्ति में परिवहन साधनों का योगदान प्रमुख होता है।

(इ) भेड़ बकरी व छोटे पशु का पालन–

भूमध्यसागरीय कृषि व्यवस्था में भेड़, बकरी, सूअर व अन्य छोटे पशुओं को अधिकाधिक संख्या में पालन किया जाता है, यहाँ पर मुर्गी पालन एक प्रमुख व्यवसाय के रूप में सम्पन्न होता है, कुछ क्षेत्रों में मधुमक्खी पालन का कार्य सफलतापूर्वक किया जाता है। मधुमक्खी पालन का कार्य फलों के क्षेत्रों में ज्यादा अनुकूल सिद्ध होता है।

शीतकालीन वर्षा पर आधारित फसल उत्पादन–

भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश में शीतकालीन वर्षा के सहयोग से खाद्यान्न फसल व सब्जियों का उत्पादन किया जाता है। कैलिफोर्निया को छोड़कर सभी भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेशों में गेहूँ की खेती सफलतापूर्वक की जाती है कुछ विद्वान भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश को गेहूँ का उद्भव क्षेत्र मानते हैं। कैलिफोर्निया में बड़े पैमाने पर सब्जी की खेती, अंगूर की खेती की जाती है, कैलिफोर्निया से सब्जी को पश्चिमी यूरोप, पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका के बड़े जनसंख्या वाले क्षेत्रों को भेजा जाता है। इस तरह से कैलिफोर्निया में अंगूर, गेहूँ, साग–सब्जी के द्वारा बड़े पैमाने पर मुद्रा अर्जन का कार्य सम्पन्न होता है।

10.3.6. व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन कृषि–

कृषि व्यवस्था तकनीकी उपयोगिता और तकनीकी विकास का प्रतिफल है मध्य अक्षांशीय क्षेत्र में शुष्क प्रदेश एवं आर्द्र प्रदेश के मध्य विस्तृत घास के मैदान पाए जाते हैं जहाँ पर मिट्टी, वनस्पति और हिम युग के निक्षेपण से अधिक उपजाऊ है इस कृषि में सीमित क्षेत्र सम्मिलित किए गए यह कृषि शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदान जैसे उत्तरी अमेरिका में प्रेयरी प्रदेश, दक्षिणी अमेरिका में पंपास, ऑस्ट्रेलिया में डाउन्स, ईस्ट एशिया के घास क्षेत्र में यह कृषि सफलतापूर्वक सम्पन्न हो रही है। इस कृषि व्यवस्था में निम्नलिखित विशेषताएं विद्यमान हैं–

1. कृषि क्षेत्र विस्तृत भू–भाग पर है
2. कृषि में उच्च स्तर के यंत्रों का उपयोग होता है
3. कृषि में फसल का विशिष्टीकरण पाया जाता है
4. कृषि क्षेत्र में पूँजी का अधिकतम निवेश भी किया जाता है।

व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन कृषि की प्रमुख फसल गेहूँ है, गेहूँ की खेती इन घास के मैदानी क्षेत्रों में बड़े–बड़े कृषि फार्म पर सम्पन्न की जाती है यह कृषि फार्म 200 से 400 हेक्टेयर तक के विस्तृत आकार के होते हैं कुछ कृषि फार्म 800 हेक्टेयर तक के भी पाए जाते हैं इस प्रदेश में मशीनें ही मुख्य हैं जिसके आधार पर अनेक प्रकार के कृषि कार्य सरलतापूर्वक सम्पन्न किए जाते हैं। यहाँ पर ट्रैक्टर, ड्रिल, हल, कंबाइन ट्रक, मालगाड़ी एक अनिवार्य घटक है मशीनों के आविष्कार और उपयोग के फलस्वरूप इस कृषि प्रणाली का विकास हुआ है। मशीनों के अभाव में इतने बड़े पैमाने पर यह कृषि कार्य संभव नहीं हो सकता है। यहाँ पर जनसंख्या कम पाई जाती है इसलिए प्रति व्यक्ति फसल उत्पादन की मात्रा बहुत अधिक होती है जनसंख्या कम होने से स्थानीय स्तर पर फसल उत्पादन की खपत भी बहुत कम अथवा सीमित होती है इसीलिए यहाँ पर उपज का अधिकार सभी व्यापार के लिए उपलब्ध हो पाता है चावल उत्पादन कृषि क्षेत्र और व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन कृषि क्षेत्र की व्यवस्थाओं और विशेषताओं में विभिन्नता पाई जाती है। दोनों में अन्तर पाया जाता है चावल का उत्पादन अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में किया जाता है चावल का उत्पादन प्रायः उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में सम्पन्न होता है चावल के उत्पादन वाले क्षेत्रों में चावल की स्थानीय खपत अधिक होती है वहाँ पर सस्ता श्रम उपलब्ध होता है भूमि मंहगी होती है जबकि व्यापारिक खाद्यान्न उत्पादन वाले क्षेत्र में कृषि कार्य यंत्रीकृत होता है कृषि फार्म बड़े आकार के होते हैं, जनसंख्या कम होती है, स्थानीय खपत कम होती है, उपज का अधिकांश भाग व्यापार के लिए उपलब्ध हो जाता

है। चावल के क्षेत्रों में कृषि कार्य में मानव श्रम का उपयोग अधिक होता है जबकि विस्तृत कृषि क्षेत्र में जहाँ पर गेहूँ की विशिष्टता है वहाँ पर अधिकांश कार्य मशीनों के द्वारा सम्पन्न किया जाता है गेहूँ यहाँ का प्रमुख उपज है, बाजार के मुख्य निर्यातक फसल के रूप में माना जाता है विश्व के प्रमुख खाद्यान्न उत्पादन क्षेत्र में संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा का बसंतकालीन गेहूँ, मध्य संयुक्त राज्य अमेरिका और कोलम्बिया के पठार का शीतकालीन गेहूँ, अर्जेंटीना के पंपास क्षेत्र में गेहूँ प्रदेश, आस्ट्रेलिया में मरे डार्लिंग नदी घाटी क्षेत्र, दक्षिणी पश्चिमी भूमध्यसागरीय जलवायु प्रदेश का गेहूँ क्षेत्र, यूक्रेन और रूस का गेहूँ क्षेत्र के समस्त गेहूँ प्रदेश में बड़े पैमाने पर खाद्यान्न का उत्पादन निर्यात सुगमतापूर्वक होता है इसके लिए यहाँ पर भौतिक और मानवीय दोनों ही कारक अनुकूल हैं।

10.3.7.व्यापारिक शस्य एवं पशु उत्पाद अथवा मिश्रित कृषि प्रदेश–

मिश्रित कृषि प्रदेश के अन्तर्गत पशुपालन का कार्य व्यापारिक स्तर पर फसल उत्पादन के साथ किया जाता है अर्थात् मिश्रित कृषि में फसल उत्पादन और पशुपालन दोनों कार्य एक साथ सम्पन्न होते हैं इस व्यवस्था का भी विकास और जन्म यूरोप में ही हुआ, यह कृषि व्यवस्था नार्वे, स्वीडन अर्थात् पश्चिमी यूरोप से लेकर नाइजीरिया के क्षेत्र तक एक लंबी पेटी के रूप में विस्तृत रूप से पाई जाती है जैसे–जैसे हम इस पेटी के पूर्व बढ़ते हैं यह पेटी अत्यन्त संकीर्ण होती जाती है एवं सर्वाधिक चौड़ाई लगभग 1200 किलोमीटर पाई जाती है। यह कृषि संयुक्त राज्य अमेरिका में इंडियाना, नेब्रास्का, वर्जीनिया, ओकलाहोमा, टेनेसी में सम्पन्न की जाती है इसके अलावा मेक्सिको के मध्य भाग, दक्षिणी अमेरिका में अर्जेंटीना, ब्राजील और दक्षिण अफ्रीका के पूर्वी भागों में यह खेती सुगमतापूर्वक की जा रही है। मिश्रित कृषि प्रदेश की विशेषताएं निम्नलिखित हैं।

1. मिश्रित कृषि फार्म अपेक्षाकृत बड़े–बड़े होते हैं औसत कृषि फार्मों का क्षेत्रफल 60 हेक्टेयर तक विस्तृत क्षेत्र पर पाए जाते हैं कहीं–कहीं पर यह 800 हेक्टेयर तक के क्षेत्र पर भी विस्तृत हैं जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में मिश्रित कृषि फार्म 450 से 800 हेक्टेयर तक के आकार के पाए जाते हैं। यूरोपीय क्षेत्रों में मिश्रित कृषि फार्म का औसत क्षेत्रफल 30 हेक्टेयर का है, यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका में जनसंख्या इन कृषि फार्म पर बिखरे रूप में पाई जाती है। कृषक मजदूरों के मकान, उनके पशुओं के लिए आवास, चारा इत्यादि उसी कृषि फार्म पर बनाए जाते हैं, जानवरों के लिए बाड़े और चारा आदि का भंडारगृह कृषि फार्म पर विकसित कर लिया जाता है।

2. मिश्रित कृषि पद्धति में फसल चक्र एक प्रमुख विशेषता पाई जाती है। मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने में फसल चक्र सहयोग करता है जैसे एक बार में 6 वर्ष के आवर्तन की प्रणाली अपनाई जाती है, जिसमें पहले वर्ष ओट्स, दूसरे वर्ष टर्निप या आलू, तीसरे साल पुनः ओट्स तथा अन्य 3 वर्षों में घास की खेती की जाती है। चार या पांच वर्ष के आवर्तन पद्धति में पहले वर्ष चरागाह, दूसरे वर्ष गेहूँ, तीसरे वर्ष में आलू, और चौबे वर्ष में अनाज या ओट्स, 5 वर्ष में जौ बोये जाने की परम्परा है।

3. मिश्रित कृषि व्यवस्था यानी पशुपालन और कृषि जहाँ पर एक साथ सम्पन्न की जाती है इस कृषि व्यवस्था में अधिक पूँजी और श्रम दोनों की आवश्यकता होती है इसी व्यवस्था में 80ः से अधिक कार्य मशीनों के द्वारा सम्पन्न किया जाता है अब सघन कृषि फार्म पर अधिकांश कार्य मशीनों के सहयोग से सम्पन्न हो रहा है कृषि फार्म को तैयार करने, फसलों की बुवाई करने, फसलों की कटाई करने, फसलों की मड़ाई करने का कार्य मशीनों के द्वारा सम्पन्न हो रहा है, रासायनिक खादों का छिड़काव भी मशीनों से, कीटनाशक खरपतवार नाशक दवाओं का प्रयोग भी मशीनों से सम्पन्न हो रहा है इसलिए उन्नत किस्म की मशीनों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशक दवाइयों, खरपतवार नाशी रसायनों आदि के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है।

4. इस कृषि में फसल और पशुपालन दोनों कार्य साथ–साथ होते हैं इन फसलों का उत्पादन पशुओं के खिलाने के लिए भी किया जाता है इस तरह से यहाँ पर एक ही चारे के रूप में पशुओं को खिलाने की दृष्टि से, अन्न का उत्पादन एवं व्यापार के लिए भी उत्पादित किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में इस कृषि व्यवस्था में मक्का और गेहूँ का उत्पादन बड़ी सफलतापूर्वक किया जाता है विभिन्न रूप से पशुपालन के लिए उपयोगी होती है। उत्पादन बहुत अधिक होता है जिसकी पूरी खपत बाजार में नहीं हो पाती है जबकि पशु उत्पादन के विक्रय हेतु बाजार सुलभ है। यहाँ के उत्पादित पदार्थ को संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी क्षेत्रों को परिवहन के माध्यम से भेजा जाता है, कृषि फार्म को अधिकांश आय पशुओं के व्यापार से ही हो जाती है। यहाँ के प्रमुख पशु सूअर, भेड़, मुर्गी, घोड़ा, गाय आदि हैं। पशुओं का उत्पादन मुख्य रूप से मांस

प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इसके अलावा पशुओं से यहाँ पर चमड़ा, अंडा, दूध का उत्पादन भी बड़े पैमाने पर होता है। गाय का पालन मांस और दूध दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हेतु होती है जबकि सूअर का पालन केवल मांस के लिए ही किया जाता है।

मिश्रित कृषि के कारण किसान को कुछ न कुछ लाभ हमेशा उपलब्ध होता है इसीलिए मिश्रित कृषि कभी घाटे का सौदा नहीं होती है एक फसल के नष्ट होने पर दूसरी फसल और दोनों फसल के नष्ट होने पर पशु उत्पाद किसानों को उपलब्ध होता रहता है।

यूरोप के पश्चिमी भाग में, सोवियत रूप में, संयुक्त राज्य अमेरिका में मिश्रित कृषि का स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है भौगोलिक दशाएँ फसल और पशुपालन दोनों के लिए बेहद अनुकूल है। सामान्य तापमान और सामान्य वर्षा इस कृषि प्रदेश की प्रमुख विशेषता है यहाँ की कृषि मिट्टी भी हिमोढ़ प्रकार की है। पूरा कृषि प्रदेश शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात से प्रभावित रहता है, वर्षा बहुत हल्की होती है, बौछारों से युक्त होती है यह वर्षा वर्षभर होती रहती है जो कृषि के लिए अत्यन्त अनुकूल होती है।

10.3.8. जीविकोपार्जन एवं पशु उत्पादक कृषि–

इस कृषि का जन्म क्षेत्र उत्तरी यूरोप है जहाँ पर जीविकोपार्जन फसल और पशु उत्पादन दोनों का कार्य एक साथ किया जाता है। इस कृषि व्यवस्था की अनेक विशेषताएँ मिश्रित कृषि व्यवस्था की विशेषताओं से मिलती है क्योंकि इसमें भी कुछ फसलों का उत्पादन कृषि फार्म पर किया जाता है अंतर इतना है कि यहाँ का उत्पादन का आधा भाग ही बाजार में उपलब्ध हो पाता है जबकि विस्तृत कृषि व्यवस्था में अधिकांश उत्पादन बाजार में उपलब्ध होता है। जीविकोपार्जन फसल और पशु उत्पादन के नाम से ही स्पष्ट है कि इस कृषि क्रियाकलाप का मुख्य उद्देश्य जीवन यापन के लिए ही है कुछ क्षेत्रों में बाजार के लिए कुछ भी उत्पाद प्राप्त करना संभव नहीं होता ऐसी कृषि विश्व के बहुत कम क्षेत्रों में की जाती है। विद्वान व्हिटलसी महोदय जब इस कृषि व्यवस्था का विश्लेषण कर रहे थे उस समय रूस के क्षेत्र में कृषि सुधार के कारण कृषि कार्य में ह्रास की स्थिति देखी जा रही थी और यह कृषि विश्व के अन्य देशों में भी बहुत कम क्षेत्रों पर सम्पन्न हो रही थी आज विकास के मापक बदल रहे हैं। कृषि क्षेत्र में तेजी से परिवर्तन हो रहा है अब यह जीविकोपार्जन और पशु उत्पादन कृषि व्यवस्था, व्यापारिक फसल और पशु उत्पादन कृषि में बदलती जा रही है ऐसी खेती एशिया के पश्चिमी भागों के उत्तर में उत्तरी ईरान, मध्यवर्ती एशिया, उत्तरी साइबेरिया में जहाँ पर भौगोलिक दशाएं अनुकूल नहीं हैं वहाँ पर येन केन प्रकारेण की जा रही हैं जीवन यापन के लिए फसल का उत्पादन और पशुपालन दोनों कार्य का सहयोग लेना पड़ रहा है। यहाँ पर मौसम या तो शुष्क है या तो अति शीतल है इस कारण से वर्ष में बड़ी मुश्किल से एक फसल का उत्पादन होता है इसीलिए लोगों को पशुपालन के फसल उत्पादन के साथ–साथ इस पशुपालन का कार्य भी करना होता है जिससे उनका जीवन यापन सरलतापूर्वक हो सके।

10.3.9.व्यापारिक दुग्ध पशुपालन कृषि–

व्यापारिक दूध पशुपालन कृषि का मुख्य लक्ष्य दूध और दूध से निर्मित होने वाले पदार्थों जैसे पनीर, मक्खन, दही आदि का व्यापारिक उत्पादन के लिए कृषि कार्य करना है, यह उत्तम कृषि व्यवस्था है इस कृषि व्यवस्था में पूंजी, श्रम, कृषि की मशीनों, प्रबंधन कौशल प्रशिक्षण आदि की नितान्त आवश्यकता होती है। यह कृषि व्यवस्था उन्हीं क्षेत्रों में अधिक सफल देखी जाती है जहाँ पर बाजार की निकटता हो। मक्खन, पनीर, दूध, क्रीम, मांस बेचने की सुविधा भी उपलब्ध हो, परिवहन के लिए विशेष रूप से साधन भी सुगमता से सुलभ हो, ऐसी कृषि व्यवस्था के लिए प्रशीतक की भी सुविधा होनी चाहिए। ऐसी कृषि समशीतोष्ण जलवायु प्रदेश में विशेष रूप से बड़े पैमाने पर की जा रही है। उष्ण प्रदेशों में बाजार के निकट दुग्ध पशुपालन का कार्य किया जाता है यह कृषि व्यवस्था 3 प्रदेशों में सम्पन्न की जा रही है। प्रथम उत्तरी अमेरिका में सुपीरियर, मिशिगन, ह्यूरन इरी, ओण्टोरियो जैसी बड़ी झीलों के पश्चिमी भाग के प्रेयरी प्रदेश में यह कृषि कार्य सम्पन्न किया जा रहा है। पश्चिमी यूरोप के उत्तरी भाग में अंध महासागर के तटवर्ती क्षेत्रों से लेकर रूस की राजधानी मास्को तक यह कृषि कार्य कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया जा रहा है। तीसरा क्षेत्र आस्ट्रेलिया के दक्षिणी पूर्वी भाग में और तस्मानिया, न्यूजीलैंड में भी यह कृषि उन्नत तरीके से सफल रूप से सम्पन्न की जा रही है। इन महत्वपूर्ण क्षेत्रों के अलावा दक्षिणी अमेरिका में अर्जेंटीना और अफ्रीका में दक्षिण अफ्रीका देश, साथ ही एशिया में पूर्वी जापान में भी यह कृषि व्यापारिक स्तर पर बड़े पैमाने पर सम्पन्न की जा रही है। इस कृषि में दुग्ध उत्पादन के संदर्भ में सोवियत रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत, जर्मनी, फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन, नीदरलैंड, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, अर्जेंटीना, न्यूजीलैंड, डेनमार्क, ब्राजील,

पाकिस्तान, पोलैण्ड, इटली, जापान, चीन विश्व के महत्वपूर्ण देश हैं जो व्यापारिक दूध पशुपालन का कार्य करते हैं। प्रति गाय प्रतिवर्ष उत्पादन होने वाले दूध में अंतर पाया जाता है। पश्चिमी यूरोपीय देश की गाय और ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका, जापान, हालैण्ड, की गायें दूध का उत्पादन अधिक करती हैं या दूध अधिक देती हैं जबकि भारत, पाकिस्तान की गायें दूध कम देती हैं। भारत की गाय को पिकअप काऊ कहा जाता है। दूध से बने पदार्थ जैसे पनीर, पाउडर, दूध, मिल्क,कंडेंस, मिल्क, मक्खन आदि के उत्पादन में भी क्षेत्रीय प्रादेशिक स्तर पर अंतर पाया जाता है। कुछ देश दूध के पदार्थों के उत्पादन के लिए विश्वविख्यात हैं जैसे डेनमार्क, हालैण्ड, न्यूजीलैंड, मक्खन और पनीर के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका सूखा दूध के लिए विश्व प्रसिद्ध है। दूध एवं दूध से उत्पादित पदार्थों की प्रति व्यक्ति उपभोग की मात्रा में भी राष्ट्रीय स्तर पर अंतर पाया जाता है। यूरोपीय देश जैसे आयरलैंड, स्वीडन, फिनलैंड, पोलैंड में दूध की प्रति व्यक्ति खपत अधिक है उसके बाद न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, संयुक्त राज्य अमेरिका में भी दूध की प्रति व्यक्ति खपत उच्च स्तर की है लेकिन दक्षिणी एशियाई राष्ट्र, पूर्वी एशियाई राष्ट्र, दक्षिण पश्चिम एशिया में दूध के प्रति व्यक्ति उपलब्धता अत्यन्त दयनीय स्थिति में है विश्व के निर्यातक देशों में न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया का महत्वपूर्ण स्थान है जबकि रूस, ब्रिटेन आदि देश मक्खन के अच्छे निर्यातक हैं, पनीर निर्यातक देशों में न्यूजीलैंड, नीदरलैंड, स्विट्जरलैंड, डेनमार्क, फ्रांस आदि का नाम विश्व में सर्वोपरि है जबकि पनीर के आयातक देशों में बेल्जियम, जर्मनी, ब्रिटेन आदि देशों का नाम पहले आता है आज विश्व के अनेक देशों में जीवन स्तर ऊँचा उठने के साथ–साथ डेरी उत्पादन वस्तुओं की मांग तेजी से बढ़ी है। इस कृषि में मांग को देखते हुए पशुओं की नस्लों, यंत्रों, पशुपालकों के प्रशिक्षण और प्रशीतक की सुविधा, पशुओं के रख–रखाव, उनकी चिकित्सा, उन पर अन्वेषण, अनुसंधान कार्य लगभग सभी देशों में तेजी से बढ़ा है। रेफ्रिजरेटर के विकास के फलस्वरूप डेयरी उद्योग वैज्ञानिक स्तर पर किया जा रहा है इस व्यवस्था में तीव्र वेग वाले परिवहन साधनों की भी आवश्यकता होती है जो वर्तमान समय में लगभग सभी देशों में यह उपलब्ध है अब कई देशों में पाइप लाइन के द्वारा भी दुग्ध परिवहन कार्य पर विचार किया जा रहा है।

10.3.10.विशिष्टकृत उद्यान कृषि प्रदेश–

इस कृषि के अन्तर्गत साग–सब्जी, फल–फूल की खेती की जाती है यह कृषि लगभग सभी देशों में शहरी क्षेत्रों में और औद्योगिक क्षेत्रों में कुशलतापूर्वक की जा रही है। नगरों में मकानों के पीछे, ग्रामीण क्षेत्रों में गांव के चारों तरफ फल–फूल, साग–सब्जी आसानी से उगाया जाता है और यह एक सामान्य बात भी है। बड़े–बड़े नगरों के सीमांत क्षेत्रों पर या रूरल अर्बन फ्रिंज, ग्रामीण क्षेत्र में साग–सब्जी और फूल–फूल की खेती व्यापारिक दृष्टि से भी की जाती है। यह कृषि संयुक्त राज्य अमेरिका, उत्तरी पश्चिमी यूरोप, डेनमार्क, ग्रेट ब्रिटेन, बेल्जियम, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों में घनी आबादी के भाग में कुशलतापूर्वक की जा रही है। भारत में भी यह कृषि बड़े–बड़े नगरों के चारों तरफ आसानी से देखी जा सकती है इस कृषि प्रदेश में साग–सब्जी, फल–फूल आदि को उगाया जाता है। खेत का आकार बहुत छोटा होता है इसमें पूंजी और श्रम की अधिक आवश्यकता होती है उत्पादन अधिक होता है, उत्पादित वस्तुओं या पदार्थों को बाजार तक ले जाने के लिए परिवहन साधन की सुलभता होनी चाहिए। कृषि पद्धति में गहनता सबसे अधिक पाई जाती है आस्ट्रेलिया और संयुक्त राज्य अमेरिका में इसे ट्रक फार्मिंग के नाम से भी जाना जाता है। आस्ट्रेलिया और संयुक्त राज्य अमेरिका में यह कृषि बड़े–बड़े फार्म में की जाती है। वहाँ पर वर्ष में एक और कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में दो फसलें उगाई जाती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा देशों में वैज्ञानिक प्रगति के कारण से इस कृषि का विकास अधिक हुआ है। इस व्यवस्था में द्रुतगामी परिवहन साधन, रेफ्रिजरेटर आदि की व्यवस्था से और मशीनीकरण के कारण एक क्रांतिकारी परिवर्तन देखने को मिलता है। रेफ्रिजरेटर, रेलगाड़ी, ट्रक, छोटी चार पहिया साधन के द्वारा हरी ताजी साग–सब्जी, फल–फूल दूर तक के नगरों को सरलतापूर्वक पहुंचाई जाती है इस कृषि फार्म में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के उद्देश्य से उचित मात्रा में उर्वरक, सिंचाई के साधन, कीटनाशक, खरपतवारनाशी दवाओं, निराई–गुड़ाई, देखरेख, कुशल श्रम, उन्नतिशील बीज की आवश्यकता होती है भारत देश में इस कृषि व्यवस्था के लिए प्राकृतिक और मानवीय कारक अनुकूल हैं यहाँ पर पर्याप्त तापमान, सूर्य का प्रकाश, पौधों के विकास के लिए उचित और पर्याप्त वर्द्धन काल, उपजाऊ मिट्टी, श्रमिकों की उपलब्धता के कारण अब यह खेती छोटे–छोटे खेतों में, बाग बगीचों में आवासीय क्षेत्रों के पास सफलतापूर्वक की जा रही है। भारत में लगभग सभी प्रकार की सब्जी जैसे आलू, टमाटर, प्याज, शलजम, गोभी, बैंगन, भिंडी, परवल, तोरई, लौकी, कद्दू, सेम, पालक, मेथी, लहसुन, धनिया, सोयाबीन आदि की खेती बड़ी ही सफलतापूर्वक सम्पन्न हो रही है। भारत देश में दिन–प्रतिदिन बढ़ते नगरीकरण, औद्योगीकरण के कारण से साग–सब्जी, फल आदि की मांग भी बढ़ी है इसीलिए साग–सब्जी, फल–फूल की

खेती में क्रांतिकारी परिवर्तन देखने को मिलता है वर्तमान समय में कीटाणुनाशक, खरपतवारनाशक रसायनों के बाजार में उपलब्धता के कारण प्रति हेक्टेयर उत्पादन भी बढ़ा है। अब भारत देश साग–सब्जी, प्याज, आलू, टमाटर का अन्य एशियाई देशों में निर्यात भी करता है।

विद्वान होवार्थ एवं स्पेंसर ने एतदर्थ छः प्रकार की सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है जिसमें मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, तकनीकी एवं कृषि आर्थिकी महत्वपूर्ण है इन्होंने देश को निम्नलिखित कृषि प्रदेशों में रखा है–

1. उष्णकटिबंधीय रोपण कृषि प्रदेश
2. व्यापारिक बागाती कृषि प्रदेश
3. व्यापारिक दूध उत्पादक कृषि प्रदेश
4. व्यापारिक फसल एवं पशुपालन प्रदेश
5. विस्तृत व्यापारिक फसल एवं उत्पादक कृषि प्रदेश
6. भूमध्यसागरीय कृषि प्रदेश
7. प्राच्य निर्वाह कृषि प्रदेश
8. उष्णकटिबंधीय आदिम प्रकार की निर्वाह कृषि प्रदेश
9. पशुधन उत्पादन कृषि प्रदेश
10. चलवासी पशुचारण कृषि प्रदेश
11. अकृष्य प्रदेश

विश्व को उपयुक्त कृषि प्रदेशों के विवेचन के उपरान्त सरल रूप में 10 कृषि प्रदेशों में रखा जा सकता है जो प्रस्तुत चित्र से स्पष्ट है। कृषि प्रकार के निर्धारण एवं सीमांकन में प्राकृतिक पर्यावरण के साथ–साथ सांस्कृतिक पर्यावरण को भी सम्मिलित किया गया है इसका कृषि के उद्भव, विकास, परिवर्तन और हर ओर से अधिक महत्व है।

10.4 सारांश

इस इकाई में विश्व के कृषि प्रदेश का वर्णन किया गया है जैसा कि आपको जानकारी है कि इसके पूर्व के इकाई में विश्व के कृषि प्रादेशीकरण की योजना का सविस्तार वर्णन किया गया कि विश्व में किन किन विद्वानों ने किन किन कृषि प्रदेशों को किन किन आधारों पर निर्धारित किया है इस इकाई में अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए विद्वान व्हिटलसी द्वारा निर्धारित 13 कृषि प्रदेश का वर्गीकरण संक्षिप्त में किया गया है। इन 13 कृषि प्रदेश में चलवासी पशुचारण व्यापारिक पशुपालन स्थानांतरण शील कृषि प्रारंभिक स्थाई कृषि चावल प्रधान जीविकोपार्जन कृषि व्यवस्था व्यापारिक पादप रोपण कृषि चावल गहन जीवन निर्वाहन कृषि व्यवस्था भूमध्यसागरीय कृषि व्यवस्था व्यापारिक एवं पशु उत्पादक कृषि व्यवस्था अथवा मिश्रित कृषि व्यवस्था जीविकोपार्जन फसल एवं पशु उत्पादक कृषि व्यवस्था व्यापारिक दूध पशुपालन कृषि व्यवस्था विशिष्टीकृत उद्यान कृषि व्यवस्था आदि 13 कृषि प्रदेश में विभाजित किया गया है कृषि प्रदेशों के माध्यम से यह विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है कि कृषि कृषि प्रदेश में किस विभाग में वहां के तापमान वर्षा आर्द्रता स्थलों के आधार पर किन फसलों का चयन किया जा सकता है वहां के किसानों के सामाजिक आर्थिक राजनीतिक सरकारी नीति और लोगों के प्रकृति के आधार पर फसलों का चयन करते हुए एक कषि प्रदेश का निर्धारण करने का प्रयास किया गया जैसे यह भी देखा गया है कि कहां पर फसल के साथ पशुपालन का कार्य भी सफलतापूर्वक किया जा रहा है फसलों की प्रमुखता है और किन फसलों को गौंड रूप में कृषि कार्य में शामिल किया गया है इतना ही नहीं कहां पर बागवानी की जा रही है इस आधार पर कृषि प्रदेश का निर्धारण उनकी समग्रता को ध्यान में रखते हुए किया गया है कृषि प्रदेश के अध्ययन कर लेने से विद्यार्थी को इस बात की जानकारी हो जाएगी कि विश्व में कृषि क्षेत्र में कितनी विविधता है और विश्व के किस भाग में कौन सी फसल उगाई जाती है और वहां पशु और फसल संयोजन की क्या अंतर है आज ऐसे अनेक प्रश्न है जिनका उत्तर इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आसानी से दिया जा सकता है।

10.5 बोध प्रश्न

1. चलवासी पशुचारण किया जाता है?

क ंमंगोलिया तिब्बत — ख मध्य एशियाई देश

ग सऊदी अरब अफ्रीका उत्तरी अफ्रीका — घ उत्तरी भारत राज्य

2. व्यापारिक पशुपालन का कार्य निम्न में किस देश में नहीं है

क अर्जेंटीना — ख ऑस्ट्रेलिया

ग न्यूजीलैंड — घ बांग्लादेश

3. चेना क्या है?

क चावल — ख पशु

ग खिसकती खेती — घ कुछनही

4. फजेंडा किसे कहते हैं

क चाय बागान — ख कहवा बागान

ग आम बागान — घ कुछनही

5. कहवा की खेती के लिए कौन सा देश विश्व प्रसिद्ध है

क बाजील — ख नेपाल

ग पीरु — घ चीन

10.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो० आर०सी० तिवारी, प्रो० बी०एन० सिंह : कृषि भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद।
2. ब्रज भूषण सिंह : कृषि भूगोल, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।

3- Symon, L. : Agricultural Geography, Bell & Sons, London, 1967.

4- Kostrowicki, J : World Types of Agricuture, Polish Academy, Warsaw, Poland.

5- Noor Mohd. : New Dimensions in Agriculture, Concept, New Delhi, 1991.

6- Singh & Dhillon : Agricultural Geography, TATA Mc Graw Hill, New Delhi.

7- Whittlesey, D. : Major Agricultural Regions of the Earth, A.A.A.G. Vol 26.

10.7 अभ्यास प्रश्न

1. विश्व को कृषि प्रादेशिककरण निर्धारण की योजना को समझाते हुए किसी एक विषय प्रदेश का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. विद्वान लिटिल से द्वारा वर्गीकरण की योजना को समझाइए।
3. स्थानांतरण सेट करें की प्रमुख विशेषताओं को समझाते हुए यह बताइए कि यह कृषि आज विश्व में कहां कहां की जाती है।
4. चावल प्रधान जीविकोपार्जन कृषि का मुख्य क्षेत्र कहां है उसका सविस्तार वर्णन कीजिए ।
5. गहन निर्वाहन कृषि की प्रमुख विशेषताएं बताइए।
6. भूमध्यसागरीय कृषि व्यवस्था की प्रमुख विशेषता बताते हुए उसके क्षेत्र का निर्धारण कीजिए।
7. जीविकोपार्जन फसल उत्पादन कृषि व्यवस्था का सविस्तार वर्णन कीजिए।
8. विशिष्ट उद्यान कृषि की प्रमुख विशेषता समझाते हुए यह बताइए यह कृषि कहां की जाती है।

इकाई–11 वस्तु निर्माण उद्योग–स्थानीयकरण के कारक, बेवर का सिद्धान्त, विश्व में लौह–इस्पात उद्योग – उत्पादन एवं वितरण, विश्व में वस्त्र उद्योग – उत्पादन एवं वितरण

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उददेश्य

11.3 वस्तु निमार्ण उद्योग

11.3.1 वस्तु–निर्माण उद्योगों का वर्गीकरण

11.3.1.1 उत्पादों के आधार पर

11.3.1.2 श्रमिकों की संख्या के आधार पर

11.3.1.3 कच्ची सामग्री के आधार पर

11.3.1.4 स्वामित्व के आधार पर

11.3.1.5 निर्मित वस्तु के आधार पर

11.3.1.6 उत्पादन प्रक्रिया के आधार पर

11.4 कुटीर उद्योग

11.5 लघु पैमाने का उद्योग

11.6 वृहत् पैमाने के उद्योग

11.7 स्थानीयकरण के कारक

11.8 बेवर का सिद्धान्त

11.8.1 वेबर के सिद्धान्त की मान्यताएं

11.8.2 परिवहन लागत

11.8.3 श्रम की लागत

11.8.4 एकत्रीकरण का प्रभाव

11.8.5 वेबर के सिद्धान्त की आलोचना

11.9 विश्व में लौह–इस्पात उद्योग–उत्पादन एवं वितरण

11.10 विश्व में वस्त्र उद्योग–उत्पादन एवं वितरण

11.11 सारांश

11.12 बोध प्रश्न

11.13 सन्दर्भ पुस्तकें

11.14 अभ्यासप्रश्न

11.1 प्रस्तावना

अभी तक आपने आर्थिक भूगोल में विभिन्न संसाधनों के बारे पढ़ा है। अब आप इस इकाई के अन्तर्गत वस्तु निमार्ण उद्योग को परिभाषित किया गया है। हम यह भी जान सकेगें कि वस्तु निमार्ण उद्योग में कौन–कौन

से आर्थिक क्रियायें आती है। विभिन्न आधारों पर उद्योगों के वर्गीकरण के बारे में भी विस्तृत रूप से जान सकेगें। कुटीर उद्योग, लघु पैमाने के उद्योग एवं वृहत् उद्योग से आप परिचित हो सकेगें।

11.2 उददेश्य

इस इकाई में हम वस्तु निमार्ण उद्योग के विभिन्न आयामों के बारे में चर्चा करके अप जान सकेगें कि:

- भारत में वस्तु निमार्ण उद्योग के विकास के बारे में जान सकेगें।
- प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक उद्योग के बारे मे समझ विकसित कर सकेगें।
- विविध प्रकार के उद्योगों के महत्व को जान सकेगें।
- उत्पादक एवं उपभोग की वस्तुओं की जानकारी कर सकेगें।

11.3 वस्तु निर्माण उद्योग

किसी भी देश की देश की अर्थव्यवस्था में वस्तुनिमार्ण उद्योग की महत्वपूर्ण भूमिका है।मनुष्य को अपने जीवनयापन करने में भोजन, वस्त्र एवं मकान प्राप्त करने के लिए प्राविधिकी की आवश्यकता होती है। क्योंकि पृथ्वी पर प्राप्त सभी वस्तुओं का वह सीधे उपयोग नहीं कर सकता। इसके लिए उसे प्राप्त वस्तुओं के रूप एवं गुणधर्म में संवर्धन करके नई वस्तु का निमार्ण करना पड़ता है।यह कार्यउद्योग के अन्तर्गत आता है, जिसका तात्पर्य ऐसे क्रियाकलाप से है, जिसमें प्राथमिक उत्पाद से प्राप्त कच्ची सामग्री को शारीरिक या यांत्रिक विधि द्वारा उसके गुण–धर्मो परिवर्तन कर नवीन वस्तु का निमार्ण किया जाता है।इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को ही वस्तुनिमार्ण उद्योग कहते हैं।

हम वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखते है कि वस्तुनिमार्ण का अर्थ बहुत व्यापक और संलिष्ट हो गया है। वर्ष 1940 के बाद इसके अर्थ में व्यापक परिवर्तन आया है, क्योंकि पहले वस्तुनिमार्ण का तात्पर्य तकनीकी प्रक्रिया द्धारा वस्तु के गुणधर्म में परिवर्तन करके उसके मूल्य में वृद्धि से लगाया जाता था।आज के समय में वस्तुनिमार्ण प्रक्रिया अधिक संलिष्ट हो गयी है। अब उद्योगों की स्थापना में उत्पादन को प्रभावित करने वाले तत्वों कच्ची सामग्री, पूँजी, श्रम आदि की तुलना में बाजार, यातायात, संचार, तकनीक, शोध और राजनीतिक पक्षों की भूमिका अधिक प्रभावशाली हो गयी है।

11.3.1 वस्तु–निमाण उद्योगों का वर्गीकरण

आधुनिक युग में उद्योग का अर्थ बहुत व्यापक हो गया है। अनेक देशों में उद्योग की संश्लिष्टता इतनी अधिक बढ़ गयी है कि वहाँ के राष्ट्रीय उत्पादन में आधी से अधिक हिस्सेदारी हो गयी है। उद्योगों का वर्गीकरण विविध आधारों पर किया जाता है जिनमें मुख्यतः अधोलिखित है –

11.3.1.1 उत्पादों के आधार पर

11.3.1.2 श्रमिकों की संख्या के आधार पर

11.3.1.3 कच्ची सामग्री के आधार पर

11.3.1.4 स्वामित्व के आधार पर

11.3.1.5 निर्मित वस्तु के आधार पर

11.3.1.6 उत्पादन प्रक्रिया के आधार पर

11.3.1.1 उत्पादों के आधार पर उद्योगों का वर्गीकरण –

उद्योगों से उत्पादित सामग्री और उनकी प्रकृति के आधार पर उद्योग को मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है–

1. **प्राथमिक उद्योग** –ऐसे उद्योग जिसमें प्रकृति प्रदत्त संसाधनों को कच्ची सामग्री के रूप में संशोधित

कर माल तैयार किया जाता है। उदाहरण स्वरूप मिट्टी से बर्तन बनाना, गन्ने से गुड़ का उत्पादन, खनिज उत्खनन आदि।

2. **द्वितीयक उद्योग** –जिन उद्योगों में प्राथमिकउद्योग से प्राप्त सामग्री को कच्ची सामग्री के रूप में प्रयुक्त कर वस्तुओ का उत्पादन किया जाता है, द्वितीयक उद्योग के अन्तर्गत आता है जैसे– कागज उद्योग, मशीनी औजार आदि।

3. **तृतीयक उद्योग** –इसके अन्तर्गत वे उद्योग रखे जाते है जो सीधे उत्पादन प्रक्रिया में शमिल नहीं होते परन्तु प्राथमिक एवं द्वितीयक उद्योग के संचालन सहायता प्रदान करते है। उदाहरण के रूप में यातायात साधन, संचार साधन, बैकिंग क्षेत्र आदि।

11.3.1.2 श्रमिकों की संख्या के आधार पर उद्योगों का वर्गीकरण

उद्योगों को सुचारू रूप से संचालित करने में श्रमिकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उद्योगों में श्रमिकों की सहभागिता समान नहीं होती है। किसी उद्योग में श्रमिकों की अधिक संख्या में आवश्यकता होती है, तो किसी में कम श्रमिकों की आवश्यकता होती है। इसलिए श्रमिकों की संख्या के आधार पर उद्योंगों को तीन वर्गों में विभक्त किया जाता है–

1. **छोटे पैमानें के उद्योग** –छोटे पैमाने के उद्योग में स्थानीय स्तर की आवश्यकता के अनुसार स्थानीय संसाधनों से कम पूँजी और श्रमिकों द्वारा वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। ऐसे उद्योग कम जगह में भी खुल जाते है। इन उद्योगों का संचालन एक परिवार के सदस्यों द्वारा अपने घर में हो जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे उद्योग अधिक पाये जाते है। इसके अन्तर्गत बीड़ी उद्योग, बेकरी उद्योग, मिट्टी के बर्तन के उद्योग, खिलौना आदि उद्योग आतें है।

2. **मध्यम पैमाने के उद्योग** –ऐसे उद्योग जिनमें अपेछाकृत कम श्रमिकों की आवश्यकता होती है, उन्हें मध्यम पैमाने का उद्योग कहा जाता है। कम्प्यूटर, टेलीविजन, साइकिल आदि जैसे उद्योग इसके अर्न्गत आते है।

3. **बड़े पैमाने के उद्योग**–इस प्रकार के उद्योग मेंअधिक संख्या में मानव श्रम की आवश्यकता होती है। अधिक संख्या में मशीन भी लगे रहते है जिसको संचालित और वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए श्रमिकों की आवश्यकता होती है। काफी संख्या में श्रमिक पालियों में काम करते रहते है। इन उद्योगों से बड़ी मात्रा में वस्तुओं का भी उत्पादनहोता है। ऐसे उद्योग की स्थापना में अधिक पूँजी और जगह की भी आवश्यकता होती है। इस्पात उद्योग, एल्यूमीनियम उद्योग, वस्त्र उद्योग आदि इस श्रेणी में आते है।

11.3.1.3 कच्ची सामग्री के आधार पर उद्योगों का वर्गीकरण

उद्योगों से वस्तुओं के उत्पादन में विभिन्न प्रकार की कच्ची सामग्री प्रयुक्त की जाती है। कच्ची सामग्रीयों को उद्योग स्थल तक लाने में अधिक परिवहन खर्च पड़ता है। कुछ कच्ची सामग्रियां ऐसी होती है जिनका भार उत्पादन प्रक्रिया में कम हो जाता है, जिससे कारण इससे सम्बन्धित उद्योग कच्ची सामग्री के स्रोत के आस–पास स्थापित किये जाते है जैसे गन्ना, कपास, कोयला, लौह अयस्क आदि। इसके अलावा कई कच्ची सामग्रियां ऐसी होती है, जो हल्की तथा मूल्यवान होती है तथा उनका परिवहन व्यय भी कम आता है। कच्ची सामग्री के आधार पर उद्योग को दो मुख्य वर्गो में रखा जाता है–

1. **भारी उद्योग** –बहुत सी कच्ची सामग्रियां ऐसी है जो अधिक स्थान घेरती है एवं जिसका भार भी अधिक होता है। इन कच्ची सामग्रियों को दूर तक परिवहन करने पर खर्च भी अधिक आता है, जिसके कारण इन पर आधारित उद्योग को कच्ची सामग्री के स्रोत के निकट ही स्थापित किया जाता है। ऐसे उद्योग को भारी उद्योग कहते है। कागज उद्योग, चीनी उद्योग,लोहा–इस्पात उद्योग आदि भारी उद्योग के अन्तर्गत आते है।

2. **हल्के उद्योग** –इस प्रकार केउद्योग में हल्के एवं कीमती कच्ची सामग्रीका उपयोग होता है। कच्ची सामग्री एवं उत्पादित वस्तु का वजन हल्का होने के कारण परिवहन खर्च भी कम पड़ता है और दूर तक आसानी से परिवहन भी हो जाता है।

11.3.1.4 स्वामित्व एवं प्रबन्ध के आधार के आधार पर उद्योगों का वर्गीकरण –

स्वामित्व और प्रबन्धन के आधार पर उद्योगों को चार वर्गो में बाँटा जाता है–

1. **सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग**–जिनउद्योगों कास्वामित्व एवं प्रबन्धन का अधिकार देश या राज्य की सरकार के हाथ में होता है तो ऐसे उद्योग को सार्वजनिक क्षेत्र का उद्योग कहते है। इसकी स्थापना सरकार अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करने के लिए करती है। स्वतन्त्रता के बाद भारत में अनेक सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना की गयी है। जैसे हिन्दुस्तान एरोनॉटिक्स लिमिटेड, स्टील ऑथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड आदि सार्वजनिक का संचालन सरकार द्वारा होता है।
2. **निजी क्षेत्र के उद्योग** –किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह द्वारा जब उद्योगों की स्थापना एवं संचालन किया जाता है तो उसे निजी क्षेत्र का उद्योग कहते है।भारत में औद्योगिक नीति में परिवर्तन के कारण वर्ष 1990 के बाद तेजी से निजी क्षेत्र के उद्योगों का विकास हुआ है। वस्त्र, दवा, खाद्य सामग्री, चीनी आदिक्षेत्रों में निजी क्षेत्र के उद्योग उत्पादन कर रहे है।
3. **सम्मिलित क्षेत्र के उद्योग** –सामूहिक रूप से जब सरकार और निजी क्षेत्र उद्योग को स्थापित और संचालित करते है तो इसे सम्मिलित क्षेत्र का उद्योग कहते है। जैसे ऑयल इंडिया लिमिटेड, मारूति मोटरगाड़ी आदि इसके अन्तर्गत आते है।
4. **सहकारी क्षेत्र के उद्योग** –जब उद्योगों का स्वामित्व प्रजातांत्रिक ढ़ग से चुने हुए सहकारी समिति द्वारा स्थापित एवं संचालित होता है तो उसे सहकारी क्षेत्र का उद्योग कहते है। चीनी उद्योग, नारियल पर आधारित उद्योग, खाद्य–सामग्री पर आधारित उद्योग सहकारी क्षेत्र के उद्योग के अन्तर्गत स्थापित किये गए है।

11.3.1.5निर्मित वस्तु की प्रकृति के आधार पर उद्योगों का वर्गीकरण –

उद्योगों से विविध प्रकार की वस्तुएँ उत्पादित की जाती है, जिसका रूप, प्रकृति और गुणवत्ता भिन्न–भिन्न होती है।निर्मित वस्तुओं की प्रकृति के आधार पर उद्योगों को तीन वर्गो में बाँटा जा सकता है–

1. **बुनियादी उद्योग** –इसके अन्तर्गत ऐसे उद्योग आते है जिनसे उत्पादित सामग्री अन्य उद्योग के लिए कच्चा माल, मशीनरी एवं आधारभूत संरचना प्रदान करते है। इन उद्योगों के सहारे ही अन्य उद्योगों का विकास होता है। औद्योगिक विकास में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लौह–इस्पात, एल्यूमिनियम उद्योग, विद्युत उपकरण आदि इसके उदाहरण है।
2. **उपभोक्ता उद्योग** –ऐसे उद्योग जिनसे उत्पादित वस्तुओं का सीधे उपयोग उपभोक्ता द्वारा किया जाता है, उपभोक्ता उद्योग कहते है। जैसे7 वस्त्र, चीनी, दंतमंजन, कागज, पंखे, सिलाई मशीन आदि उपभोक्ता उद्योग के उदाहरण है।
3. **सेवा उद्योग** –सेवा उद्योग के अन्तर्गत वे उद्योग आते है जो सीधे किसी वस्तु का उत्पादन नहीं करते अपितु उपभोक्ता एवं उद्योग की सेवा करते है। ये उद्योग अन्य उद्योग को प्रबन्धन, परिवहन, बैकिंग, संचार, विधिक सहायता आदि के रूप में सेवा प्रदान करते है।

11.3.1.6 उत्पादन प्रक्रिया के आधार पर उद्योगों का वर्गीकरण –

आपने देखा होगा कि उद्योगों से मानवोपयोगी अनेक वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। इन उद्योगों में किसी का संचालन केवल मानव श्रम से तो किसी का संचालन मशीनो, विद्युत एवं मानव श्रम के द्वारा होता है। वस्तुओं के उत्पादन में कई प्रक्रियाओं का सहारा लेना पड़ता है। इन प्रक्रियाओं के आधार पर उद्योगों को चार वर्गो में विभाजित किया जाता है–

1. **निश्कर्शणीय उद्योग** –मनुष्य अपने आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पृथ्वी पर पाये जाने वाले संसाधनों का जब सीधे दोहन करता है तो ऐसे आर्थिक क्रियाकलाप को निष्कर्षणीय उद्योग कहते है। जैसे लकड़ी काटना, मछली पकड़ना, वन–वस्तुओं का संग्रहण खनिज उत्खनन आदि।

2. **पुनरूत्पादक उद्योग** –ऐसे उद्योगों द्वारा उत्पादित सामग्री जब किसी अन्य वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त होती है तो उसे पुनरूत्पादक उद्योग कहते है। जैसे कृषि यंत्र, कीटनाशक, विविध उद्योगों में प्रयुक्त यंत्र आदि।
3. **वस्तुनिर्माण उद्योग** –जिन उद्योगों द्वारा कच्ची सामग्री के रूप एवं गुण–धर्म में परिवर्तन करके मानव उपयोगी गुणवत्तापूर्ण वस्तुओ का निमार्ण किया जाता है उसे वस्तुनिमार्ण उद्योग कहा जाता है। इसे द्वितीयक उद्योग भी कहते है।वस्त्र, लोहा, सीमेंट, कागज उद्योग आदि इसके उदाहरण है।
4. **सहायक उद्योग** –बहुत से आर्थिक क्रियाकलाप ऐसे होते है जिनसे प्रत्यक्ष कोई उत्पादन नहीं होता अपितु वे उद्योगों के विकास एवं उत्पादन में सहायता करते है। इनके बिना उद्योगों की स्थापना एवं उत्पादन सम्भव नहीं है। जैसे– तकनीकी सहायता, बैकिंग, शिक्षा एवं प्रशिक्षण, प्रबन्धन, प्रशासन, स्वास्थ्य आदि तृतीयक एवं चतुर्थक क्रियाएं आती हैं।

उक्त विवेचन में आपने देखा कि विभिन्न आधारों पर उद्योगों को वर्गीकृत किया गया है।इन वस्तु–निमार्ण उद्योगों में किसी में छोटे पैमाने पर तो किसी में बड़े स्तर पर वस्तुओं का निमार्ण हो रहा है। कई उद्योग ऐसे है जिनकी भूमिका वस्तुओं के उत्पादन में सीधे तौर पर नहीं है परन्तु अप्रत्यक्ष तौर पर उद्योगों को संचालित करने में बड़ी भूमिका होती है। उद्योगों में मिट्टी के बर्तन से लेकर रेलवे, जलयान एवं रक्षा सामग्रीतक का उत्पादन किया जाता है, जिसका किसी देश के विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार उद्योग छोटे रूप से लेकर वृहत्तम पैमाने तक होता है। विभिन्न आधारों पर विभाजित किये गए उद्योगों को सामान्यीकृत करते हुए उत्पादन के पैमाने के आाधार पर तीन वर्गो में विभक्त किया जाता है–

1. कुटीर उद्योग
2. लघु पैमाने का उद्योग
3. वृहत् पैमाने का उद्योग

11.4 कुटीर उद्योग

उद्योगों का विकास कुटीर उद्योग के रूप में ही प्रारम्भ हुआ था। प्राचीन काल में लोग कृषि के साथ–साथ कुटीर उद्योग में भी संलग्न रहते थे। कुटीर उद्योग से वस्तुओं का निर्माण लघु पैमाने पर होता है, क्योंकि यह उद्योग मानवीय श्रम प्रधान है। पहले के समय में जब मशीनों एवं शक्ति के साधन उपलब्ध नहीं थें तब लोगों को अपने परिवार की आवश्यकता पूर्ति के लिए विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन स्वयं करना पड़ता था। तब कुटीर उद्योग बहुत विकसित और प्रचलित था। प्राचीन काल में कुटीर उद्योग अर्थव्यवथा की रीढ़ था। खाद्य सामग्री, वस्त्र, गृह निमार्ण सामग्री, कृषि उपयोग यंत्र आदि का उत्पादन कुटीर उद्योग द्वारा ही होता था। इस उद्योग का संचालन एक परिवार के लोगों द्वारा हो जाता है।

कुटीर उद्योग को स्थापित करने में अधिक पूँजी और जगह की आवश्यकता नहीं होती है। कम पूँजी और अपने घर पर ही लोग इस उद्योग स्थापित कर लेते है। जिसके कारण इसे गृह उद्योग भी कहते है। अधिकतर लोग कृषि एवं अन्य कार्य के साथ अतिरिक्त आय एवं खाली समय का उपयोग करते हुए कुटीर उद्योग के माध्यम से वस्तुओं का निर्माण करते रहते है। जिन क्षेत्रों चलवासी पशुचारण एवं शिकार अधिक होता है वहाँ के लोग पशुओं के चमड़ों एवं हड्डियों से जूते, वस्त्र, तम्बू आदि विविध प्रकार की वस्तुओं का निमार्ण करते है।

प्राचीन काल से ही भारत में कुटीर उद्योग के रूप में वस्तु विशेष का निमार्ण कार्य कुछ विशेष प्रकार के परिवार द्वारा होने लगा जैसे जुलाहों द्वारा कपड़ा बुनना, कुम्हार के द्वारा मिट्टी के बर्तन का निमार्ण करना आदि। यांत्रिक शक्तियों का प्रयोग वर्तमान समय में तीव्र औद्योगीकरण के कारण आधुनिक तकनीकि युक्त मशीनरी एवं विविध ऊर्जा के साधनों के उपयोग से आधुनिक उद्योगों से सस्ते वस्तुओं के निमार्ण से कुटीर उद्योग का मार्ग अवरूद्ध हो गया है। अब इन उद्योगों से कुटीर उद्योग को कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है।

11.5 लघु पैमाने का उद्योग

लघु पैमाने के उद्योग कुटीर उद्योग की अपेछा बड़े होतें है। जब उद्योगों में वेतनभोगी श्रमिको का उपयोग वस्तु निर्माण में किया जाने लगे तथा इनकी संख्या 50 से कम हो तो ऐसे उद्योग लघु पैमाने के उद्योग कहलाते है। इन उद्योगों में मशीन का उपयोग सीमित होता है। जिन उद्योगों में मशीन के उपयोग के साथ श्रमिकों की संख्या 20 से कम होती है वे उद्योग भी लघु उद्योग के अन्तर्गत आतें है।लघु उद्योग को स्थापित में कम पूँजी की आवश्यकता होती है। इन उद्योग के लिए पर्याप्त मात्रा में कच्चे माल एवं श्रमिक स्थानीय तौर मिल जाते है। इस प्रकार से लघु पैमाने के उद्योग उत्पादन प्रक्रिया में कुटीर उद्योग से भिन्न होते है। इन उद्योगों में स्थानीय स्तर पर उपलब्ध कच्ची सामग्री, साधारण मशीनों एंव अर्द्ध कुशल श्रमिकों का उपयोग किया जाता है। भारत, चीन, बांगलादेश, इण्डोनेशिया आदि विकासशील देशों में लघु पैमाने के उद्योग का अपेछाकृत अधिक विकास हुआ है।

11.6 वृहत् पैमाने के उद्योग

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप वृहत् उद्योगों का विकास प्रारम्भ हुआ है। शक्ति चालित मशीनों के आविष्कार के बाद बड़े स्तर पर उद्योग स्थापित होने लगे और उनसे कम समय में अधिकाधिक मात्रा में वस्तुओं का निमार्ण होने लगा। आगे चलकर तकनीकी विकास और वैज्ञानिक ज्ञान में वृद्धि के साथ–साथ हर प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन के उद्योग स्थापित होने लगे।लघु उद्योगों में जहाँ कारीगरों को शारीरिक श्रम अधिक करना पड़ता था वहीं अब वृहत् पैमाने के उद्योगों में स्थापित मशीनों को कारीगरों द्वारा संचालित करना होता है। वृहत् पैमाने के उद्योगों को स्थापित करने में पूँजी की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। उद्योग हेतु विभिन्न प्रकार की मशीनों, भवन, यातायात के साधन आदि पर बड़ी मात्रा में पूँजी खर्च होती है। मशीनरी को स्थापित करने, कच्चे माल को इकट्ठा करने, उत्पादित वस्तुओं की पैकिंग एवं भण्डारण, श्रमिकों के लिए आवास आदि के लिए पर्याप्त जगह की भी आवश्यकता होती है। वृहत् पैमाने के उद्योगों का विकास उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप से प्रारम्भ होकर आज विश्व के अनेक देशों में स्थापित हो चुके है। विकसित देशों में वृहत् पैमानें के उद्योगों का ही अधिक विकास हुआ है।

भारत में भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बादयोजनाबद्व तरीके से वृहत् पैमानें के उद्योगों का विकास हुआ है। लोहा–इस्पात उद्योग, मोटर उद्योग, जहाजरानी उद्योग, सीमेंट उद्योग, चीनी उद्योग, तेलशोधन उद्योग आदि के क्षेत्र वृहत् मात्रा में वस्तुओं का निमार्ण हो रहा है।

11.7 उद्योग का स्थानीयकरण

आपने देखा होगा कि किसी भी देश या क्षेत्र के आर्थिक विकास में उद्योगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भी बड़े पैमाने के उद्योग की स्थापना सर्वत्र नहीं हो सकती, क्योंकि उद्योगों के लिए जिन सामग्रियों एवं सुविधाओं की आवश्यकता होती है वह हर जगह सुलभ नहीं होता तथा सभी आवश्यक तत्व किसी एक स्थान पर नहीं मिलते है।इसलिए उद्योगों के स्थानीयकरण का अधिक महत्व है। उद्योगों को स्थापित करने के लिए कुछ ही ऐसे स्थल होते है जहॉ कम खर्च में सभी आवश्यक सामग्रियां एवं सुविधाएं मिल पाती है। पर दूसरी समस्या यह होती है कि उद्योगों में उत्पादित वस्तुओं का खपत एक ही स्थान पर नहीं होता अपितु उसका क्षेत्रीय विस्तार होता है। अब समस्या यह होती है कि उद्योग की स्थापना इस प्रकार की जाय जिससे क्षेत्र की मांग की पूर्ति हो सके। लेकिन मांग हेतु विभिन्न उद्योगों में प्रतिस्पर्धा होगी तथा उत्पादित पदार्थ की बाजार में न्यूनतम लागत पर वितरण की समस्या होगी।

अतः किसी उद्योग की स्थापना अन्य उद्योगों की अवस्थिति एवं वितरण को ध्यान में रख कर करना पड़ेगा। इस प्रकार से उद्योग की स्थापना किस स्थान पर किया जाय, इसका चुनाव करना बहुत कठिन समस्या है।

उद्योग स्थानीयकरण के सिद्धान्त

उद्योग की स्थापना में स्थान का चयन बहुत महत्वपूर्ण होता है। स्थान निर्धारण में प्रमुख समस्या उद्योग के आवश्यक तत्वों को एक स्थान पर एकत्र करना है।सभी तत्वों की विशेषतायें अलग–अलग और उद्योगों के

लिए उसका सापेक्षिक आकर्षण भिन्न–भिन्न प्रकार का होता है। अतः उद्योगों के स्थानीयकरण के लिए अनिवार्य तत्वों के सापेक्षिक आकर्षण की समस्या का समाधान विभिन्न सिद्धान्तों के माध्यम से हल किया जाता है। उद्योग स्थानीयकरण के लिए परिवहन लागत की समस्या का समाधान न्यूनतम लागत सिद्धान्त के द्वारा, क्षेत्रीय मांग की आपूर्ति का समाधान बाजार प्रतिस्पर्धा सिद्धान्त एवं अधिकतम लाभ प्राप्ति सिद्धान्त से किया जाता है। उद्योग स्थानीयकरण के प्रमुख सिद्धान्तों की व्याख्या अधोलिखित हैः

11.8.1 बेबर का सिद्धान्त

प्रख्यात जर्मन अर्थशास्त्री अल्फ्रेड नें उद्योग के स्थानीयकरण का सिद्धान्त प्रतिपादन का प्रथम विद्वान थे। अल्फ्रेड वेबर ने 1909 ई0 में जर्मन भाषा 'Uber den Standort den Industrien' में किया था। दुरूह जर्मन भाषा में होने के करण प्रारम्भ में उनके सिद्धान्त को अधिक क्ष्याति नहीं मिल सकी। इनके सिद्धान्त को प्रसिद्धि तब मिली जब सन 1929 इसका अंग्रेजी में अनुवाद 'Theory of Location of Industries' नाम से प्रकाशित हुआ।

वेबर ने अपने सिद्धान्त को समझाने के लिए परिभाषित शब्दों एवं मान्यताओं का सहारा लिया, जो अधोलिखित है–

परिभाशिक भाब्द

- **सर्वत्र सुलभ पदार्थ** ऐसे पदार्थ जो सभी स्थानों पर सुगमता से प्राप्त हो जाते है तथा जिनके लिए सभी जगह एक ही मूल्य चुकाना पड़ता है। इन पदार्थ को सर्वत्र सुलभ पदार्थ कहते है। जैसे– मिट्टी, जल, वायु इत्यादि।
- **स्थानीय पदार्थ** वे पदार्थ जो किसी क्षेत्र विशेष या किसी स्थान में ही प्राप्त होते है, हर जगह नहीं स्थानीय पदार्थ कहलाते है।
- **भाुद्ध पदार्थ** कुछ कच्ची सामाग्री ऐसी होती है जिनका वजन वस्तु के निमार्ण में घटता नहीं है, शुद्ध पदार्थ कहलाते है। उदाहरण स्वरूप सूत से धागा बनाते समय कपड़े का वजन सूत के भार के बराबर होता है।
- **मिश्रित पदार्थ**वे स्थानीय पदार्थ जिनका भार वस्तु उत्पादन प्रक्रिया में कम हो जाता है, मिश्रित पदार्थ कहलाता है। जैसे बाक्साइट से एल्युमिनियम बनाने की प्रक्रिया में उत्पादित वस्तु कच्ची सामाग्री के भार की अपेछा हल्की होती है।
- **पदार्थ सूचकांक** पदार्थ सूचकांक ,उत्पादित वस्तु एवं कच्ची सामग्री के वजन अनुपात को कहते है। शुद्ध पदार्थ का पदार्थ सूचकांक 1 होता है।
- **स्थानीयकरण भार** प्रति इकाई वस्तु उत्पादन के लिए कच्ची सामग्री और उत्पादित वस्तु दोनो मिलाकर जितने भार का परिवहन करना होता है उसे स्थानीयकरण भार कहते है। सर्वसुलभ पदार्थों का उपयोग करने वाले उद्योग का स्थानीयकरण भार 1 होता है क्योंकि केवल उत्पादित वस्तु का ही परिवहन करना पड़ता है। यदि शुद्ध पदार्थ से वस्तु निर्मित करने वाले उद्योग है तो उन्हें कच्ची सामाग्री और उत्पादित वस्तु दोनों का बराबर–बराबर भार परिवहन करना पड़ता है, इसलिए उसका स्थानीयकरण भार 2 होगा।
- **आइसोडापेन** उस प्रदर्शित करने वाली रेखा को जो समान परिवहन लागत को दर्शाता है, आइसोडापेन कहते है।

11.8.1.1 वेबर के सिद्धान्त की मान्यताएं

वेबर ने अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन में अधोलिखित मान्यताओं का सहारा लिया है–

1. जहाँ कारखाने की स्थापना करनी हो वह एक विलग स्वतंत्र इकाई हो और एक ही प्रशासनिक व्यवस्था के अधीन हो। यहाँ सर्वत्र समान जलवायु, संस्कृति, तकनीक आदि भौगोलिक दशाओं में समानता पायी जाती है।

2. उद्योग की स्थानीयकरण का विश्लेषण एक समय में एक ही उत्पादन वस्तु के संदर्भ में किया जा रहा है। अतः एक ही प्रकार की परन्तु भिन्न गुणों वाली वस्तुएं है तो उसे भिन्न वस्तुएं मानी जायेंगी।
3. कच्ची सामाग्री के स्रोत तथा उसकी स्थिति का पूरा ज्ञान है।
4. बाजार के स्थान का भी पूरी तरह से ज्ञान हैं। बाजार एक दूसरे से पृथक बिन्दु रूप में ही है। अप्रत्यक्ष तौर पर बाजारों में वस्तुओं की आपूर्ति को लेकर पूर्ण प्रतिस्पर्धा की स्थिति विद्यमान है। प्रत्येक उत्पादक को असीमित बाजार सुलभ है,कोई भी उत्पादक किसी स्थान पर कारखाना स्थापित करके बाजार में एकाधिकार प्राप्त नहीं कर सकता।
5. श्रम सभी जगह समान रूप से उपलब्धनहीं होते बल्कि कुछ निश्चित प्रदेशों में उपलब्ध होते हैं। कुछ स्थानों पर निर्धारित दर पर पर्याप्त संख्या में मजदूर उपलब्ध होते है।
6. कच्चामाल या उत्पादित वस्तु का परिवहन व्यय केवल भार एवं दूरी के अनुपात में ही बढ़ता है।

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर वेबर ने बताया कि उद्योग की स्थापना कहाँ की जाय जिससे अधिकतम लाभ प्राप्त हो। इनके अनुसार उद्योग की अवस्थिति को परिवहन लागत, श्रम लागत एवं समूहन अथवा एकत्रीकरण के लाभ निर्धारित करते है। वे सर्वप्रथम यह निश्चित करते है कि किसी प्रकार न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु निर्धारित हो, तत्पश्चात श्रम तथा एकत्रीकरण द्वारा लाभ ध्यान दिया जाता है।

11.8.1.2 परिवहन लागत

वेबर ने उद्योग की स्थापना में परिवहन व्यय को प्रमुख स्थान दिया है। कच्चे माल एवं उत्पादित वस्तु का न्यूनतम परिवहन व्यय यह निर्धारित करता है कि उद्योग की स्थापना कच्ची सामाग्री के स्रोत पर हो या बाजार के निकट अथवा दोनों के मध्य किसी स्थान परहो। न्यूनतम परिवहन व्यय का विश्लेषण दो दशाओं के आधार पर किया गया हैः

प्रथम दशा–एक बाजार और एक कच्चा माल स्रोत

इस दशा में यदि मान लिया जाय कि उद्योग में एक ही कच्ची सामाग्री का उपयोग होता है जो स्रोत । से प्राप्त होता है तथा उत्पादित वस्तु की खपत एक ही बाजार बिन्दु B पर होती है। ऐसी स्थिति में उद्योग की स्थापना की सम्भावना चार स्थानों पर हो सकती है–

I. यदि कच्ची सामाग्री सर्वत्र सुलभ है तो उद्योग की स्थापना बाजार बिन्दु B पर होगा क्योंकि इससे कच्चे माल एवं उत्पादित वस्तु के परिवहन व्यय पर खर्च बहुत कम होगा ।

II. यदि कच्ची सामाग्री शुद्ध तथा स्थानीय है तो उद्योग बाजार या कच्ची सामाग्री अथवा उन दोनों के मध्य किसी बिन्दु पर स्थापित हो सकता है। ऐसा इसलिए क्योंकि किसी भी दशा में परिवहन लागत एक समान होता है। इसको इस प्रकार से समझ सकते है, यदि कच्ची समाग्री के स्रोत पर उद्योग स्थापित होता है तो कच्ची सामाग्री पर परिवहन व्यय कम और उत्पादित वस्तु को बाजार में पहुँचाने पर परिवहन व्यय अधिक होगा। यदि उद्योग की स्थापना बाजार बिन्दु पर किया जाय तो कच्ची सामाग्री को बाजार तक लाने में परिवहन व्यय अधिक खर्च होगा और उत्पादित वस्तु पर कम तथा उद्योग को यदि बाजार एवं कच्ची सामाग्री के स्रोत के मध्य किसी बिन्दु पर स्थापित किया जाय तो दोनो का परिवहन व्यय बराबर होगा।

III. यदि कच्चा पदार्थ मिश्रित पदार्थ है तो उद्योग की स्थापना कच्ची सामाग्री के स्रोत पर होगी। ऐसा इसलिएक्योंकि मिश्रित पदार्थ में सम्मिलित अनावश्यक भार उत्पादन प्रक्रिया में कम हो जायेगा और कम भार वाली उत्पादित वस्तु का ही बाजार तक परिवहन खर्च पड़ेगा।

दूसरी दशा : एक बाजार और दो कच्ची सामाग्री का स्रोत

यदि किसी उद्योग में वस्तु के निर्माण में दो कच्ची सामाग्रीयों का उपयोग होता है और उस वस्तु का बाजार एक स्थान पर स्थित हो तो ऐसी दशा में उद्योग के स्थापना की निम्न सम्भावना हो सकती है–

I. यदि दोनों कच्ची सामग्रियां सर्वत्र सुलभ है तो उद्योग की स्थापना बाजार बिन्दु पर होगा क्योंकि ऐसी दशा में परिवहन व्यय न्यूनतम होगा।

II. यदि कच्ची सामग्रियां शुद्ध पदार्थ है तो उद्योग की स्थापना बाजार बिन्दु पर ही होगी। ऐसी स्थिति में दोनों कच्चे माल चित्र 14.1 के अनुसार R1 और R2 स्रोत से बाजार भेज दी जायेगी तो कुल खर्च कम पड़ेगा। यदि एक कच्ची सामग्री को दूसरे कच्ची सामग्री तक ले जाया जाय तो उत्पादित सामग्री को बाजार भेजना पड़ेगा जो दोनों कच्ची सामग्रियों के कुल भार के बराबर होगा। इस तरह से एक कच्ची सामग्री को दूसरे कच्ची सामग्री के स्रोत तक ले जाने पर अतिरिक्त परिवहन व्यय खर्च करना पड़ेगा। यदि दूसरी कच्ची सामग्री का स्रोत पहली कच्ची सामग्री और बाजार बिन्दु के मध्य में स्थित हो तो भी उद्योग की स्थापना बाजार बिन्दु पर होगी क्योंकि कच्ची सामग्री को उतारने तथा उत्पादित वस्तु को लादने का अतिरिक्त खर्च वहन करना पड़ेगा।

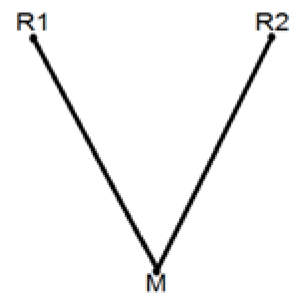

चित्र 11.1

III. उद्योग में प्रयुक्त कच्ची सामग्री यदि शुद्ध पदार्थ और सर्वत्र सुलभ पदार्थ है तो उद्योग की स्थापना बाजार बिन्दु पर होगा। ऐसी दशा में शुद्ध पदार्थ के लिए किसी भी बिन्दु उद्योग स्थापित हो परन्तु बाजार बिन्दु पर स्थापित होने पर सर्वत्र सुलभ पदार्थ के लिए अतिरिक्त परिवहन खर्च नहीं देना पड़ेगा।

IV. चित्र 14.2 के अनुसार यदि दोनों कच्ची सामग्रियां मिश्रित पदार्थ है तो उद्योग के स्थान निर्धारण का कार्य कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में उद्योग की स्थापना के लिए वेबर महोदय ने स्थानीयकरण त्रिभुज का सहारा लिया। त्रिभुज के आधार के सिरों पर प्रथम कच्चे माल का स्रोंत A दूसरे कच्चे माल का स्रोत B है और इसके शीर्ष बिन्दु पर बाजार बिन्दु C को मान लिया जाए तो उद्योग की स्थापना निम्न आधार पर होगीः

यदि मान लिया जाय कि दोनों कच्ची सामाग्री से निर्मित वस्तु उत्पादन प्रक्रिया में 50–50 प्रतिशत कम हो जाती है और प्रत्येक की उद्योग में माँग 1000 टन प्रतिवर्ष है तथा दोनों कच्ची सामग्रियों के स्रोत्र और बाजार बिन्दु एक दूसरे से 100–100 किमी की दूरी पर स्थित है। इस स्थिति में उद्योग किस स्थान पर स्थापित किया जाय कि परिवहन व्यय न्यूनतम हो, अधोलिखित गणना से जान सकते हैः

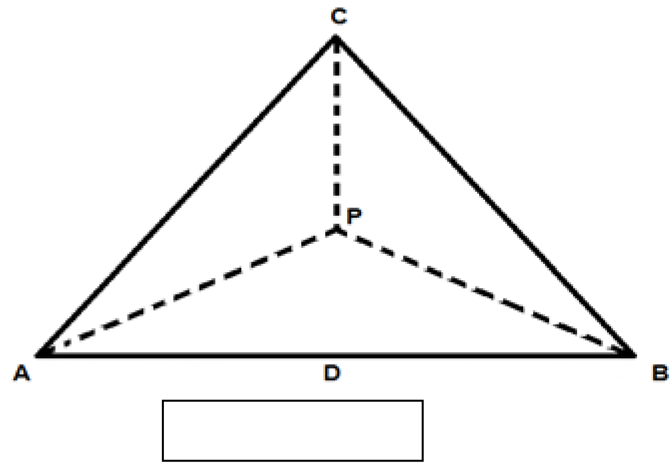

स्थानीयकरण का त्रिभुज

चित्र 11.2

- यदि उद्योग को बाजार बिन्दु C पर स्थापित किया जाय तो परिवहन व्यय होगा :

  A से बाजार बिन्दु C तक परिवहन व्यय = 1,000 टन ×100 किमी.

  = 1,00,000 टन किमी.

  B से बाजार बिन्दु C तक परिवहन व्यय = 1,000 टन ×100 किमी.

  = 1,00,000 टन किमी.

  दोनों कच्ची सामग्रियों को बाजार तक पहुँचानें का कुल परिवठन व्यय

  = 2,00,000 टन किमी.

- यदि दोनों कच्ची सामग्रियों के स्रोत में से A या B पर उद्योग को स्थापित किया जाय तो परिवहन व्यय होगा :

  यदि मान लिया जाय उद्योग A बिन्दु पर स्थापित किया गया है तो

  A से B तक परिवहन व्यय = 1,000 टन ×100 किमी.

  = 1,00,000 टन किमी.

  Aसे बाजार बिन्दु C तक परिवहन व्यय = 1,000 टन ×100 किमी.

  = 1,00,000 टन किमी.

कच्ची सामग्री और उत्पादित वस्तु को बाजार तक पहुँचाने का कुल परिवहन व्यय

= 1,00,000. 1,00,000 टन किमी.

= 2,00,000 टन किमी.

यदि उद्योग को C बिन्दु पर स्थापित किया जाय तो भी कुल परिवहन व्यय 2,00,000 टन किमी. होगा।

- उक्त तीनों स्थानों से हटकर यदि उद्योग को दोनों कच्ची सामग्रियों के स्रोत Aएवं B के मध्यवर्ती बिन्दु D पर स्थापित किया जाये तो परिवहन व्यय :

A से D तक परिवहन व्यय = 1,000 टन × 50 किमी.

=50,000 टन किमी.

B से D तक परिवहन व्यय= 1,000 टन × 50 किमी.

=50,000 टन किमी.

उत्पादित वस्तुओं के 1000 टन भार को D बिन्दु से बाजार बिन्दु C तक पहुँचानें का परिवहन व्यय = 1000 टन × 87 किमी.

= 87,000 टन किमी.

कुल परिवहन व्यय(A+B+C) = 50,000. 50,00087,000

= 1,87,000 टन किमी.

- परन्तु यदि त्रिभुज के अन्दर इन तीनों बिन्दुओं के बीच Pबिन्दु पर उद्योग को स्थापित किया जाय तो परिवहन व्यय और कम हो जायेगा। इसे इस प्रकार से समझ सकते है:
- A से P तक परिवहन व्यय = 1,000 टन × 50 किमी.

= 50,000 टन किमी.

B से P तक परिवहन व्यय = 1,000 टन × 50 किमी.

= 50,000 टन किमी.

उत्पादित वस्तुओं के 1000 टन भार को P बिन्दु से बाजार बिन्दु C तक पहुँचानें का परिवहन व्यय = 1000 टन × 71 किमी.

= 71,000 टन किमी.

कुल परिवहन व्यय = 50,000. 50,00071,000

= 1,71,000 टन किमी.

उपर्युक्त गणना से स्पष्ट है कि उद्योग को A Bया C स्थान पर स्थापित करने पर परिवहन व्यय अधिक होगा, जबकि इसकीतुलना में क बिन्दु पर स्थापित करने पर परिवहन व्यय कम होगा। सबसे आदर्श स्थिति त्रिभुज के अन्दर P बिन्दु होगा जहाँ परिवहन व्यय सबसे कम होगा और समय की बचत होगी। यदि किसी एक कच्ची सामाग्री का भार अधिक है और उत्पादन प्रकिया में ह्रास कम होता है तो उद्योग की स्थापना का बिन्दु उसकी तरफ आकर्षित होगा।

11.8.1.3 श्रम की लागत–

परिवहन खर्च के साथ ही वेबर ने श्रम की लागत को भी उद्योग के स्थनीयकरण में महत्वपूर्ण माना है। उनका मानना है कि श्रम की लागत स्थान–स्थान पर अलग–अलग होता है तथा कुछ निश्चित स्थानों पर मिलता है। श्रम पर खर्च कम करने के लिए उद्योग की स्थापना उस बिन्दु से हटकर हो सकती है जो परिवहन की दृष्टि से सर्वोत्तम है, परन्तु उस बिन्दु से हटने पर परिवहन पर खर्च जितना बढ़ता है उससे अधिक या उतना श्रम के खर्च में बचत हो। परिवहन व्यय की दृष्टि से सर्वोत्तम बिन्दु से हटने पर जिन–जिन बिन्दुओं पर परिवहन खर्च में इकाई वृद्धि होती है उसको मिलाने वाली रेखा को आइसोडापेन कहते है।

इसे हम चित्र 14.3 के माध्यम से समझ सकते है। चित्र में M बाजार बिन्दु है एवं N बिन्दु पर कच्ची सामाग्री उपलब्ध है।अब यदि मान लिया जाय कि प्रति इकाई उत्पादन के लिए दुगुने वजन की कच्ची सामाग्री का उपयोग होता है। ऐसी स्थिति में उद्योग की स्थापना कच्ची सामाग्री के स्रोत्र N बिन्दु पर होगी। चित्र में M बिन्दु को केन्द्र मान कर खींचे गये वृत्त खण्ड उत्पादित वस्तु के परिवहन व्यय को प्रदर्शित करता है तथाछ बिन्दु को केन्द्र मानकरखींचे गये वृत्त खण्ड कच्ची सामाग्री का परिवहन व्यय बताते है। चूंकि कच्ची सामाग्री का

परिवहन व्यय, उत्पादित वस्तु के परिवहन व्यय का दूना है इसलिए M बिन्दु से खींचे गये सकेन्द्रीय वृत्त N बिन्दु से दूने के अन्तर पर दिखाये गये है।

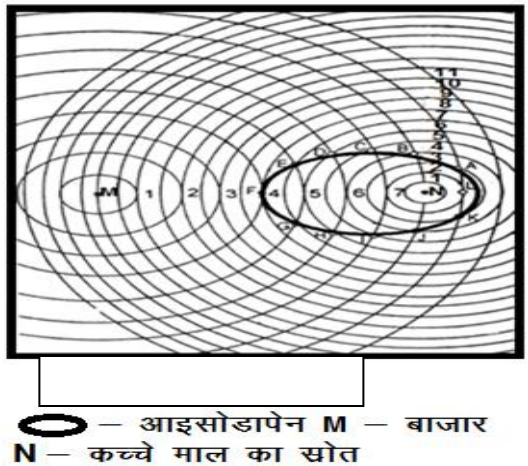

चित्र 11.3

अब यदि मान लेते है कि उद्योग को N बिन्दु पर न स्थापित करके B बिन्दु पर स्थापित करते है तो उत्पादित वस्तु का परिवहन व्यय 8 इकाई ही खर्च होगा, जितना N बिन्दु पर होता है, परन्तु कच्ची सामाग्री पर 4 इकाई का अतिरक्त खर्च आयेगा। इस प्रकार परिवहन खर्च कुल 12 इकाई होगा जो N बिन्दु की अपेछा 4 इकाई अधिक है। उसी प्रकार B के अलावा A, C, D, E, F, G, H, I,J, K, L, सभी ऐसे बिन्दु है जहाँ उद्योग स्थापित करने पर N बिन्दु की तुलना में 4 इकाई अतिरिक्त परिवहन खर्च होगा।अतः इन बिन्दुओं को मिलाकर खींची गयी रेखा आइसोडापेन है जिसका मान 4 इकाई है। यदि इन बिन्दुओं पर उद्योग को स्थापित करनेपर श्रम में लगने वाले खर्च में कम से कम 4 इकाई की बचत होती है तो उद्योग को इनमें से किसी भी बिन्दु पर स्थापित किया जा सकता है। इसके बाहर उद्योग को स्थापित करने पर हानि उठानी पड़ेगी। ऐसी स्थिति में 4 इकाई वाले मान को क्रान्तिक आइसोडापेन कहते है।

11.8.1.4 एकत्रीकरण का प्रभाव–

वेबर महोदय उद्योग को स्थापित करने में परिवहन व्यय तथा श्रम के प्रभाव की ही तरह एकत्रीकरण के प्रभाव को भी महत्व दिया है। एकत्रीकरण तीन प्रकार से होता है–

- उद्योग के विस्तार से, जिसके कारण बड़े पैमाने पर उत्पादन जन्य लाभ प्राप्त हो सके।
- बड़ी संख्या में एक ही प्रकार के उद्योग एक स्थान पर स्थापित हो, जिससे सामान्य तकनीकी सुविधायें तथा उत्पादित वस्तु के लिए विक्रय संबंधी सुविधायें प्राप्त होती है।
- एक स्थान पर विभिन्न प्रकार के उद्योगों के स्थापित होने से सामूहिक रूप से सामान्य सुविधायें जैसे परिवहन के साधन आदि पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते है।

वेबर के अनुसार यदि मान लिया जाय कि उद्योग के उत्पादन खर्च में श्रम का कोई प्रभाव नहीं है, और हम उद्योग को परिवहन खर्च की दृष्टि से सर्वोत्तम बिन्दु से एकत्रीकरण बिन्दु की ओर ले चलें तो जितना परिवहन खर्च बढ़ेगा यदि उतना लाभ एकत्रीकरण से होगा। अतः उद्योग की स्थापना परिवहन की दृष्टि से सर्वोत्तम बिन्दु से हट उतनी दूर हो सकी है जहाँ तक एकत्रीकरण से उत्पन्न लाभ परिवहन व्यय की दृष्टि से अधिक अथवा बराबर हो।

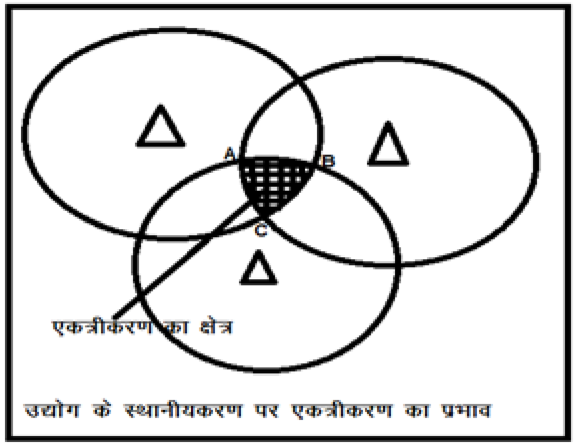

चित्र 11.4

चित्र 11.4 में तीन स्थानीयकरण त्रिभुज दिये हुए है। प्रत्येक त्रिभुज में एक ऐसा बिन्दु है जो परिवहन की दृष्टि से सर्वोत्तम है। इसे केन्द्र मानकर आइसोडापेन खींचे गये है जिनमें से प्रत्येक का मान 5 इकाई है। ऐसी स्थिति में उद्योग की स्थापना आदर्श स्थिति से हटकर 5 मान वाले तीनों आइसोडापेन के मध्यवर्ती किसी भी बिन्दु पर स्थापित किया जा सकता है,परन्तु तब जबकि एकत्रीकरण से 5 इकाई या अधिक का लाभ प्राप्त हो। एकत्रीकरण में वृद्धि होने से होने वाले लाभ में भी वृद्धि हो जाती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर वेबर महोदय ने अधोलिखित निष्कर्ष निकाले है–

- उद्योग के स्थानीयकरण में परिवहन व्यय का सामान्य प्रभाव नहीं अपितु विभिन्न स्थानों के सापेक्षिक परिवहन व्यय का प्रभाव पड़ता है।
- उद्योग की स्थापना शुद्ध पदार्थ वाली कच्ची सामाग्री के स्रोत पर होना अनिवार्य नहीं होता है।
- उद्योग को ऐसे कच्ची सामाग्री के स्रोत्र आकर्षित करते है जो मिश्रित प्रकार के होते है। यदि उद्योग में एक से अधिक कच्ची सामाग्री का उपयोग होता है, तो उनमें से सबसे अधिक भार वाली कच्ची समाग्री की तरफ उद्योग स्थापित होगा।
- उद्योगों में प्रयुक्त कच्ची सामाग्रीयों का पदार्थ सूचकांक कम है तो वे बाजार की तरफ आकर्षित होंगे और यदि अधिक है तो कच्ची सामाग्री की तरफ।
- स्थनीयकरण त्रिभुज के भीतर उद्योग की स्थापना कच्ची सामाग्री के सापेक्षिक भार पर निर्भर करती है। यदि सापेक्षिक भार अधिक है तो उद्योग कच्ची सामाग्री के स्रोत पर स्थापित होगा। उद्योग में प्रयुक्त सभी कच्ची सामग्रियों का भार यदि कम है तो उसकी स्थापना में श्रम का प्रभाव अधिक होगा।

11.8.2 वेबर के सिद्धान्त की आलोचना–

वेबर ने इस सिद्धान्त के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि कौन सा स्थान उद्योग की स्थापना की दृष्टि से उपयुक्त है जिससे अधिक लाभ प्राप्त हो सके। इनका सिद्धान्त ऐसी मान्यताओं के आधार पर प्रारम्भ होता है जो वास्तविक जगत में प्राप्त नहीं हैं। वेबर के सिद्धान्त की आलोचनायें इस प्रकार से हैः

- वेबर ने उद्योग की स्थापना में परिवहन लागत पर आवश्यकता से अधिक ध्यान दिया है। उत्पादन प्रक्रिया एवं वस्तुओं के माँग पक्ष पर ध्यान नहीं दिया है।
- इस सिद्धान्त का सम्पूर्ण विवेचन बाजार केन्द्र तथा कच्ची सामग्री को निश्चित बिन्दु मानकर हुआ है।परन्तु कच्ची सामग्री का क्षेत्र व्यापक होता है और मांग के अनुसार कृषिगत और वन्य आधारित कच्ची सामग्री क्षेत्र का विस्तार होता है।

- परिवहन व्यय में वृद्धि कच्ची सामग्री के भार और दूरी के अनुपात में माना है, जबकि वास्तविक रूप में परिवहन खर्च बढ़ती दूरी के अनुपात में घटता है।

11.9 विश्व में लौह–इस्पात उद्योग–उत्पादन एवं वितरण

लौह–इस्पात उद्योग–लौह–इस्पात उद्योग आधुनिक औद्योगिक युग की आधारशिला है। आधुनिक निर्माण उद्योगों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण लौह–इस्पात का निर्माण है क्योंकि अन्य निर्माण उद्योगों के लिए लौहा–इस्पात कच्चे माल की तरह प्रयुक्त होता है। अतएव इसे आधारभूत उद्योग या धुरी उद्योग भी कहा जाता है। स्थानीयकरण के कारकरू परम्परागत रूप से भारी इस्पात उद्योग की अवस्थिति कच्चे माल के भण्डारों के समीप ही होती है। जहाँ लौह अयस्क, कोयला, मैंगनीज, चूना पत्थर आदि पदार्थ आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। इसके अलावा इस उद्योग के लिए अन्य निम्न कारक, स्थानीयकरण में महत्वपूर्ण हैं –

1. परिवहन एवं यातायात के साधन
2. सस्ती जलविद्युत शक्ति।
3 कुशल श्रमिक।
4. पूंजी की उपलब्धता
5. वित्तीय एवं बैंकिंग सुविधाएँ
6. बाजार की सुविधा
7. राजनीतिक प्रोत्साहन आदि।

सारणी–11.1 विश्व में कच्चा लोहा एंव कच्चा इस्पात उत्पादक देश

देश	कच्चा लोहा	कच्चा इस्पात
चीन	131.23	128.5
जपान	80.5	105.4
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	47.9	102.0
रूस	43.3	55.6
जर्मनी	27.3	41.7
दक्षिण कोरिया	24.8	43.4
ब्रजील	27.7	27.8
यूक्रेन	25.7	31.7
भारत	21.3	26.9

विश्व के विकसित देशों में लौह–इस्पात का अधिक केन्द्रीयकरण हुआ है। चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, रूस तथा जर्मनी प्रमुख लौह–इस्पात उत्पादक देश हैं। इसके अलावा दक्षिण कोरिया, यूक्रेन, ब्राजील, इटली और भारत में भी लौह–इस्पात का उत्पादन होता है। प्रमुख देशों में इसका वितरण निम्नलिखित प्रकार से है –

चीन–

चीन में लोहे के फैब्रिकेटर की सबसे पुरानी प्रणाली है, जैसा कि इसके ऐतिहासिक रिकॉर्ड से स्पष्ट होता है।1953 में उनकी पंचवर्षीय योजना को अपनाने से पहले तक, चीन के पास आधुनिक प्रकार का लोहा और इस्पात निर्माण नहीं था। चीन ने लोहे और इस्पात उद्योग का विकास किया है और अब यह दुनिया में लोहे और इस्पात का सबसे अधिक उत्पादन करने वाला देश है।1973 के बाद से, चीन में इस्पात उत्पादन में वृद्धि हुई है और 15 वर्षों के भीतर चीन कच्चे इस्पात के उत्पादन को 217% तक बढ़ाने में सक्षम रहा था।उस अवधि के खपत में 300 % की वृद्धि हुई हैं। यह वृद्धि दर स्पष्ट रूप से औद्योगीकरण की तेज गति को प्रकट करती है जो अभी चीन में चल रही है।लोहा और इस्पात उद्योग अनशन, वुहान और पाओटो त्रिकोण में केंद्रित है। जापानी द्वारा मैनचुरिया के अनशन में चीनी मुख्य भूमि में सबसे बड़ी लोहे और इस्पात की फैक्ट्री स्थापित की गई थी, लेकिन रूसी मदद से चीनियों द्वारा बहुत विस्तार किया गया। मंचूरिया में अन्य लौह और इस्पात उत्पादन केंद्र फुषुन, पेनकी, शेनयांग, हार्फिन और किरिन हैं।वुहान स्टील प्लांट अभी विस्तार की प्रक्रिया में है। अन्य कम व्यापक एवं नए स्टील प्लांट टायर्सिन, तांगशान, नानकिंग, शंघाई, आदि में बनाए जा रहे हैं। चीन के महत्वपूर्ण लौह एवं इस्पात उद्योग के क्षेत्र निम्नलिखित हैं :–

a. दक्षिणी मंचूरिया, अनशन में चीन का सबसे बड़ा स्टील प्लांट है एवं पेंसिहु,मुक्डन में अन्य संयंत्र हैं।

b. शांसी लोहे और इस्पात उत्पादन का पुराना क्षेत्र है। इस क्षेत्र में ताइयुआन को एक प्रमुख इस्पात केंद्र के रूप में विकसित किया गया है।

c. निचली यांग्त्ज़ी घाटीरू– इस क्षेत्र में हैंकोव, शंघाई, हयांग और चुंगकिंग लोहा एवं इस्पात उद्योग के मुख्य केंद्र हैं।

d. अन्य केंद्र पाओटो, चिनलिंग चेन, कैंटन, सिंगताओ और हुआंगसिह में स्थित हैं।

चीन में लोहे और इस्पात उद्योग का विकास शानदार रहा है। 1973 के बाद से, चीन ने स्टील के उत्पादन में 220 प्रतिशत की वृद्धि की है, हालाँकि स्टील की खपत में भी 300 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई है।

जापान–

कच्चे माल (लोहा और कोयला) की कमी के बावजूद, जापान दुनिया के प्रमुख इस्पात उत्पादकों में से एक बन गया है। चीन के बाद जापान दुनिया में कच्चा लोहा और कच्चा इस्पात का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है।पहला स्टील प्लांट यावता जो कि 1901 में सरकार द्वारा बनाया गया था। जापान की लगभग पाँचवीं इस्पात क्षमता का एक बड़ा केंद्र यवता भारी उद्योग है। होन्शू में कामिशी एवं होक्काइडो में मुरोरन छोटे टीडवाटर सम्बंधित उद्योग हैं। यह क्षेत्रीय खनिज संसाधनों और उन कारखाने से सीधे जुड़े हुए, जिसमें बड़े पैमाने के कारखाने की संख्या केवल कामिशी, कोसाका, ओसारिजावा, हस्सी, होसोकुरा (मियागी) और फुजाइन (इवाते) में है। जापान की आधी से अधिक इस्पात क्षमता दक्षिण मध्य होन्शू के प्रमुख बंदरगाह शहरों के आसपास हीमीजी, कोबे–ओसाका और टोक्यो–याकोहामा क्षेत्रों के पास केंद्रित है। जापान के प्रमुख लौह एवं इस्पात उद्योग के क्षेत्र निम्नलिखित हैं:–

टोक्यो–याकोहामा क्षेत्र–

इसमें लौह–इस्पात उद्योग के विकास के लिए आवश्यक सभी सुविधाएं उपलब्ध हैं। टोक्यो खाड़ी के पुनर्ग्रहण ने इस्पात निर्माण इकाइयों के लिए बड़ी, व्यापक भूमि प्रदान की है। टोक्यो–चीन क्षेत्र इस क्षेत्र का सबसे मुख्य क्षेत्र है जिसमें हिटाची और उत्तरी टोक्यो में इस्पात औद्योगिक इकाइयाँ विकसित की गई हैं।

नागोया क्षेत्र–

यह जापानी इस्पात उत्पादन में लगभग 20 प्रतिशत का योगदान देता है। इस क्षेत्र ने 1950–60 की अवधि के दौरान उद्योगों का भारी विकास देखा था।

ओसाका–कोबे क्षेत्र–

ओसाका खाड़ी के सिर पर, एक अत्यधिक महत्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र विकसित हुआ है जिसे किंकी के

नाम से जानते हैं। ओसाका बंदरगाह इसका मुख्य केंद्र है।इस क्षेत्र के अन्य केंद्र अमागास्की, कोबे, हेमेगी, सकाई और वाकायमा हैं।

फुकुओका–यामागुची क्षेत्र–

यह क्यूशू के भीतर जापान के चरम दक्षिण में और होन्शू के पश्चिमी छोर पर स्थित है। पहला सरकारी स्टील प्लांट 1901 में यवाता में स्थापित किया गया था। किता–क्यूशू इस क्षेत्र का एक और उल्लेखनीय लोहा और इस्पात केंद्र है।

होक्काइडो क्षेत्र–

इस क्षेत्र का मुख्य केंद्र मुर्रन है।स्थानीय कोयले और लौह अयस्क के आधार पर यहां एक बड़े आकार के लोहे और इस्पात उद्योग का विकास हुआ है।जापान के इस्पात संयंत्रों के स्थानीयता में सबसे खास बात यह है कि वे या तो खाड़ी तट पर स्थित हैं या कुछ नहर या नदी पर। यह इस तथ्य के कारण है कि अधिकांश जापानी इस्पात संयंत्र कच्चे माल के लिए बाहर के देशों पर निर्भर रहते हैं। एक और विशेषता यह है कि वे महान औद्योगिक जिलों के बीच में स्थित हैं जो तैयार स्टील के लिए बाजार प्रदान करते हैं। वास्तव में, जापान में लोहे और इस्पात उद्योग का स्थानीयकरण बाजार उन्मुख है।

संयुक्त राज्य अमेरिका क्षेत्र

एक समय संयुक्त राज्य अमेरिका लोहे और इस्पात का सबसे अधिक उत्पादन करने वाला देश था, लेकिन अब चीन और जापान के बाद इसकी स्थान दुनिया में तीसरे स्थान पर है। 1629 में अमेरिका में मैसाचुसेट्स में पहले लोहे एवं इस्पात संयंत्र को स्थापित किया गया था। पिछले 380 वर्षों के दौरान यह अमेरिकी इस्पात उद्योग कई परिवर्तनों से गुजरा है। यह परिवर्तन केवल विकास और उत्पादन संरचना में ही नहीं बल्कि स्थानीयकरण संरचना में भी हुआ है। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रमुख लोहा और इस्पात क्षेत्र इस प्रकार हैं:–

I. अपलाशियन या पिट्सबर्ग क्षेत्र–

सभी क्षेत्रों में सबसे महत्वपूर्ण पश्चिमी पेंसिल्वेनिया और पूर्वी ओहियो का उत्तरी अपलाचियन क्षेत्र है।इस जिले में देश की ब्लास्ट फर्नेस क्षमता का लगभग 42.5 प्रतिशत है और इसका केंद्र पिट्सबर्ग दुनिया में इस्पात उद्योग का दूसरा सबसे बड़ा केंद्र है। इस क्षेत्र की मिलें ओहायो नदी की मुख्य जलधाराओं की संकीर्ण घाटियों में लगभग विशेष रूप से स्थित हैं। यह क्षेत्र जिसे अक्सर पिट्सबर्ग–यंगस्टाउन क्षेत्र के रूप में जाना जाता है, इसमें कई जिले शामिल हैं। पिट्सबर्ग जिले में 60 किलोमीटर के पिट्सबर्ग के भीतर ओहियो, मोनोंघेला और एलेघेनी की घाटियों में स्थित कई उद्योग हैं।यंगस्टाउन या लेइ घाटी 'जिले में शेनयांगो और महोनिंग नदियों की घाटियों में उद्योग शामिल हैं। व्हीलिंग, जॉन्सटाउन, स्टेनहिलविले और बेवर फॉल्स अन्य महत्वपूर्ण इस्पात उत्पादक केंद्र हैं।

ii. **झील क्षेत्र**–झील क्षेत्र में क्षेत्र आता है:–

a. झील एरी बंदरगाहों, डेट्रोइट, क्लीवलैंड और भैंस, आदि।

b. झील मिशिगन, शिकागो–गैरी या कैलुमेंट जिले के प्रमुख के पास के केंद्र,

c. झील सुपीरियर क्षेत्र, दुलुथ।

ये जिले उद्योग, कोयला, लोहा और बाजार के स्थानीयकरण में तीन कारकों के लिए कुछ अलग समायोजन का प्रतिनिधित्व करते हैं। एरी झील के तट एपलाचियन कोयले के करीब है, लेकिन दुलुथ क्षेत्र की तुलना में लौह अयस्क से बहुत दूर है। मिशिगन क्षेत्र दोनों के बीच में है। एक महत्वपूर्ण लाभ जो इन सभी जिलों को पिट्सबर्ग क्षेत्र में मिलता है।दूसरी ओर, ये केंद्र बाजार से थोड़ी दूर पर स्थित हैं। उदाहरण के लिए, डुलुथ के पास अपने तत्काल वनभूमि, जंगल, खेत हैं, जिसमें लोहे और स्टील के सामान की बहुत कम मांग है।डेट्रायट संयुक्त राज्य अमेरिका में सबसे बड़ा इस्पात खपत केंद्र है, खासकर अपने ऑटोमोबाइल उद्योग के कारण।

iii. अटलांटिक सीबोर्ड क्षेत्र–

अटलांटिक सीबोर्ड पर, यह केवल मध्य अटलांटिक क्षेत्र (न्यूयॉर्क, फिलाडेल्फिया और बाल्टीमोर, आदि) है जो महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र का मुख्य लाभ यह है कि दोनों को टिडवाटर के नजदीक होने से संबंधित कुछ फायदा होता है, और पूर्व के बड़े औद्योगिक केंद्रों से निकटता होने से इन्हें और भी अधिक फायदा होता है।

अटलांटिक सीबोर्ड के महान विनिर्माण क्षेत्र, घनी आबादी के क्षेत्र और उत्तरी अमेरिका में सबसे गहन औद्योगिक विकास के केंद्र के पास इसका स्थान सबसे उल्लेखनीय है।

मध्य अटलांटिक क्षेत्र एकमात्र प्रमुख क्षेत्र है जिसमें इस अत्यधिक औद्योगिक क्षेत्र में उपलब्ध स्क्रैप की अपेक्षाकृत बड़ी मात्रा के कारण कच्चा लोहा और स्टील का उत्पादन उल्लेखनीय रूप से अनुपात में अधिक होता है।इस क्षेत्र में कई स्टील मिलें हैं जो ब्लास्ट फर्नेस के बिना काम करती हैं, जो अन्य क्षेत्रों, विशेष रूप से उत्तरी अपलाचियन क्षेत्र से आयातित स्क्रैप और कच्चा लोहा दोनों पर निर्भर करती है।

iv. दक्षिण अप्पलाचियन–

दक्षिणी अपलाचियन के अलबामा में,उत्तरी अमेरिका में कहीं और की तुलना में कच्चे माल बड़ी मात्रा में पाए जाते हैं जबकि अयस्क निम्न श्रेणी का होता है और उसे शाफ्ट खनन की आवश्यकता होती है। चट्टान का अधिकांश भाग चूना है और अयस्क स्व–प्रवाहित होता है। इस क्षेत्र में बड़े औद्योगिक केंद्रों की कमी है। पड़ोस में काफी मात्रा में अधिशेष कच्चा लोहा है जो उत्तर में जाता है।

v. पश्चिमी क्षेत्र–

यह क्षेत्र आंतरिक रूप से कोलोराडो से लेकर पश्चिम में कैलिफोर्निया तक फैला हुआ है। संयुक्त राज्य अमेरिका में इस्पात क्षेत्रों के बीच,यह एक नया क्षेत्र है। पहला स्टील मिल,1882 में प्यूब्लो में स्थापित किया गया था।बाद में कैलिफोर्निया के फोंटाना और यूटा और प्रोवो में स्टील उद्योग विकसित किए गए। इन कारखानों के लिए, लौह अयस्क को वायोमिंग और कोलोराडो से कोयला प्राप्त किया जाता है।

रूस–यूक्रेन

1991 में विघटन से पहले, ैन्त दुनिया का प्रमुख इस्पात उत्पादक देश था। अब रूस और यूक्रेन भी दुनिया के महत्वपूर्ण लोहा और इस्पात उत्पादक हैं।रूस कच्चा लोहा एवं कच्चा इस्पात के उत्पादन में 4 वें स्थान पर है, जबकि यूक्रेन विश्व में 8 वें स्थान पर है।क्रांति के बाद की अवधि में, सोवियत इस्पात उद्योग ने विस्तार हासिल किया था। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, सोवियत लोहा और इस्पात उद्योग बुरी तरह प्रभावित हुआ था। अधिकांश बड़े उत्पादन केंद्र या तो नष्ट हो गए या क्षतिग्रस्त हो गए। परन्तु सोवियत देश बहुत जल्द ही ठीक हो गया और 1975 तक दुनिया में लोहे और इस्पात का सबसे बड़ा उत्पादक बन गया। इस क्षेत्र के चार महत्वपूर्ण लोहा एवं इस्पात उत्पादक के क्षेत्र निम्नलिखित है

यूराल क्षेत्र–

यह यूराल के दोनों किनारों पर स्थित है। इस क्षेत्र के प्रमुख इस्पात केंद्र हैं – मैग्नीटोगोर्स्क, चेल्याबिंक, निज़नीटागिल, सेवरडलोव्स्क, सेरोव, पेर्म, ओर्स्क, आदि हैं। मैगनिटोगोरस रूस का सबसे बड़ा इस्पात–उत्पादक केंद्र है।

कुज़नेत्स्क या कुज़बास क्षेत्र–

यह अलाई पर्वत के उत्तर में और टॉम्स्क के दक्षिण में स्थित है। यह इस्पात क्षेत्र कोयला पर आधारित है। लौह अयस्क की आपूर्ति यूराल क्षेत्र से होती है। नोवोकुज़नेट्स इस क्षेत्र का प्रमुख इस्पात उत्पादक केंद्र है।

मॉस्को क्षेत्र–

इस क्षेत्र में लोहे एवं इस्पात के महत्वपूर्ण केंद्र तुला, लिपेत्स्क, चेरेपोवेट्सक और गोर्की हैं।

अन्य क्षेत्र–

अन्य क्षेत्रों में विभिन्न भागों को अलग–थलग और विकसित किया जाता है। ये बाइकाल, सेंट पीटर्सबर्ग,

लोअर आमेर घाटी और प्रशांत तटीय क्षेत्र हैं।

यूक्रेन

यूक्रेन एक स्वतंत्र देश है और विश्व में लौह एवं इस्पात के उत्पादन में 8 वां स्थान है। इस क्षेत्र में सभी कच्चे माल जैसे– लौह अयस्क, कोयला, चूना पत्थर, मैंगनीज आदि इस्पात उत्पादन के लिए उपलब्ध हैं।रेलवे और सस्ते जल परिवहन का एक सघन नेटवर्क लौह एवं इस्पात उद्योग के विकास को सुविधाजनक बनाता है। लोहा एंव इस्पात उद्योग के मुख्य केंद्र क्रिवोएरोग, केर्च, ज़्डानोव, टैगररोग, ज़ापोरोज़े, पिट्सबर्ग, डेन्प्रोपेत्रोव्स्क आदि क्षेत्र हैं। स्वतंत्र देशों के अन्य उल्लेखनीय इस्पात उत्पादक केंद्र हैं, जैसे– उजबेकिस्तान में तबीसी, ताशकंद और बोगोवत और कजाकिस्तान में तामीर तान आदि।

जर्मनी

प्रथम विश्व युद्ध से पहले,जर्मनी दुनिया में दूसरा सबसे बड़ा लोहा एवं इस्पात उत्पादक था। यह दुनिया में स्टील के सामान का सबसे बड़ा निर्यातक था।जर्मन लोहे और इस्पात उद्योग को 1914 के युद्ध के बाद से अयस्क, कोयला और उत्पादक क्षमता में नुकसान हो गया। उसके बाद से यह उद्योग धीमी हो गई। हालाँकि, जर्मनी ने कुछ ही वर्षों में अपने उद्योग में सुधार किया, और अपने घटते संसाधनों के बावजूद भी उसने 1939 में इस्पात के 1913 से अधिक उत्पादन किया।जर्मनी के विभाजन का मुख्य कारण लोहे एवं इस्पात उत्पादन के मामले में कम उत्पादन की स्थिति थी।लेकिन 1990 में पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के फिर से एकीकरण के बाद, जर्मनी देश अब दुनिया में अग्रणी इस्पात उत्पादक देशों में से एक है और 27.3 करोड़ टन कच्चा लोहा एवं 41. 7 करोड़ टन कच्चा इस्पात के वार्षिक उत्पादन के साथ दुनिया में 5 वें स्थान पर है।जर्मनी में लौह एवं इस्पात उद्योग का सबसे महत्वपूर्ण केंद्र रनीश–वेस्टफेलिया है, जो जर्मनी में उत्पादित स्टील का 80 प्रतिशत से अधिक और 85 प्रतिशत कच्चा लोहा के उत्पादन में योगदान करता है।अन्य महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में सिगेरलैंड, हेसन–नासाउ, उत्तरी और मध्य जर्मनी, सैक्सोनी तथा दक्षिण जर्मनी हैं। इस क्षेत्र का सबसे बड़ा केंद्र एसेन है जो कि रूहर घाटी में स्थित है।

दक्षिणी कोरिया

दक्षिण कोरिया लौह एवं इस्पात उत्पादन में दुनिया का 6 वां अग्रणी देश है। यह चीन और जापान के बाद तीसरा एशियाई देश है जो इस्पात का उच्च–श्रेणी का उत्पादन करता है। इसका वार्षिक उत्पादन 24.8 करोड़ टन कच्चा लोहा और 43.4 करोड़ टन कच्चा इस्पात है।

ब्राजील

विश्व में लौह एवं इस्पात उत्पादन में ब्राज़ील 7 वाँ स्थान वाला देश है। इसका वार्षिक उत्पादन 27.7 करोड़ टन कच्चा लोहा और 27.8 करोड़ टन स्टील है। ब्राजील में स्टील के उत्पादन का विकास अच्छा रहा है। 1973 के बाद से स्टील के उत्पादन में 300 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई है। ख्५, इस देश के भीतर स्टील की खपत बहुत कम है।इसलिए, ब्राजील अपने इस्पात उत्पादन के थोक को निर्यात करने में सक्षम है।स्टील उद्योग के अधिकांश भाग साओ–पाउलो और कुरूम्बा के आसपास स्थित हैं।ब्राजील में लौह अयस्क भारी मात्रा में उपलब्ध है। इन लौह अयस्कों का सबसे बड़ा क्षेत्र मिनस–गर्रेस के पास स्थित है। एक अन्य बड़ी इस्पात उद्योग सांता कैटरीना में स्थित है। यहां अधिकांश कारखाने जल विद्युत संयंत्रों से ऊर्जा प्राप्त करती हैं।

भारत

भारत के पास लौह और इस्पात के उपयोग का एक लंबा इतिहास है।हालाँकि, यह 20 वीं शताब्दी पहले दशक के बाद ही शुरू हुआ था जब एक आधुनिक उद्योग के रूप में लोहे और इस्पात का निर्माण इस देश में शुरू हुआ था। 1911 में भारत का पहला लौह और इस्पात संयंत्र की स्थापना की गई। जिसका नाम टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड (TISCO) रखा गया जो बिहार के जमशेदपुर में एक निजी फर्म के निजी सहयोग से स्थापना की गई थी।लगभग साढ़े तीन दशक बाद ब्रिटिश भागीदारी के साथ पश्चिमबंगाल के बर्नपुर में एक और उद्योग स्थापित किया गया था, जिसका नाम इंडियन आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड (IISCO) था। पंचवर्षीय योजनाओं (1951) के प्रारंभ में जमशेदपुर, आसनसोल और भद्रावती में तीन इस्पात संयंत्र थे।संयंत्रों की क्षमता भी बढ़ाई गई थी और दुर्गापुर, राउरकेला, भिलाई, बोकारो, विशाखापत्तनम, सलेम के सार्वजनिक क्षेत्र में छह एकीकृ

त संयंत्र स्थापित किए गए थे। इनके अलावा बढ़ती आंतरिक मांग को पूरा करने के लिए 140 से अधिक मिनी इस्पात उद्योग भी स्थापित किए गए हैं। भारत में दुनिया का सबसे बड़ा लौह अयस्क भंडार है और कोयला भी है, इसलिए, लौह और इस्पात उद्योग के आगे बढ़ने की बहुत अच्छी संभावनाएं हैं।

फ्रासं

1973 तक, फ्रांस दुनिया में स्टील का 6 वां सबसे बड़ा उत्पादक था लेकिन अब इसकी स्थिति 10 वीं है। फ्रांस पश्चिम यूरोप का सबसे बड़ा लौह अयस्क उत्पादक देश है, लेकिन यहां कोयले की कमी है। फ्रांस में, लोहा और इस्पात उत्पादन के लिए दो क्षेत्र उल्लेखनीय हैं–

i. लोरेन,

ii. समब्र–म्युज़

सार बेसिन में स्टील उद्योग को स्थानीय कोयला भंडार और लोरेन से लौह अयस्क मिलती है।

11.10 विश्व में वस्त्र उद्योग–उत्पादन एवं वितरण

कपास न केवल भारत की बल्कि पूरे विश्व की सबसे महत्वपूर्ण फाइबर फसल है। यह सूती कपड़ा उद्योग को मूल कच्चा माल (कपास फाइबर)ख्र, प्रदान करता है। इसके बीज (बिनोला) का उपयोग वनस्पति उद्योग में किया जाता है और दुधारू पशुओं को बेहतर दूध प्राप्त करने के लिए चारे के हिस्से के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है।कपास बीज का पांचवां हिस्सा कच्चे प्रोटीन है, जो कुल विश्व प्रोटीन की आपूर्ति का 5 से 6 प्रतिशत है।कपड़ा बनाने के लिए सूती फाइबर का उपयोग प्राचीन मिस्र के लोगों को ज्ञात था, और सदियों से कपास चीन, भारत और मध्य एशिया का प्रमुख कपड़ा रहा है।लेकिन 18 वीं शताब्दी तक यूरोप में सूती कपड़ा प्रचलन में बना रहा, जब कपास की मशीनों और मशीनीकृत कताई और बुनाई प्रक्रियाओं के आविष्कार ने इसे सस्ते में बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की अनुमति दी। इस प्रकार, 19 वीं शताब्दी में, सूती कपड़ा उद्योग न केवल शुरू हुआ बल्कि यूरोप और दुनिया के अन्य हिस्सों में तेजी से विकसित हुआ, जिसके परिणामस्वरूप दुनिया के विभिन्न हिस्सों में कपास की खेती में वृद्धि हुई।

कपास के प्रकार

गॉसिपियम परिवार के पौधों के बीजों के आसपास के बालों से कपास निकाली जाती है। पौधे के कई प्रकार हैं, जिनमें से कुछ यूरेशिया में और कुछ अमेरिका में उत्पन्न हुईं, जबकि आधुनिक किस्मों का विकास प्रजनन(breeding)और संकरण(hybridisation) द्वारा किया गया है।

फाइबर की मुख्य लंबाई के आधार पर कपास के तीन मुख्य प्रकार हैं:–

i. लंबी रेशे वाली कपास(Long Staple)

ii. मध्य रेशे वाली कपास(Midium Staple)

iii. छोटे रेशे वाली कपास(Short Staple)

लंबी रेशे वाली कपास:– लम्बे रेशे वाले कपास सबसे सर्वोत्तम प्रकार के होते हैं, जिसकी लम्बाई 5 सें.मी. से अधिक होती है। इससे उच्च कोटि का कपड़ा बनाया जाता है। तटीय क्षेत्रों में पैदा होने के कारण इसे समुद्र द्वीपीय कपास भी कहते हैं।

मध्य रेशे वाली कपास:–मध्य रेशे वाली कपास, जिसकी लम्बाई 3.5 से 5 सें.मी. तक होती है। इसे शमिश्रित कपासश भी कहते है।

छोटे रेशे वाली कपास:–इसके रेशे की लम्बाई 3.5 सें.मी. तक होती है।

उद्योग की स्थापना को प्रभावित करने वाले कारक

सूती वस्त्र उद्योग निम्नलिखित कारकों के द्वारा प्रभावित होते हैं:–

कच्चे माल–सूती वस्त्र उद्योग के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक कच्चा माल है। इसका कच्चा माल मुख्य रूप से कपास होता है। विश्व के बहुत से भागों में तथा कपास उत्पादक क्षेत्रों में विकसित हुआ है। भारत के बम्बई, अहमदाबाद तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के कपास की पेटी में विकसित उद्योग इसके प्रमुख उदाहरण है। कपास एक हल्का कच्चा माल है जिसके भार का ह्रास नहीं होता हैं। अतः इसे कम परिवर्तन व्यय पर दूर तक ले जाया जा सकता है। ब्रिटेन में कपास बिल्कुल नहीं होता फिर भी विश्व में आधुनिक सूती वस्त्र उद्योग सबसे पहले वहीं पर स्थापित किया गया है। कपास के अतिरिक्त धागे तथा कपड़ों की रंगाई और धुलाई के लिए विभिन्न प्रकार के रंगों एवं रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता होती है यह भी सूती वस्त्र उद्योग के कच्चे माल के रूप में जाने जाते हैं और यह भी आवश्यक कच्चे माल है।

शक्ति के साधन–किसी भी उद्योग में चालक शक्ति प्राण संचार करती है। अधिकांशतः सूती वस्त्र उद्योग में कोयले से चालक शक्ति प्राप्त की जाती है। इसलिए यह उद्योग कोयला क्षेत्रों के निकट स्थापित किया जाता है। ब्रिटेन के लंकाशायर में सूती वस्त्र उद्योग का विकास इसका अच्छा उदाहरण है।यदि कोयला निकट ना हो तो उसे अन्य क्षेत्रों से प्राप्त करने की सुविधा होनी चाहिए। उदाहरणतः मुंबई के निकट कोई कोयला क्षेत्र नहीं है और यहां पर अफ्रीका से कोयला प्राप्त किया जाता है। अब कोयले के स्थान पर जल विद्युत का उपयोग अधिक होने लगा है। यह कोयले की अपेक्षा सस्ती होती है इसके प्रयोग से गंदगी नहीं फैलती और वातावरण का प्रदूषण नहीं होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यू इंग्लैंड राज्य, जापान,स्विट्जरलैंड, इटली, भारत आदि देशों के अधिकांश कारखाने जल विद्युत से ही चलते हैं।

सस्ता परिवहन–जिन देशों में सस्ता परिवहन की सुविधा होती है, उनमें कपास की उपज न होने पर भी सूती वस्त्र उद्योग विकसित किया जा सकता है, क्योंकि सस्ते परिवहन की सहायता से यह हल्का कच्चा माल विदेशों से आयात किया जा सकता है। ब्रिटेन को सस्ते परिवहन के कारण ही भारत, पाकिस्तान, मिस्र, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि देशों से कपास प्राप्त होती है। जापान भी परिवहन की सुविधा के कारण विदेशों से कपास का आयात करके सूती वस्त्र उद्योग को चलाता है।

अनुकूल जलवायु–शुष्क जलवायु में धागा बार बार टूटता रहता है जिससे सूत काटने तथा कपड़ा बुनने में बड़ी कठिनाई आती है। अतः इसके लिए आद्र जलवायु तथा समुद्री समीर उपयुक्त होती है।यही कारण है कि अधिकांश सूती वस्त्र उद्योग समुंद्र के निकट या आद्र जलवायु वाले क्षेत्रों में स्थापित किए जाते हैं।आजकल शुष्क जलवायु वाले इलाकों में कृत्रिम आद्रीकरण से भी यह उद्योग चलाया जाता है, परंतु इस पर व्यय अधिक होता है। अनुकूल जलवायु के कारण ही ब्रिटेन, जापान, रूस तथा भारत के महाराष्ट्र व गुजरात में यह उद्योग उन्नति कर रहा है। इसके अतिरिक्त जलवायु का स्वास्थ्यवर्धक होना भी अनिवार्य है जिससे श्रमिकों तथा प्रबंधकों का स्वास्थ्य ठीक रहे तथा वे अधिक उत्पादन दे सकें।

श्रम –सूती वस्त्र उद्योग में कुल उत्पादन लागत का बहुत बड़ा हिस्सा श्रम पर खर्च किया जाता है। इसलिए इस उद्योग के लिए सस्ते तथा कुशल सॉन्ग का प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होना अनिवार्य है। अनुमान है कि विश्व में सबसे अधिक श्रम वस्त्र उद्योग में लगा हुआ है। यही कारण है कि उद्योग अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में स्थापित किया जाता है।

जलापूर्ति –सूती वस्त्र उद्योग में वस्त्रों की धुलाई, रंगाई, छपाई, कलफ करने आदि के लिए बड़ी मात्रा में शुद्ध जल की आवश्यकता होती है। अतः यह उद्योग जल आपूर्ति के स्रोत के निकट ही स्थापित किया जाता है। सामान्यतः नदियों, तालाबों तथा नलकूप आदि से जल प्राप्त किया जा सकता है।

पूंजी –इस उद्योग में पर्याप्त पूंजी की आवश्यकता होती है। ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका,जापान आदि देशों में इस उद्योग के विकास में पूंजी निवेश का बहुत बड़ा सहयोग रहा है। किसी भी उद्योग की स्थापना के लिए पूंजी निवेश होना अनिवार्य है।

बाजार –यदि बाजार तथा कपास उत्पादक क्षेत्रों में अन्य कारकों की अनुकूलता एक जैसी हो तो इस उद्योग की अवस्थिति में बाजार का अधिक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि बकरे की सुविधा के साथ–साथ परिवर्तनशील मांग तथा फैशन के अनुसार उत्पादन में परिवर्तन किया जा सकता है।ब्रिटेन तथा जापान में कपास की उपज ना होते हुए भी बाजार का लाभ उठाने के लिए या उद्योग स्थापित किया गया। ब्रिटेन के भूतपूर्व उपनिवेशों में यहां का बहुत सा कपड़ा बिकता है और जापान को दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों में बाजार की बहुत सुविधा मिली है। भारत,

रूस तथा कुछ अन्य देशों में घरेलू खपत के कारण यह उद्योग बहुत उन्नति कर गया है।

सरकारी प्रोत्साहन—किसी भी देश की सरकार उद्योग को प्रोत्साहन देकर उसके विकास में सहायता कर सकती है। भारत में बहुत से वस्त्र उद्योगों के विकास का श्रेय सरकार को जाता है।ब्रिटेन में राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने के लिए सरकार ने इस उद्योग को प्रोत्साहित किया। वहां की सरकार ने अपने उपनिवेशों में सूती वस्त्रों को बाजार प्रदान करके इसकी विशेष सहायता की है।

विश्व में सूत तथा सूती वस्त्रों का उत्पादन एवं वितरण

विश्व के कपास उत्पादक क्षेत्र

यद्यपि कुटीर उद्योग के रूप में सूती धागा तथा सूती वस्त्रों का निर्माण लगभग सभी उष्ण एवं उपोष्ण कटिबंधीय देशों में किया जाता है तथा मशीनों द्वारा बड़े उद्योग के रूप में यह उद्योग 40—50 देशों में ही प्रचलित है। इस समय यह चीन, भारत, रूस, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि प्रमुख उत्पादक देश है।

चीन—कुटीर उद्योग के रूप में चीन में सूती वस्त्र का उत्पादन प्राचीन काल से चला आ रहा है। चीन में पहला आधुनिक कारखाना सन् 1890 में स्थापित हो गया था, परंतु वास्तविक विकास सन् 1894 में चीन—जापान युद्ध की संधि के बाद ही शुरू हुआ। 1914—22 कि अवधि में अधिकांश उद्योग जापानियों के अधिकार में था। 1920 तक शंघाई बहुत बड़ा केंद्र हो गया था जहां देश के 80ः तकुए थे।1920—30 के दशक में इस उद्योग का विकेंद्रीकरण शुरू हुआ परंतु सन 1949 तक चील के आधे तकुए शंघाई में स्थित थे।1949 के बाद कम्युनिस्ट प्रशासन के प्रारंभिक काल में बहुत सी पूंजी तथा मशीनें हांगकांग चली गई। 1950 के बाद चीन के सूती वस्त्र उद्योग में तीव्र गति से प्रगति हुई और 1960 तक चीन में तकुए की संख्या तत्कालीन सोवियत संघ से अधिक हो गई। 1965—66 में चीन विश्व का सबसे बड़ा उत्पादक हो गया।इस समय बेचौन विश्व का लगभग पांचवां भाग सूत तथा वस्त्र तैयार करके विश्व में प्रथम स्थान पर है।

भारत—चीन के बाद भारत का दूसरा स्थान है। यह भारत का महत्वपूर्ण उद्योग में शामिल है। भारत की 16ः औद्योगिक पूंजी इस उद्योग में लगी हुई है। भारत में 80 से भी अधिक नगरों में या उद्योग विकसित है। मुख्य उत्पादक केंद्र महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, बिहार, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा तथा कर्नाटक में स्थित है।भारत में सूती वस्त्रोद्योग लगभग 100 नगरों में वितरित है, फिर भी इसके प्रमुख केंद्र पंचभुज प्रदेश के अंतर्गत हैं। इस पंचभुज के पाँच बिंदु— अहमदाबाद, मुंबई, शोलापुर, नागपुर और इंदौर—उज्जैन हैं। इनमें से चार गुजरात एवं महाराष्ट्र जैसे तटवर्ती राज्यों में स्थित हैं। अन्य तटीय राज्यों जैसे— कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और पश्चिम बंगाल में भी सूती वस्त्रों का उत्पादन किया जाता है।देश में सूती वस्त्रो उद्योग में महाराष्ट्र और गुजरात अग्रणी राज्य हैं। अकेले महाराष्ट्र में भारत का 38ः कपड़ा तथा 30ः सूत तैयार किया जाता है।

भारत में सूती वस्त्र उद्योग

यहाँ कुल 119 मिलें हैं जिनमें लगभग 3 लाख श्रमिक कार्य करते हैं। इस राज्य का सबसे बड़ा केंद्र 'मुंबई' है जिसे 'कपास का विराट नगर' कहा जाता है। गुजरात इस क्षेत्र में दूसरा प्रमुख राज्य है जहाँ इस उद्योग की 118 मिलें स्थापित हैं, अकेले अहमदाबाद में 67 मिलें सूती वस्त्रों का उत्पादन करती हैं जो कि अहमदाबाद को गुजरात का सबसे बड़ा और मुंबई के बाद भारत का दूसरा प्रमुख सूती वस्त्र उत्पादक केंद्र बनाती हैं। इसके अतिरिक्त पश्चिम बंगाल के कोलकाता, तमिलनाडु के कोयम्बटूर, आंध्र प्रदेश के हैदराबाद, केरल तथा कर्नाटक राज्यों में भी इस उद्योग का विकास हुआ है।

रूस

सूती वस्त्र उद्योग रूस में प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। यहां का सर्वप्रथम आधुनिक उद्योग पोलैंड के अधिकृत क्षेत्र में स्थापित हुआ था परंतु बाद में मास्को—इवानोवा तथा लेनिनग्राड में इनका विस्तार हुआ। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में इंग्लैंड से आयातित सूत पर आधारित बुनाई के कारखाने का विकास हुआ और 1793 में सूट कातने का पहला कारखाना शस्लबर्ग नामक स्थान पर स्थापित किया गया। इसके पश्चात यह उद्योग इस देश के अन्य भागों में भी फैल गया। 1917 के सोवियत क्रांति से पहले सूती वस्त्र उद्योग 85ः मध्य औद्योगिक प्रदेश, 8ः लेनिनग्राड क्षेत्र तथा लगभग 5ः उत्तरी कॉकेशस क्षेत्र में स्थित था। अब यह उद्योग यूराल पर्वत की पूर्वी ढालों

तक भी फैल गया है परंतु अब भी 75ः से अधिक केंद्र ढाल यूराल पर्वत के पश्चिम में स्थित हैं जहां 83ः सूत तथा सूती वस्त्र तैयार होते हैं। इस समय रूस विश्व का लगभग 9ः कपड़ा तथा सूत तैयार करके तीसरे स्थान पर है। रूस के कई क्षेत्रों में वस्त्र उद्योग स्थापित हो गया है जिसमें से कुछ महत्वपूर्ण उद्योग क्षेत्र निम्नलिखित हैं:-

मास्को–इवानोवो प्रदेश

इस प्रदेश में 18वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों से हूं सूती वस्त्र उद्योग विकसित हुआ। अब यह रूस का सबसे अधिक महत्वपूर्ण उत्पादक क्षेत्र बन गया है। यहां के प्रमुख केंद्र मास्को तथा इवानोवो हैं जिनके नाम से इस क्षेत्र का नाम पड़ा है। मास्को क्षेत्र में मास्को के अतिरिक्त नोगिन्स्क, शेरपुरवोव, ग्लुखोवो, येगोरयेवस्क, पावलावोस्की–पोसाद आदि हैं। इवानोंवो को तत्कालीन सोवियत संघ का मैनचेस्टर कहते हैं। इवानोवा के चारों ओर सूती वस्त्र उद्योग के नगरों का घेरा सा बन गया है जिसमें यारोस्लावल, किनेशमा, शया, कोवरोव, ओरे–खोवो–जुयेवो आदि मुख्य केंद्र है।

सेंट पीटर्सबर्ग क्षेत्र

यहां 19वीं शताब्दी से सूती वस्त्र उद्योग चला रहा है। अब इसका काफी विस्तार हो चुका है इसके मुख्य केंद्र लेनिनग्राड, नार्वा तथा तल्लीन है।

कालिनिन क्षेत्र

यह मास्को क्षेत्र के पश्चिम में स्थित है। इसके मुख्य केंद्र कालिनिन,वोलिचेक,विशनीय, आदि हैं।

बोल्गा बेसिन

वोल्गा नदी की घाटी में चेवोकसारी एवं कणीशिन तथा वोल्गा की एक सहायक नदी पर ताम्बोब में बड़े पैमाने पर सूती वस्त्र का उत्पादन होता है।

यूराल क्षेत्र

यूराल क्षेत्र के पूर्व में स्थित चेल्याबिन्स्क मुख्य सूती वस्त्र निर्माण केंद्र है।

साइबेरिया

साइबेरिया में मुख्य रेलमार्ग के सहारे–सहारे चेलियाबिंस्क से पूर्व की ओर सूती वस्त्र उद्योग विकसित हुआ है। क्षेत्र का मुख्य केंद्र ओमस्क,टोमस्क, अल्मा–आता,कुस्तानोव,कान्स्क, बरनोल, नोवोसिविस्क, ब्रियंस्क,केमेरोव आदि हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका

संयुक्त राज्य अमेरिका में इस उद्योग का आरंभ न्यू इंग्लैंड राज्यों के रोड द्वीप स्थित पौटुकेट नामक स्थान पर सन् 1790 में हुआ।शीघ्र ही यहां पर अन्य केंद्रों पर भी यह उद्योग चालू हो गया और यह क्षेत्र सूत तथा सूती वस्त्रों के उत्पादन का महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया।संयुक्त राज्य अमेरिका का सूती वस्त्र उद्योग क्षेत्रबाद में मध्य अटलांटिक क्षेत्र तथा दक्षिणी क्षेत्र में भी यह उद्योग पनप गया और यह देश ब्रिटेन को पीछे छोड़ कर विश्व का सबसे बड़ा उत्पादक बन गया। परंतु बाद में इसके उत्पादन में गिरावट आ गई और विश्व स्तर पर इसका महत्व कम हो गया। सन् 1965 में इस देश में 844.7 करोड़ मीटर कपड़ा तैयार किया था जो घटकर सन् 1974 में केवल 431.0 करोड़ मीटर ही रह गया और भारत, रूस तथा चीनी इससे आगे निकल गए। इस प्रकार सूती वस्त्र उद्योग की दृष्टि से संयुक्त राज्य अमेरिका का चीन, भारत, तथा रूस के पश्चात चौथा स्थान है और यह देश विश्व का 6.64ः सूती वस्त्र तथा 8.2ः सूत तैयार करता है। परंतु अब भी इस देश का सूती वस्त्र उद्योग की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है और जीवन स्तर ऊंचा होने के कारण यहां पर वस्त्रों की मांग रहती है।संयुक्त राज्य अमेरिका का वर्तमान वस्त्र उद्योग 3 छात्रों में वितरित है जिनका विवरण इस प्रकार है:-

न्यू इंग्लैंड राज्य

यह संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तरी–पूर्वी भाग में स्थित है।इस देश की सबसे पहले मिल इसी क्षेत्र में

स्थिति रोडे द्विप पर पैटुकेट नामक स्थान पर सन् 1790 में स्थापित हुई थी। सिंगल है इस क्षेत्र के अन्य स्थानों पर यह उद्योग स्थापित हो गया और यह क्षेत्र संयुक्त राज्य अमेरिका का सबसे बड़ा उत्पादक बन गया। इसका विकास मुख्यतरू रोड़े द्विप, मैसाचुसेट्स,केनीकेट तथा न्यू हैम्पशायर राज्यों में हुआ। इन राज्यों के मुख्य केंद्र बोस्टन,प्रोविडेंस,वूनसौकेट,न्यूवैडफोर्ड,मानचेस्टर,फालरिवर,लॉवेल,लॉरेन्स,वीवरले,पिचबर्ग,हैलीओक,नार्थ एडम्स,टाउनटन आदि है। सन् 1920 तक न्यू इंग्लैंड राज्यों का सूती वस्त्र उद्योग की दृष्टि से अधिक महत्व रहा, परंतु इसके पश्चात इस क्षेत्र का महत्व घटने लगा क्योंकि यहां पर उत्पादन में कमी आ गई और अन्य क्षेत्रों का उत्पादन बढ़ गया। सन् 1920 में यहां पर संयुक्त राज्य अमेरिका का 52ः उद्योग केंद्रित था जो अब घटकर केवल 15ः रह गया है।

मध्य अटलांटिक राज्य

यह क्षेत्र पेंसिल्वेनिया के पूर्वी भाग, न्यूयॉर्क, न्यू जर्सी, फिलाडेल्फिया, तथा मैरीलैंड राज्यों में फैला हुआ है। यहां पर प्रचूर–श्रम, जल–विद्युत, रेल परिवहन, मशीनों तथा निकटवर्ती बाजार की सुविधाएं उपलब्ध है। यहां पर फिलाडेल्फिया सबसे बड़ा केंद्र है। अन्य महत्वपूर्ण केंद्र विलमिंगटन, जर्मन टाउन,जर्सी सीटी,हेरिसबर्ग,पेटरसन,स्क्रेंटन, ट्रेंटन,विल्कीजबारे तथा बाल्टीमोर है। न्यूयॉर्क सिले–सिलाये हुए वस्त्रों का सबसे बड़ा केंद्र है।

दक्षिणी अप्लेशियन राज्य

इस समय यह संयुक्त राज्य अमेरिका का सबसे बड़ा सूती वस्त्र उत्पादक प्रदेश है और उत्तरी कैरोलिना, दक्षिणी कैरोलिना, जॉर्जिया तथा टेनिसी राज्यों में विस्तृत है। सूती उद्योग का विकास सन् 1880 के बाद शुरू हुआ। उसके बाद से या निरंतर उन्नति करता गया। यहां पर प्रमुख केंद्र चारलोट्टे (उत्तर कैरोलिना), कोलंबिया (दक्षिण कैरोलिना), ऑगस्टा तथा एटलाण्टा (जार्जिया) है। सबसे अधिक संकेंद्रण प्रपात रेखा के निकट हुआ है जहां पर ग्रोन्सबरो, रैले,स्पार्टर्नबर्ग, ग्रीनविले,मेकन, कोलंबस तथा मोंटगोमरी प्रमुख है। टेनेसी घाटी में नॉक्सविले तथा चट्तानृगा मुख्य उत्पादक केंद्र है। इस समय इस प्रदेश में संयुक्त राज्य अमेरिका का लगभग तीन चौथाई सूती वस्त्र उद्योग केंद्रित है।

जापान

जापान में प्रथम सूती वस्त्र उद्योग की मिल सन् 1867 में स्थापित की गई थी, अर्थात जापान में सूती वस्त्र उद्योग का प्रारंभ भारत के बाद हुआ, परंतु यहां पर विकास की गति तीव्र थी।महायुद्ध के बाद वस्त्र उद्योग पूर्णतः स्वचालित हो गया। इसमें काम करने वालों में स्त्रियाँ अधिक होती थीं।सन् 1900 तक श्रमिक संख्या की दृष्टि से यह जापान का प्रथम उद्योग हो गया। प्रथम विश्व युद्ध काल (1914–18) मैं इस उद्योग ने बड़ी तीव्र गति से उन्नति की और जापानी वस्त्र, चीन, भारत, तथा अफ्रीका के बाजारों तक पहुंच गए। सन् 1938 तक जापान विश्व में सूती वस्त्रों का सबसे बड़ा निर्यातक बन गया। द्वितीय विश्व युद्ध(1939–45) में जापान पर अमेरिका द्वारा बम गिराए जाने से जापान को भारी क्षति पहुंची और इसके 80ः सूत काटने वाले कारखाने नष्ट हो गए। सन् 1946 में जापान के पास केवल 22 लाख तकुए रह गए थे। परंतु युद्ध के बाद जापान ने बड़ी तीव्र गति से इस उद्योग को नव–निर्माण किया और तकुओं की संख्या बढ़कर सन् 1952 में 69 लाख तथा 1967 में 126 लाख हो गई। बहुत से कारखानों में नई मशीनें लगाई गई। सन् 1950 में जापान फिर विश्व का सबसे बड़ा निर्यातक बन गया और यह देश आज तक अपनी उस स्थिति को बनाए हुए हैं। आज जापान अपने कुल सूती वस्त्र उत्पादन का 35ः भाग निर्यात कर देता है। इस समय जापान विश्व का लगभग 3.5ः कपड़ा तथा 3.7ः सूत पैदा करके विश्व में पांचवें स्थान पर है।जापान का सूती वस्त्र उद्योग निम्नलिखित क्षेत्रों में वितरित है:–

किनकी प्रदेश

इसमें ओसाका सबसे महत्वपूर्ण केंद्र है और जापान का मैनचेस्टर भी कहलाता है। ओसाका के आसपास विस्तृत मैदानी भाग है जो उद्योग के विकास के अनुकूल है। ओसाका का एक प्रमुख बंदरगाह भी हैं जिससे आयात–निर्यात में सुविधा होती है।

क्वांतो प्रदेश

इसमें टोकियो एवं याकोहामा मुख्य केंद्र है।

नागोया प्रदेश

इसमें नागोया में तथा इसके आसपास कई केंद्र है।

उपर्युक्त क्षेत्रों के अतिरिक्त देश के आंतरिक भागों में छोटे–छोटे कारखानों जहां–तहां बिखरे हुए हैं। छोटे आकार के होते हुए भी यह कारखाने आधुनिक यंत्रों का प्रयोग करते हैं और कम लागत पर उच्च कोटि के वस्त्रों का निर्माण करते हैं।अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में भारत, हांगकांग, चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ब्रिटेन की प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करने के लिए जापान समय–समय पर अपने उत्पादों में ग्राहकों की रूचि के अनुसार विविधता तथा नवीनता लाता रहता है।

यूरोप

समस्त यूरोपीय देशों में कपास का उत्पादन नगण्य है, फिर में सूती वस्त्र उद्योग विस्तृत क्षेत्र पर फैला हुआ है।यह उद्योग ब्रिटेन के लंकाशायर क्षेत्र से लेकर फ्रांस, बेल्जियम, नीदरलैंड, जर्मनी, स्विट्जरलैंड, ऑस्ट्रिया, उत्तरी इटली तथा चेकोस्लोवाकिया से होता हुआ पोलैंड तथा जर्मनी तक फैला हुआ है। प्रमुख उत्पादक जर्मनी, फ्रांस, इटली, ब्रिटेन, स्पेन, तथा पोलैंड है।यूरोप में सूती वस्त्र उद्योग के विकसित होने के निम्नलिखित कारण है:–

ग्रेट ब्रिटेन

ब्रिटेन का सूती वस्त्र उद्योगश्औद्योगिक उत्थान और पतनश्की कहानी है। विश्व में औद्योगिक क्रांति सबसे पहले ब्रिटेन में आई और यहीं से सूती वस्त्र उद्योग का भी सूत्रपात हुआ। 18 वीं तथा 19 में शताब्दी के लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक ब्रिटेन विश्व में सबसे अधिक महत्वपूर्ण सूती वस्त्रों का उत्पादक तथा निर्यातक रहा। प्रथम विश्व युद्ध से पहले ब्रिटेन का सूती वस्त्र उद्योग अपने चरम सीमा पर था उसके पश्चात इस का पतन शुरू हो गया।1913 में यहां विश्व के लगभग 40ः सूत उत्पादन की क्षमता थी और 30ः शक्ति चालक करघे थें। उस वर्ष 8 अरब गज सूती कपड़ा तैयार हुआ जो 1970 की अपेक्षा 13 गुना अधिक था। ऐतिहासिक क्रम में संयुक्त राज्य अमेरिका, बेल्जियम, फ्रांस, जर्मनी, आदि यूरोपीय देशों तथा जापान, भारत, रूस, चीन आदि अन्य देशों में उत्पादन और निर्यात की वृद्धि होने के कारण तथा ब्रिटेन का अपना उत्पादन कम होने के कारण ब्रिटेन का सापेक्षिक महत्व बहुत कम हो गया। अब ब्रिटेन विश्व का केबल 0.56ः कपड़ा तथा 0.8ः सूत तैयार करता है जो लगभग नगण्य हैं।

ब्रिटेन का सूती वस्त्र उद्योग मुख्यतः निर्यात पर ही आश्रित था। दिन में या उद्योग लंका शायर तथा ग्लास्गों क्षेत्रों में विकसित हुआ परंतु अधिक विकास लंका शायर में ही हुआ। इसके कई कारण थे जिनमें आद्र जलवायु, कुशल श्रमिक, पर्याप्त कोयला भंडार, जलापूर्ति आदि प्रमुख थे। लिवरपूल बंदरगाह द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका से कपास का आयात करना आसान था। मैनचेस्टर शिप कैनाल के बनने से स्थिति और भी अनुकूल हो गई। इस प्रकार मैनचेस्टर तथा लिवरपूल ने मिलकर इस देश के कपड़े उद्योग को अभूतपूर्व उन्नति दिलाई। मैनचेस्टर के उत्तर तथा पूर्व में लगभग 20 किलोमीटर लंबी अर्थ चंद्राकर पट्टी में स्थित बोल्टन, बरी, रोकडेल, ओल्डम, स्टॉकपोर्ट आदि नगर है जो कताई का काम करते थे। दूसरी ओर ब्लेकबर्न, बर्नले, प्रेस्टन, आदि नगर बुनाई का काम करते थे। अकेले लंका शायर क्षेत्र में ही ब्रिटेन का 90ः कपड़ा तथा सूत तैयार होता था। भारत सहित ब्रिटेन के बहुत से उपनिवेशक इसके बहुत अच्छे ग्राहक थे। अब अधिकांश देश स्वतंत्र हो गए हैं और ब्रिटेन का माल नहीं खरीदते। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन को अंतरराष्ट्रीय बाजार में भारत, चीन, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों की प्रतिस्पर्धा का सामना भी करना पड़ता है।

फ्रांस

इस समय फ्रांस यूरोप का महत्वपूर्ण सूती वस्त्रों का उत्पादन करने वाला देश है और विश्व का लगभग 1.5ः सूती कपड़ा तथा 2.3ः सूत तैयार करता है। यहां पर सूती वस्त्र उद्योग के तीन क्षेत्र हैं:–

वासजेज क्षेत्र

इसका महत्व फ्रांस में सबसे अधिक है। यहां पर बेलफोर्ट, कोलमार, मलहाउस, एपीनाल, तथा नेन्सी प्रमुख केंद्र हैं।

नामर्मण्डी क्षेत्र

फ्रांस में सर्वप्रथम सूती वस्त्र उद्योग इसी क्षेत्र के टोंवा नामक जिले में शुरू हुआ था। रोएं नगर इस क्षेत्र का प्रधान केंद्र है।

जर्मनी

सूती वस्त्र उत्पादन में जर्मनी का महत्वपूर्ण स्थान है। यह घटिया रुई और उन मिलाकर विशेष किस्म का कपड़ा तैयार किया जाता है। इस उद्योग के मुख्य क्षेत्र निम्नलिखित हैं:–

रूर क्षेत्र

जर्मनी के उत्तरी पश्चिमी भाग में स्थित है जो सूती वस्त्र उद्योग का सबसे प्रसिद्ध क्षेत्र है। इस क्षेत्र को राइन नदी और नहरों द्वारा सस्ते यातायात की सुविधा प्राप्त हो जाती है। ब्रोमीन बंदरगाह द्वारा अमेरिकी कपास प्राप्त हो जाती है। औद्योगिक क्षेत्र होने से यहां सस्ते श्रमिक मिल जाते हैं और जनसंख्या की सघनता से स्थानीय मांग भी बहुत है। यहां के मुख्य केंद्र ब्रोमीन, एल्बरफील्ड, मदेन, ग्लोडबाक, रेन ऑडी हैं।

सेक्सोनी क्षेत्र

सूती वस्त्र उद्योग के विकसित होने का कारण यहां का प्राचीन ऊनी वस्त्र उद्योग है जिससे यहां कुशल कारीगरों की कमी नहीं है। यहां का कोयला जिकाऊड्रेस्डन प्रदेश से मिलता है। लीपिजिंग,ड्रेस्डन,राहसन,चिमनिज, म्यूनिख और ज्विचवान यहां के प्रमुख केंद्र हैं।

दक्षिणी पश्चिमी जर्मनी क्षेत्र

यहा के मुख्य सूती वस्त्र उत्पादक केंद्र स्टटगार्ड,आग्सबर्ग और मुलहाउस है। यहां कोयला और कपास आयात करना पड़ता है। नेकार औद्योगिक क्षेत्र में यहां के कपड़े की खपत बहुत है यहीं से सस्ते श्रमिक भी मिलते हैं।

इटली

इटली में सूती वस्त्र उद्योग पो नदी बेसिन तथा आल्पस की घाटियों में स्थित है इटली में कोयले के अभाव के कारण जल–विद्युत से उद्योग चलाया जाता है। मुख्य केंद्र मिलान, कानो, बरगामो, टूयूरीन, जेनोओ,वारेसे,ब्रस्सिया,उदाइन,पाविआ,मन्तुआ आदि है।

11.11 सारांश

इस इकाई में हमने वस्तु निमार्ण उद्योग के विकास के बारे समझा। हमने यह समझा कि उद्योग की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान होता है। विश्व के सभी देश उद्योग के माध्यम से ही अपने संसाधनों का उपयोग कर वस्तु निमार्ण करते है। उद्योगों का चयन उसमें प्रयुक्त कच्ची सामग्री की उपलब्धता और तकनीक के आधार पर करते है। वर्तमान समय में अत्याधुनिक तकनीकी के विकास के कारण वस्तुनिमार्ण उद्योग का श्रृखलाबद्ध विकास हुआ है। हमने इस इकाई में उत्पादों, श्रमिको की संख्या,कच्ची सामग्री,प्रबन्धन एवं स्वामित्व, निर्मित वस्तु की प्रकृति और उत्पादन प्रक्रिया के आधारों पर उद्योगों के वर्गीकरण को समझा। कुटीर उद्योग, लघु पैमाने के उद्योग एवं वृहत् पैमाने के अन्तर्गत आने वाले उद्योग एवं उसके महत्व के बारे में अध्ययन किया।उद्योग स्थानीयकरण के सिद्धान्तों का अध्ययन किया। इमने पढ़ा कि कि वेबर महोदय ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या परिभाषित शब्दों एवं मान्यताओं के आधार पर की है। उद्योगों की स्थापना में सर्वाधिक महत्व न्यूनतम परिवहन लागत को दिया। जिन उद्योगों में दो कच्ची सामग्रियां प्रयुक्त होती है और दोनों मिश्रित पदार्थ है तो उनके स्थान चयन के लिए स्थानीयकरण त्रिभुज का सहारा लिया।वेबर महोदय ने यह भी माना है कि उद्योग उस स्थान पर भी स्थापित हो सकता है जहां परिवहन पर खर्च जितना बढता है, उतना कम खर्च श्रम एवं एकत्रीकरण पड़ता है।

11.12 बोध प्रश्न

1. वस्तु–निर्माण उद्योग से आप क्या समझते है ?
2. भारत में कुटीर उद्योग के महत्व की विवेचना कीजए।

3. वेबर के उद्योग स्थानीयकरण सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
4. उद्योग स्थानीयकरण में श्रम एवं एकत्रीकरण के प्रभाव की व्याख्या कीजिए।
5. निम्नलिखित पर संक्षेप में लिखिए
    1. आइसोडापेन
    2. स्थानीयकरण भार
    3. सुलभ पदार्थ
    4. मिश्रित पदार्थ

11.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1 सिंह, जगदीश, एवं सिंह, के.एन.(2010) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।

2 मौर्य, एस. डी. (2022), आर्थिक भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज।

3 श्रीवास्तव, वी.के. एवं राव, बी.पी. (2002), आर्थिक भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।

4 गौतम, अलका, (2019) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।

5 अलेक्जेंडर, जे.डब्लू. (1979) इकोनॉमिक ज्योग्राफी, प्रेंटिस हाल,

6 लांगमैन, जी.सी. एण्ड मार्गन, जी.सी. (1982) हयूमन एण्ड इकोनॉमिक ज्योग्राफी,आक्सफोर्ड प्रेस.

11.14 अभ्यास प्रश्न

1. वस्तु –निर्माण उद्योग के वर्गीकरण की व्याख्या कीजिए।
2. बाजार प्रतिस्पर्धा सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
3. उद्योग के स्थानीयकरण पर संक्षेप लिखिए।

इकाई–12 औद्योगिक प्रदेशकी परिभाशा एवं विशेश्ताएं – यूरोप एवं पूर्वी यूरोप, जापान के औद्योगिक प्रदेश

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 औद्योगिक प्रदेश :

12.3.1 औद्योगिक प्रदेश की विशेषताएं

12.4 औद्योगीकरण का स्तर निर्धारित करने की विधियाँ

12.5 विश्व के औद्योगिक प्रदेश

12.6 यूरोपीय समुदाय के औद्योगिक प्रदेश

12.6.1 उत्तरी सागर के तटवर्ती औद्योगिक प्रदेश

12.6.1.1 यूनाइटेड किंगडम के औद्योगिक प्रदेश

12.6.1.2 आन्तरिक मध्यदेशीय औद्योगिक प्रदेश

12.6.1.3 उत्तरी पूर्वी औद्योगिक प्रदेश

12.6.1.4 दक्षिणी वेल्स प्रदेश

12.6.1.5 स्काटलैण्ड घाटी औद्योगिक प्रदेश

12.6.1.6 पेरिस औद्योगिक प्रदेश

12.6.1.7 फ्लैण्डर्स औद्योगिक प्रदेश

12.6.1.8 एम्सटर्डम–राटरडम औद्योगिक प्रदेश

12.6.2 भूमध्य सागर तटवर्ती औद्योगिक प्रदेश

12.6.3 आन्तरिक औद्योगिक प्रदेश

12.6.3.1 रूर औद्योगिक प्रदेश

12.6.3.2 साम्ब्रे–कैम्पाइन औद्योगिक प्रदेश

12.6.3.3 ऊपरी राइन औद्योगिक प्रदेश

12.6.3.4 लोरेन–सार औद्योगिक प्रदेश

12.6.3.5 उत्तरी इटली का औद्योगिक प्रदेश

12.6.3.6 दक्षिण स्कैण्डेनेविया औद्योगिक प्रदेश :

12.6.4 अन्य छिटपुट औद्योगिक प्रदेश

12.7 जापान के औद्योगिक प्रदेश

12.7.1 क्वातों का औद्योगिक प्रदेश

12.7.2 किंकी का औद्योगिक प्रदेश

12.7.3 नगोया औद्योगिक प्रदेश

12.7.4 किता–क्यूशू औद्योगिक प्रदेश

12.7.5 अन्य औद्योगिक क्षेत्र

12.8 सारांश

12.9 बोध प्रश्न

12.10 संदर्भ ग्रंथ

12.11 अभ्यासप्रश्न

12.1 प्रस्तावना

अभी तक हमने इकाई से तक के अन्तर्गत उद्योग, उद्योग स्थानीयकरण के सिद्धान्त एवं उद्योग के स्थानीयकरण में विभिन्न क्षेत्रों के सापेक्षिक महत्व के बारे अध्ययन किया है। इस इकाई में हम विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित उद्योगों से निर्मित विशिष्ट आर्थिक प्रदेशों के बारे में पढ़ेगें।औद्योगिक प्रदेश में विनिमार्ण उद्योग बड़े पैमाने पर संचालित होते है। यहाँ पर निवास करने वाली जनसंख्या का मुख्य आर्थिक कार्य कच्ची सामाग्री को संसाधित करना और उनसे परिष्कृत सामग्री का निमार्ण करना है। औद्योगिक प्रदेश में कारखानों की संख्या की अपेछा उद्योगों की श्रृखलाबद्धता का अधिक महत्व होता है, जिसके चलते औद्योगिक भूदृश्य उभरते है। औद्योगिक प्रदेश के लिए औद्योगिक भूदृश्य का विकसित होना आवश्यक होता है। कारखानों, धुआँकश चिमनियों, परिवहन मार्गों, गोदाम व कार्यालयों के भवन, श्रमिकों के आवास, चारो तरफ कच्चे माल और कचरे काअम्बार आदि से औद्योगिक भूदृश्यों का विकास होता है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई हम विश्व के औद्योगिक प्रदेश की चर्चा करेगें, जिसके अध्ययन के पश्चात आप–

1. औद्योगिक प्रदेश किसे कहते है इसके बारे में जान सकेगें।
2. औद्योगिक प्रदेशों की विशेषताओं को समझ सकेगें।
3. औद्योगिक प्रदेशों का निर्धारण करने वाले तत्वों के बारे में जान सकेगें।
4. औद्योगिक प्रदेशों के सीमांकन की विधियों को जान सकेगें।
5. विश्व के प्रमुख औद्योगिक प्रदेशों के बारे में चर्चा करेगें।

12.3 औद्योगिक प्रदेश

औद्योगिक प्रदेश से तात्पर्य ऐसे विस्तृत भू–क्षेत्र से है जहाँ विविध श्रृंखलाबद्ध उद्योगों के अनेक कारखाने संकेन्द्रित पाये जाते है। इस प्रदेश का विकास उद्योग के लिए आदर्श परिस्थितियों वाले क्षेत्र पर होता है। औद्योगिक प्रदेश में विनिमार्ण उद्योग बड़े पैमाने पर संचालित होते है। यहाँ पर निवास करने वाली जनसंख्या का मुख्य आर्थिक कार्य कच्ची सामाग्री को संसाधित करना और उनसे परिष्कृत सामग्री का निमार्ण करना है। औद्योगिक प्रदेश में कारखानों की संख्या की अपेछा उद्योगों की श्रृखलाबद्धता का अधिक महत्व होता है, जिसके चलते औद्योगिक भूदृश्य उभरते है। औद्योगिक प्रदेश के लिए औद्योगिक भूदृश्य का विकसित होना आवश्यक होता है। कारखानों, धुआँकश चिमनियों, परिवहन मार्गों, गोदाम व कार्यालयों के भवन, श्रमिकों के आवास, चारो तरफ कच्चे माल और कचरे का अम्बार आदि से औद्योगिक भूदृश्यों का विकास होता है।

12.3.1 औद्योगिक प्रदेश की विशेशताएं

औद्योगिक प्रदेशों की अधोलिखित विशेषताएं पायी जाती है–

1. औद्योगिक प्रदेश की मुख्य विशेषता निमार्ण उद्योगों की प्रधानता है तथा अधिक मात्रा में कारखानों की संख्या और कार्यरत जनसंख्या का अधिकांश भाग द्वितीयक कार्यों में संलग्न पायी जाती है।
2. औद्योगिक प्रदेशों में द्वितीयकएंव तृतीयक वर्ग के व्यवसायाओं समूहन पाया जाता है।

3. नगरों के विकास में कारखानों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कारखानें जहाँ स्थापित होते है उसमें काम करने वाले श्रमिकों के आवास तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नगरों का विकास प्रारम्भ हो जाता है।
4. औद्योगिक प्रदेशों की अधिकांश जनसंख्या नगरों में निवास करती है, क्योंकि उद्योग और नगर आपस में घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होते है।
5. औद्योगिक प्रदेशों में परिवहन मार्गों का घना–जाल पाया जाता है।
6. उद्योग परस्पर एक–दूसरे से सम्बन्धित होते है। इन सम्बन्धों में श्रृखंलाबद्धता पायी जाती है।
7. औद्योगिक प्रदेश में सर्वत्र कारखानें, धुंये की चिमनियां, श्रमिकों के आवास, रेलयार्ड, मोटरगाड़ियां आदि तथा कई सन्नगर दिखाई देते है।

12.4 औद्योगीकरण का स्तर निर्धारित करने की विधियाँ

अभी तक हमने पढ़ा कि औद्योगिक प्रदेश के सीमांकन में विभिन्न मापकों का उपयोग किया जाता है। अब आगे हम पढ़गें कि इन मापको का उपयोग किन विधियों द्वारा करके औद्योगीकरण के स्तर का निर्धारण करके औद्योगिक प्रदेश का सीमांकन किया जाता है।

इस दिशा में **स्टेन द गियर** ने 1927 में संयुक्त राज्य अमेरिका के 10,000 से अधिक जनसंख्या वाले नगरों में उद्योग में कार्य करने वाले मजदूरों की संख्या के आधार पर औद्योगीकरण का स्तर निर्धारित करने का कार्य किया था। **अल्फ्रेड राईट** ने 10,000 से अधिक जनसंख्या वाले नगरों में उत्पादन प्रक्रियाजन्य मूल्य वृद्धि का उपयोग कर औद्योगीकरण के स्तर का निर्धारण किया था। हेलेन स्ट्रांग ने उद्योगों में प्रयुक्त शक्ति को अश्व शक्ति में परिवर्तित कर ऑकड़ों को प्राप्त करके औद्योगीकरण के स्तर का निर्धारण किया। किसी एक मापक तत्वों का प्रयोग कर औद्योगीकरण स्तर निर्धारित करने में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिए सी0एफ0जोन्स ने कई मापक तत्वों का एक साथ एक उपयोग किया। उन्होनें काउन्टी के औद्योगीकरण स्तर का निराकरण लिए श्रम की संख्या, शक्ति की मात्रा एवं उत्पादन प्रक्रियाजन्य मूल्य वृद्धि को दर्शाने वाले ऑकड़ों के आधार पर अलग–अलग मानचित्र बनाया। फिर तीनों मानचित्रों को एक दूसरे के ऊपर रखकर ऐसे क्षेत्रों को सीमांकित किया जो तीनों मापक तत्वों का दर्शाता है। यद्यपि इस दौरान कम महत्व वाले कुछ औद्योगिक क्षेत्र छूट गये परन्तु 95 प्रतिशत उद्योग सम्मिलित हो गये।

रिचर्ड हार्टशोर्न ने औद्योगीकरण स्तर का निर्धारण करने के लिए विभिन्न मापकों का उपयोग आनुपातिक विधि से किया है। इस विधि में किन्हीं दो मापकों जैसे रोजगार में लगे लोग एवं उद्योग में लगें लोगों का अनुपात के उपयोग ऐसे क्षेत्र उभर कर आ जाते है जहाँ अधिक औद्योगीकरण हुआ है। इसी प्रकार से किन्हीं दो अन्य मापकों का आनुपातिक विधि का उपयोग करते हुए औद्योगीकरण का स्तर ज्ञात किया जा सकता है। **थॉम्पसन** ने बहु–तात्विक मापक विधि का उपयोग औद्योगीकरण की गहनता एवं परिमाण को ज्ञात करने में किया है। इसके लिए सर्वप्रथम पचास चुने हुए मेट्रोपोलिटन क्षेत्रों के लिए प्रत्येक मापक तत्व का औसत निकाला। पुनः प्रत्येक मापक तत्व के लिए औसत 100 मानकर अलग–अलग मेट्रोपोलिटन क्षेत्रों के लिए प्रत्येक मापक तत्व के परिमाण का सूचकांक ज्ञात किया। इसे हम एक उदाहरण से समझ सकते है – उद्योग में यदि औसत रूप से 50,000 लोग काम करते है। किसी मेट्रोपोलिटन क्षेत्र में यदि केवल 25,000 उद्योग में कार्य करने वाले लोग है तो उनका सूचकांक 50 हुआ तथा जहाँ 28,000 लोग उद्योग में काम करने वाले है उनका सूचकांक 56 होगा। इसी प्रकार प्रत्येक मेट्रोपोलिटन क्षेत्र के लिए तीनों मापक तत्वों का सूचकांक निकाल कर उनके योग को तीन से विभाजित करके बहु–तात्विक मापक आधार ज्ञात कर लिया जाता है। यदि किसी मेट्रोपोलिटन क्षेत्र में उद्योग में कार्य करने वालों की संख्या का सूचकांक 50, मजदूरी सूचकांक 45 तथा उत्पादन–प्रक्रियाजन्य मूल्य वृद्धि सूचकांक 55 हुआ तो तीनो मान का योग कर 3 से भाग देने पर बहु–तात्विक मापक आधार 50 होगा। इसी प्रकार प्रत्येक मेट्रोपोलिटन क्षेत्र में उद्योग की गहनता ज्ञात करने के लिए इस विधि का उपयोग कर बहुतात्विक आधार मापक ज्ञात कर लेते है।

उक्त वर्णित विधियों का उपयोग कर औद्योगिक प्रदेशों का निर्धारण किया जाता है। इसके लिए विभिन्न क्षेत्रों के औद्योगीकरण के स्तर, उद्योग की गहनता एवं परिमाण सूचकांक ज्ञात करके उन सभी संलग्न क्षेत्रों को

एक औद्योगिक प्रदेश में सम्मिलित करते है जिनमें समान स्तर का औद्योगीकरण क्षेत्र हो, लेकिन इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इस क्षेत्र में औद्योगिक भूदृश्य पूर्णतः विकसित दशा में पाया जाता हो। इसके साथ ही औद्योगिक प्रदेशों के विश्लेषण में उद्योगों के केन्द्रीकरण का स्तर, स्थानीयकरण लब्धि, स्थानीयकरण गुणांक, स्थानीयकरण–वक्र एवं विशेषीकरण का गुणांक सम्बन्धी सूचकांको का भी उपयोग किया जाता है।

12.5 विश्व के औद्योगिक प्रदेश

आधुनिक उद्योगों के विकास के साथ ही औद्योगिक प्रदेश का विकास प्रारम्भ हुआ। विश्व स्तर पर औद्योगिक प्रदेशों का वितरण बहुत असमान पाया जाता है। उद्योगों का केन्द्रीकरण वृहत् क्षेत्र पर विश्व के केवल कुछ ही क्षेत्रों में पाया जाता है। औद्योगिक विकास के स्तर, निमार्ण उद्योगों के उत्पादन की मात्रा, उद्योगों में संलग्न जनसंख्या का प्रतिशत तथा अन्य विशेषताओं के आधार पर विश्व को प्रमुख औद्योगिक प्रदेश और गौण औद्योगिक प्रदेशों में बाँटा जाता है–

प्रमुख औद्योगिक प्रदेश : 1. उत्तरी अमेरिका का मध्य पूर्वी भाग 2. पश्चिमी तथा मध्य यूरोप 3. रूस का यूरोपीय भाग 4. जापान के औद्योगिक प्रदेश

गौण औद्योगिक प्रदेश : 1. दक्षिणी संयुक्त राज्य अमेरिका 2. पश्चिमी आंग्ल अमेरिका 3. मध्यवर्ती अमेरिका 4. पश्चिमी मध्यवर्ती लैटिन अमेरिका 5. मध्य चिली 6. दक्षिणी पूर्वी लैटिन अमेरिका 7. दक्षिणी पूर्वी ब्राजील 8. भूमध्य सागरीय क्षेत्र 9. दक्षिण अफ्रीका एवं पूर्वी अफ्रीका का पठार 10. दक्षिण पूर्वी आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड 11. दक्षिणी तथा पूर्वी एशिया

उक्त औद्योगिक प्रदेशों में विविध प्रकार के उद्योग केन्द्रित पाये जाते है। प्रमुख औद्योगिक प्रदेश में कई लघु प्रदेश भी पाये जाते है, इसी कारण से परिमाण एवं गहनता में क्षेत्रीय विभिन्ता पायी जाती है। औद्योगिक प्रदेशों की विशेषताओं का प्रभाव उस देश की राजनैतिक एवं आर्थिक दशाओं पर पड़ता है। औद्योगिक प्रदेशों का विस्तार उस देश की आर्थिक विकास को भी दर्शाता है। प्रमुख औद्योगिक प्रदेशों का विवेचन आगे किया गया है।

12.6 यूरोपीय समुदाय के औद्योगिक प्रदेश

विश्व में औद्योगीकरण की शुरूआत यूरोप से ही प्रारम्भ हुआ था, जिसके कारण यहाँ विकसित औद्योगिक प्रदेश पाया जाता है। यूरोप में औद्योगिक प्रदेश का विस्तार ब्रिटेन से लेकर मध्य पोलैण्ड तथा पो नदी की घाटी से स्वीडन तक त्रिभुजाकार आकार में फैला है। यहां कुल औद्योगिक श्रम का 1/3 भाग पाया जाता है। यूरोप के देश यूरोपीय संघ से सम्बद्ध होने के कारण एक विशाल भाग औद्योगिक भूदृश्य के रूप में प्रकट होता है। यहाँ औद्योगिक प्रदेश के विकास की अनुकूल दशाएं पायी जाती है। इस क्षेत्र में कोयला, जलविद्युत एवं आणुविक ऊर्जा की व्यापक मात्रा में उपलब्धता पायी जाती है। समुद्री परिवहन एवं नहरों के द्वारा जुड़ी नौवगम्य नदियां सस्ते परिवहन की सुविधा उपलब्ध कराती है, जो उद्योगों के विकास में सहायक है। यूरोप में सर्वत्र उद्योगों का वितरण पाया जा है परन्तु कुछ प्रदेशों में संकेन्द्रण अधिक पाया जाता है। यूरोप को चार वृहत् प्रदेशों में विभाजित किया जाता है–

1. उत्तरी सागर के तटवर्ती औद्योगिक प्रदेश
2. आन्तरिक औद्योगिक प्रदेश
3. भूमध्य सागर तटवर्ती औद्योगिक प्रदेश
4. अन्य छिटपुट औद्योगिक प्रदेश

12.6.1 उत्तरी सागर तटवर्तीऔद्योगिकप्रदेश

यह यूरोप का सबसे प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र है। तटवर्ती क्षेत्रों में समुन्नत बन्दरगाहों की उपस्थिति के कारण यह क्षेत्र औद्योगिक क्रियाकलापों में अग्रणी रहा है। बन्दरगाहों, नदियों एवं नहरों के सहारें व्यापक मात्रा में उद्योगों का प्रसार इस क्षेत्र में हुआ जिससे बड़े–बड़े नगरों का विकास हुआ है। पेरिस, लन्दन, न्यूकैसिल, साउथम्पटन, लीवरपूल, मैनचेस्टर, ऐण्टवर्प जैसे नगरों के पृष्ठप्रदेशों में औद्योगिक विस्तार पाया जाता है। यूरोप का विश्व के अनेक देशों में औपनिवेश होने से कच्ची सामग्री की आपूर्ति और उत्पादित वस्तुओं के निर्यात की सुविधा के कारण

उद्योग का तेजी से विकास हुआ। इस क्षेत्र में कई लघु औद्योगिक प्रदेश पाये जाते है–

12.6.1.1यूनाइटेड किंगडम के औद्योगिक प्रदेश

यह प्रदेश समुद्रतटवर्ती क्षेत्र एवं टेम्स नदी के सहारे आंतरिक भागों में फैला है। यहाँ भारी उद्योग की प्रधानता पायी जाती है। लन्दन इस क्षेत्र का प्रतिनिधि नगर है, जो इंजीनियरिंग, वस्त्र तथा रासायनिक उद्योगों के लिए विश्वविख्यात है। इसके अलावा खाद्य पदार्थ, मोटरगाड़ियां, जलयान, फर्नीचर, शीशे के सामान आदि के उद्योग बन्दरगाहों के निकट आयात–निर्यात की सुविधा वाले स्थानों पर विकसित है। आक्सफोर्ड, कैमडन, ग्रीनविले, एपिंग आदि नगरों में उद्योग विकसित पाये जाते है। इस क्षेत्र में घनी आबादी तथा प्रवासी लोगों के कारण श्रम की उपलब्धता भी उद्योगों के विकास के लिए आदर्श दशायें उपलब्ध कराती है।

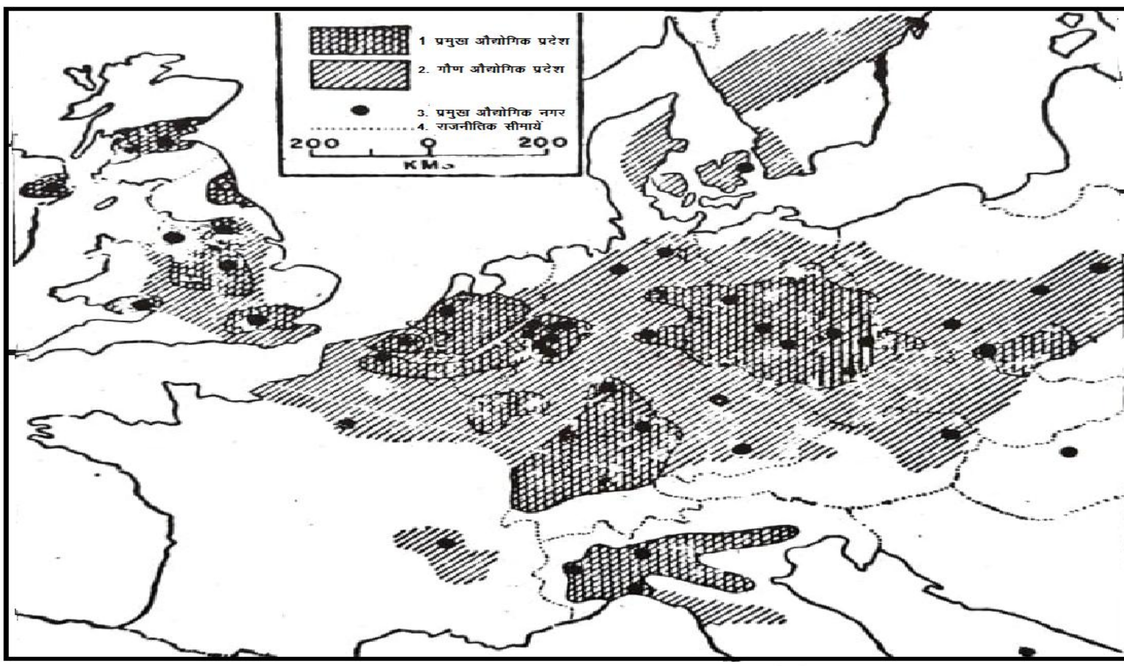

चित्र 16.1 : यूरोप के औद्योगिक प्रदेश

12.6.1.2 आन्तरिक मध्यदेशीय औद्योगिक प्रदेश

यह क्षेत्र प्रेस्टन, लीड्स, लीवरपूल तथा बर्मिघम को मिलाने एक रेखा के रूप में ब्रिटेन के मध्यवर्ती भाग में फैला है। नॉटिंघम, शैफील्ड तथा डर्बी यहाँ के मुख्य केन्द्र है। यहाँ वस्त्र,मशीनरी तथा लोहा–इस्पात एवं अन्य भारी धातु उद्योग केन्द्रित है। यहाँ विविध प्रकार की वस्तुएं जैसे मशीनें, रेल इंजन, मोटर–गाड़ियां, साइकिल, रबर के सामान आदि के उद्योग पाये जाते है। लंकाशायर में आर्द्र जलवायु के कारण सूती वस्त्र उद्योग उन्नत है, जिसके मुख्य केन्द्र ब्लैकबर्ग, बर्नले मानचेस्टर, प्रेस्टन आदि है। हौजरी का सामान स्टैनफोर्ड, डर्बी तथा लौंगवरी में बनाया जाता है। ब्रेडफोर्ड, लीड्स, हैलीफैक्स, वेकफील्ड में ऊनी वस्त्र के कारखाने पाये जाते है। शेफील्ड इस्पात से बने सामानों के लिए विख्यात है।

12.6.1.3 उत्तरी पूर्वी औद्योगिक प्रदेश

यह प्रदेश टाइनस नदी के किनारे न्यू कैसल के पास के क्षेत्र में विकसित हुआ है। कोयले की उपलब्धता तथा लोहा के आयात की सुविधा और टाइनस नदी मुहाने पर पोताश्रय की सुविधा के कारण यहाँ जलयान,रेलवे के सामान तथा हल्के उद्योग विकसित है। मिडिल–सवरों, स्टॉकन एवं हारटेल्पुल प्रमुख धातु उद्योग केन्द्र है। यहाँ ब्रिटेन का 10 प्रतिशत से अधिक लौह–इस्पात तैयार किया जाता है।

12.6.1.4 दक्षिणी वेल्स प्रदेश

दक्षिणी वेल्स में लौह–इस्पात, तेलशोधन, ताँबा, टिन एवं एल्युमीनियम उद्योग विकसित पाये जाते है। उत्तम गुणवत्ता की कोयले की उपलब्धता एवं प्रारम्भ में कुछ क्षेत्रों में लोहा के प्राप्त होने से इस औद्योगिक प्रदेश

का विकास हुआ था। कार्डिफ, न्यूपोर्ट, तथा स्वाँसी नगर समुद्र तट स्थित है जहाँ पर स्थित पोताश्रय से पहले कोयला एवं लोहा निर्यात किया जाता था। परन्तु लोहे का स्थानीय भण्डार समाप्त होने से विदेशों आयात होने लगा है।

12.6.1.5स्काटलैण्ड घाटी औद्योगिक प्रदेश

एडिनबरा से क्लाइड नदी मुहाने तक लगभग 80 किलोमीटर चौड़ी दरार घाटी में यह प्रदेश विकसित है। ग्लासगो, डंडी तथा एडिनबरा इस प्रदेश के मुख्य औद्योगिक केन्द्र है। कोयले की खाने, स्थानीय स्तर पर थोड़ी बहुत मात्रा में लोहा तथा चिकनी मिट्टी की सुलभता पायी जाती है। यहां स्थित क्लाइड नदी तथा नहरे सस्ता जल परिवहन की सुविधा प्रदान करती है। ग्लासगों बन्दरगाह आयात–निर्यात के लिए सुविधा प्रदान करता है। ग्लासगों में जलयान उद्योग, डण्डी वस्त्र उद्योग एवं एडिनवर्ग कागज तथा शराब उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। इसके अलावा इंजीनियरिंग उद्योग, मशीनें, रेल इंजन, मोटरकार आदि उद्योग भी पाये जाते है।

12.6.1.6 पेरिस औद्योगिक प्रदेश

यह फ्रांस में पेरिस के आस–पास केन्द्रस्थल के रूप में विकसित औद्योगिक प्रदेशों है। यहां मोटरवाहन, वायुयान, बिजली की मशीनें, धातु के सामान, रेल इंजन, छपाई, शराब बनाने, खाद्य पदार्थ आदि के उद्योग पाये जाते है। यहां अधिक जनसंख्या के कारण वस्तुओं की मांग अधिक है। कुशल श्रमिक, जल विद्युत तथा ताप विद्युत, सस्ता जल परिवहन और बाजार की सुविधा से उद्योगों के विकास को बढ़ावा मिला है। पेरिस फ्रांस के प्रत्येक भाग से नौगम्य नदियों, रेलमार्गों, वायुमार्ग एवं सड़क मार्ग से जुड़ा है तथा पूँजी का एक बड़ा केन्द्र हैं।

12.6.1.7फ्लैण्डर्स औद्योगिक प्रदेश

बेल्जियम के दक्षिणी–पश्चिमी भाग एवं फ्रांस के समीपवर्ती भाग में 3000 वर्ग किमी0 क्षेत्र में फैले प्रदेश को फ्लैण्डर्स कहते है। यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही वस्त्र उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। यहां सूती, ऊनी तथा लिनेन वस्त्र के उद्योग पाये जाते है। लीना नदी के जल में चूने की मात्रा अधिक होने से फ्लैक्स से रेशा निकालने में सहायता मिलती है। इस प्रदेश का मुख्य नगर घेण्ट तथा कोट्रीक मुख्य वस्त्र उत्पादक है। वस्त्र के अतिरिक्त रासायनिक पदार्थ, शीशे के वर्तन तथा धातु के सामान भी बनते है।

12.6.1.8एम्सटर्डम–राटरडम औद्योगिक प्रदेश :

इस प्रदेश का विस्तार एम्सटर्डम से ब्रसल तक 250 किमी लम्बे एवं 65 से 100 किमी0 चौड़े क्षेत्र में पाया जाता है। यह क्षेत्र तटीय प्रदेश है तथा यूरोप के औद्योगिक प्रदेश के प्रवेश द्वार पर स्थित है। यहां न तो कोयला पाया जाता है, न कोई विशेष कच्ची सामाग्री उपलब्ध है, लेकिन आदर्श स्थिति के कारण यहां उद्योग विकसित हो गये है। राइन, म्यूज आदि नौगम्य नदीयां समुद्र में गिरती है तथा इनके किनारे ब्रुसेल्स, एन्टवर्प, राटर्डम, एम्सटर्डम जैसे बड़े नगर एवं बन्दरगाहों के किनारे तेलशोधन, चीनी साफ करना, गेहूँ, रबर, चमड़े आदि के उद्योग विकसित है। एन्टवर्प में विश्व का सबसे बड़ा हीरा तराशने का उद्योग है।

12.6..2 भूमध्यसागरीय औद्योगिक प्रदेश

यूरोप के भूमध्यसागरीय तटीय भाग के सहारे स्थित बन्दरगाहों के आसपास के क्षेत्र में इस ओद्यौगिक प्रदेश का विकास हुआ है। इटली के वेनिस तथा जेनेवा एवं फ्रांस के मार्सेली प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र है जहां पेट्रोल शोधन, रसायन उद्योग, लोहा–इस्पात प्रमुख उद्योग है। रसायन एवं लोहा–इस्पात उद्योग आयातित कच्ची साम्रागी पर निर्भर है। जल विद्युत, सुगम यातायात, कुशल श्रमिक एवं उन्नत तकनीक उद्योगों के विकास के लिए महत्वपूर्ण कारक है।

12.6.3 आन्तरिक प्रदेश

यूरोप के आंतरिक भाग में जहां कोयला पाया जाता है उन क्षेत्रों में इस औद्योगिक प्रदेश का विकास हुआ है। ग्रेट ब्रिटेन के मिडलैण्डस्, ब्रुसेल्स, फ्रांस–जर्मनी सीमा पर सार–लारेन क्षेत्र, जर्मनी के रूर क्षेत्र तथा इटली के तूरिन प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र है, जिसका विवेचन अधोलिखित है–

12.6.3.1 रूर औद्योगिक प्रदेश

जर्मनी के वेस्टफेलिया प्रदेश के राइन घाटी प्रदेश में स्थित है। यह प्रदेश पश्चिम से पूर्व 120 किमी0 लम्बे तथा उत्तर–दक्षिण में 65 किमी चौड़े क्षेत्र में फैला हुआ है। यहां अनेक औद्योगिक नगर पाये जाते है जिनमें से ऐसेन, डार्टमुंड, डुइजेलफोर्ड, ग्लैनबैक आदि मुख्य केन्द्र है। स्थानीय स्तर पर उत्तम कोटि का कोयला, स्वीडन से लोहा का आयात, नदियों, सड़को, और रेलमार्गो द्वारा परिवहन की सुविधाएं प्राप्त है। इस क्षेत्र में घनी जनसंख्या के कारण सस्ता श्रम भी उपलब्ध है। डार्टमुंड, ओबरहाडजेन, ऐसेन, बोखुम में लोहा–इस्पात आधारित भारी इंजीनियरिंग उद्योग पाये जाते है। रूर क्षेत्र में कोक पर आधारित रासायनिक उद्योगों का विशेष महत्व है। राइन नदी के पूर्व में वुपरताल, सीजबुर्ग एवं पश्चिम क्षेत्र में कोलोन, मुइनचेन–ग्लाडवाख, रीडर डोरमागेन तथा आखेन वस्त्र उद्योग के लिए प्रसिद्ध है।

12.6.3.2 साम्ब्रे–कैम्पाइन औद्योगिक प्रदेश

उत्तरी फ्रांस के औसेज से मध्य बेल्जियम होता हुआ पश्चिमी जर्मनी के आखेन नगर तक इस प्रदेश का विस्तार पाया जाता है। इस क्षेत्र में साम्ब्रे–म्यूज तथा कैम्पाइन कोयले की खाने है। लोहा, जस्ता तथा सीसा उद्योग यहां के मुख्य उद्योग है। इस औद्योगिक प्रदेश में लीज बन्दूक–पिस्तौल के लिए प्रसिद्ध है। यहां के चालेराय क्षेत्र में उच्च कोटि के बालू की उपलब्धता से सीसा उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। वरवीयर नगर वस्त्र उद्योग एवं नामूर यांत्रिक इंजीनियरिंग उद्योग के प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त रसायन, मशीनरी, चमड़ा, कागज के भी उद्योग पाये जाते है।

12.6.3.3 ऊपरी राइन औद्योगिक प्रदेश

यह प्रदेश पश्चिमी स्विटजरलैण्ड से मध्य जर्मनी तक विस्तृत है। इस प्रदेश की सबसे बड़ी विशेषता न तो यहां कोयला पाया जाता है और न ही लौह अयस्क। यहां ऐसे उद्योग की प्रधानता है जिनमें कम कच्ची सामाग्री की आवश्यकता होती है। इसलिए इस क्षेत्र में मुख्य रूप से इंजीनियरिंग उद्योग मिलते है जिसके लिए कुशल श्रमिक, पूंजी तथा मांग उपलब्ध है। फ्रैंकफुट, स्टटगार्ड,मान्नहाइम,स्ट्रासबर्ग, ज्यूरिख तथा बेल्फोर्ड प्रमुख केन्द्र है। फ्रैंकफुट में मशीन औजार, मोटर–गाड़ियां, रासायनिक पदार्थ, चमड़े तथा वस्त्र के उद्योग और मान्हाइम में शीशे, सेरामिक, मशीन औजार, भारी मशीन, वायुयान, मोटरगाड़ियां, कागज तथा रासायनिक पदार्थ के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है।

12.6.3.4 लोरेन–सार औद्योगिक प्रदेश

फ्रांस के लारेन क्षेत्र तथा जर्मनी के सार क्षेत्र में यह प्रदेश स्थित है। लारेन क्षेत्र में लोहा एवं सार क्षेत्र में कोयला पाया जाता है। सार तथा मौसेल नदियां जल की सुविधा प्रदान करती है। लौह–इस्पात उद्योग इस क्षेत्र का प्राचीन उद्योग है। नान्सी में भारी उद्योग, वस्त्र, फर्नीचर, बिजली की मशीनों के उद्योग विकसित है।

12.6.3.5 उत्तरी इटली का औद्योगिक प्रदेश

पो नदी घाटी क्षेत्र में इटली के इस औद्योगिक प्रदेश का विस्तार मिलता है। कोयले तथा लोहे की कमी के बावजूद भी उत्तम जल विद्युत की सुविधा, सुगम यातायात एवं कुशल श्रमिक की उपलब्धता के कारण इस क्षेत्र का विकास हुआ है। लोम्बार्डी तथा पीडमाउण्ट प्रान्त में इटली के अधिकांश उद्योग केन्द्रित है। मिलान में रेशम, ऊनी, सूती, रेयान तथा सभी प्रकार के वस्त्र का उत्पादन होता है। तुरिन में मोटरगाड़ियां, वायुयान, मशीन औजार, रेलवे इंजन तथा ट्रैक्टर का निमार्ण होता है। मोन्जा में लोहा–इस्पात एवं बोवीसा में रासायनिक पदार्थ के उद्योग पाये जाते है।

12.6.3.6 दक्षिण स्कैण्डेनेविया औद्योगिक प्रदेश

यह प्रदेश पूर्वी डैनमार्क तथा स्वीडन के क्षेत्र में स्थित है। इस क्षेत्र में गैलावेर एवं किरूना में उत्तम कोटि का कोयला पाया जाता है। इस प्रदेश के अधिकांश कारखाने स्टाकहोम से वार्नेन झील को मिलाने वाली रेखा के दक्षिण में है। स्टाकहोम विद्युत का सामान बनाने के लिए प्रसिद्ध है। कोपनहेगन तथा मालमों में जलयान उद्योग, रसायन उद्योग, मशीने, वायुयान, कागज तथा वस्त्र के उद्योग स्थित है। पूर्वी डेनमार्क में धातु तथा लकड़ी के सामान तैयार किये जाते है।

12.6.4 यूरोप के अन्य औद्योगिक प्रदेश

यूरोप के सभी देशों में प्रमुखता से औद्योगिक क्रियाकलाप होते है। प्रत्येक नगर कुछ न कुछ वस्तुएं अवश्य निर्मित करते है, जिसके कारण यूरोप में छोटे–छोटे अनेक औद्योगिक क्षेत्र फैले हुए है। फ्रांस, जर्मनी, पुर्तगाल, स्पेन, पोलैण्ड, चेकोस्लाविया, हंगरी, रोमानिया, यूगोस्लाविया, आस्ट्रिया आदि देशों में इस प्रकार के औद्योगिक प्रदेशों की प्रधानता पायी जाती है। पूर्वी जर्मनी के इनोवर,कासेल, प्राग एवं बर्लिन नगरों में रासायनिक उद्योग काविकास हुआ है। ऊपरी साइलेशिया के अंतर्गत दक्षिणी पश्चिमी पोलैण्ड, ऊपरी मध्य चेक एवं स्लोवाकिया क्षेत्र में लौह–इस्पात, रसायन तथा सूती वस्त्र के उद्योग पाये जाते है।

12.7 जापान के औद्योगिक प्रदेश

पूर्वी एशिया में प्रशान्त महासागर पर चापनुमा आकार में चार बड़े द्वीपों में विस्तृत पाया जाता है। जापान में 1850 ई0 से पहले परम्परागत हस्त उद्योग विकसित अवस्था में था, जिसके आधार पर 1870 ई0 के बाद आधुनिक उद्योगों की नींव पड़ी। तकनीकी प्रगति के साथ इस क्षेत्र के हस्त उद्योग यंत्रीकृत उद्योग में बदल गए। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जापान में उद्योगों का तेजी से विकास हुआ। 1930 के बाद जापान में भारी उद्योगों की संख्या तेजी से बढ़ी। द्वितीय विश्व युद्ध में इस देश के क्षत–विक्षत हो जाने के बाद इस देश ने आश्चर्यजनक रूप से प्रगति की और दुनिया का सबसे महत्वपूर्ण औद्योगिक देश बन कर उभरा। यहां के चार प्रमुख औद्योगिक प्रदेशों में उद्योग का केन्द्रीकरण पाया जाता है–

1. क्वान्तों का औद्योगिक प्रदेश
2. किन्की का औद्योगिक प्रदेश
3. नगोया का औद्योगिक प्रदेश
4. किताक्यूशू औद्योगिक प्रदेश
5. अन्य औद्योगिक क्षेत्र

12.7.1 क्वातों का औद्योगिक प्रदेश

यह औद्योगिक प्रदेश टोकियो–याकोहामा प्रदेश के नाम से भी जाना जाता है जिसका विस्तार कान्तों तटीय मैदान में विस्तृत है। यह प्रदेश हांशू द्वीप पर विस्तृत है। जापान के सबसे बड़े औद्योगिक प्रदेश के नाम से विख्यात है। यहां विविध प्रकार के उद्योगों में खाद्य पदार्थ, आप्टिकल यंत्र, रासासनिक पदार्थ, मशीने, इंजीनियरिंग एवं छपाई उद्योग अधिक महत्पूर्ण है। टोकियो एवं याकोहामा विश्व प्रसिद्ध बन्दरगाह है जिसके पृष्टप्रदेश में जलपोत, वायुयान, वस्त्र, लौह–इस्पात, विद्युत उपकरण, इलेक्ट्रानिक्स आदि वस्तुओं के उद्योग पाये जाता है। टोकियो जापान का आर्थिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र भी है। क्वातों प्रदेश में व्यापारिक सुविधायें, कुशल श्रमिक, कोयला, परिवहन की सुविधा एवं जलविद्युत की सुलभता पायी जाती है जो उद्योगों की स्थापना में महत्वूर्ण भूमिका निभाते है। टोकियो के दक्षिण पूर्व चीबा में लौह–इस्पात कारखाना एवं कावासाकी में भारी उद्योगों की प्रधानता पायी जाती है।

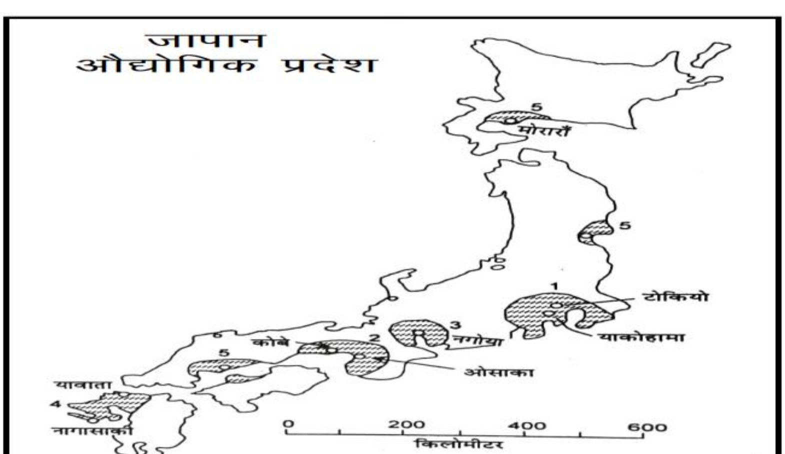

12.7.2 किंकी का औद्योगिक प्रदेश

क्वातों मैदान के समान ही किन्की मैदान में भी सुविधाये मिलती है। इसे ओसाका–कोबे औद्योगिक प्रदेश के नाम से भी जाना जाता है। हांशू द्वीप के दक्षिण में फैला जापान का दूसरा प्रमुख औद्योगिक प्रदेश है। ओसाका में पहले सूत काटने का सबसे बड़ा केन्द्र था तथा इसके चारों ओर के नगरों में बुनने का माम होता था परन्तु 1930 के बाद से यहां धातु उद्योग की प्रधानता हो गयी और यह जलयान, वायुयान, मशीन तथा खाद्य पदार्थ के उद्योग विकसित हो गये। कोबे,क्योटो, नारा ,सकाई आदि इस क्षेत्र के प्रमुख औद्योगिक नगर है।

12.7.3 नागोया औद्योगिक प्रदेश

क्वातों एवं किन्की औद्योगिक प्रदेशों के मध्य में इस प्रदेश का विस्तार पाया जाता है। यहां घनी जनसंख्या होने के कारण कुशल श्रमिक, जल विद्युत, पूँजी और यातायात की सुविधा उद्योगों के अनुकूल है। यह प्रदेश रेशमी, सूती एवं ऊनी वस्त्रों के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। जापान के ऊनी वस्त्रों के उत्पादन का 60 प्रतिशत भाग इसी क्षेत्र से होता है। नागोया मिट्टी के बर्तन का बनाने का सबसे वड़ा केन्द्र है, जिसकी कलाकृतियां विदेशों में बहुत प्रसिद्ध है। नागोया बन्दरगाह इस प्रदेश का प्रवेश द्वार है। वस्त्र उद्योग के अतिरिक्त वायुयान, मोटरगाड़ी, रासायनिक पदार्थ आदि अन्य महत्वपूर्ण उद्योग है।

12.7.4 किता–क्यूशू औद्योगिक प्रदेश

क्यूशू द्वीप पर स्थित इस प्रदेश को नागासाकी औद्योगिक प्रदेश के नाम से जाना जाता है। यहां कोजला क्षेत्र स्थित होने से भारी उद्योगों की प्रधानता मिलती है। इसके प्रमुख केन्द्र नागासाकी,उत्तरी क्यूशू, केमोगी, यावाता, कोकुरा, फुकुओका, शिमोनोसेकी आदि प्रमुख औद्योगिक केन्द्र है। जापान के लगभग 50 प्रतिशत इस्पात का उत्पादन इसी क्षेत्र में होता है, जिसके लिए यावाता प्रसिद्ध है। इस्पात के उत्पादन के आधार पर इंजीनियरिंग तथा धातु के सामान बनाने के कारखाने इस प्रदेश में विकसित है। इसके अतिरिक्त जलयान निमार्ण, सीमेंट, मोटरकार आदि के उद्योग भी पाये जाते है।

12.7.5 अन्य औद्योगिक क्षेत्र

उपरोक्त मुख्य क्षेत्रों के अतिरिक्त गौण औद्योगिक क्षेत्र भी विभिन्न भागों में विकसित है जो बहुत ही महत्वपूर्ण है। दक्षिणी होकैड़ों उत्तरी जापान का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र जहां स्थानीय स्तर पर कोयला, जल विद्युत, खनिज आदि की उपलब्धता के कारण उद्योगों के महत्वपूर्ण केन्द्र बन गये है। हांशू के उत्तरी भाग में कैनेशी औद्योगिक क्षेत्र भी महत्वपूर्ण है। नाइगाता में वस्त्र उद्योग, रासायनिक पदार्थ, मशीन बनाने के कारखाने स्थित है।

12.8 सारांश

इस इकाई में हमने पढ़ा कि जिस क्षेत्र में स्थानीय स्तर कच्ची सामग्री, ऊर्जा के स्रोत, परिवहन के साधन एवं बाजार तथा अन्य अनुकूल अवस्थापनात्मक तत्वों के मिलने से बड़े पैमाने पर उद्योग स्थापित होने लगते है। उस क्षेत्र में उद्योग के सहायक अन्य छोटे–छोटे उद्योगों का विकास होने लगता है जिसके कारण वह क्षेत्र औद्योगिक प्रदेश के रूप में बदल जाता है। औद्योगीकरण के स्तर को निर्धारित करने के स्टेन द गियर, राइट, जोन्स आदि विद्वानों ने विभिन्न विधियों का उपयोग कर औद्योगिक प्रदेशों का निर्धारण किया तथा विश्व को औद्योगिक प्रदेशों में विभाजित किया है। प्रत्येक औद्योगिक प्रदेश की विशेषताएं एक दूसरे से भिन्न होती है। इन्ही औद्योगिक प्रदेशों में मनुष्य की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए वस्तुओं का उत्पादन होता है।

12.9 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. न्यू इग्लैण्ड ओद्योगिक प्रदेश किस औद्योगिक प्रदेश में स्थित है

   अ. उत्तरी अमेरिका औद्योगिक प्रदेश ब. जापान के औद्योगिक प्रदेश

   स. यूरोप के औद्योगिक प्रदेश द. ग्रेट ब्रिटेन के औद्योगिक प्रदेश

2. डेट्रायट किसके उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है—

अ. वस्त्र　　ब. मोटरगाड़ी

स. कोयला　　द. खाद्य पदार्थ

3. रूर औद्योगिक प्रदेश स्थित है—

अ. फ्रांस　　ब. जापान

स. जर्मनी　　द. इटली

उत्तर – 1.अ, 2. ब, 3.स

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1 सिंह, जगदीश, एवं सिंह, के.एन.(2010) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।

7 मौर्य, एस. डी. (2022), आर्थिक भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज।

8 श्रीवास्तव, वी.के. एवं राव, बी.पी. (2002), आर्थिक भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।

9 गौतम, अलका, (2019) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।

10 अलेक्जेंडर, जे.डब्लू. (1979) इकोनॉमिक ज्योग्राफी, प्रेंटिस हाल।

11 लांगमैन, जी.सी. एण्ड मार्गन, जी.सी. (1982) हयूमन एण्ड इकोनॉमिक ज्योग्राफी,आक्सफोर्ड प्रेस।

12.11 अभ्यास प्रश्न

- औद्योगिक प्रदेशों का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
- औद्योगिक प्रदेशों को सीमांकित करने वाले कारकों की व्याख्या कीजिए।
- औद्योगिक प्रदेशों को निर्धारित करने वाले विधियों का वर्णन कीजिए।
- यूरोप के औद्योगिक प्रदेशों की विवेचना कीजिए।
- संयुक्त राज्य अमेरिका के ओद्योगिक प्रदेशों का वर्णन कीजिए।
- निम्नलिखित पर संक्षेप में लिखिए

    5. नागोया प्रदेश
    6. ओसाका
    7. डेट्रायट
    8. मिशिगन झील

इकाई–13 विश्व के प्रमुख सामुद्रिक जलमार्ग

इकाई का रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 जल परिवहन

13.4 विश्व के प्रमुख जल परिवहन

13.5 भारतीय प्रमुख जल परिवहन

13.6 महासागरीय परिवहन की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहरें एंव मार्ग

13.7 सागरमाला परियोजना

13.8 जल परिवहन की समस्याएं

13.9 जल परिवहन की संभावनाएं

13.10 सारांश

13.11 परीक्षोपयोगी प्रश्न

13.12 महत्वपूर्ण पुस्तके संदर्भ

13.13 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

मानव अपने आदिकाल से ही एक घुमंतू प्राणी रहा है। ऐसे में मानव के भ्रमण के अनेक उद्देश्य व विविध स्वरूप रहे हैं। जैसे–जल परिवहन, वायु परिवहन व सड़क परिवहन। अतः इस अध्याय में आप विश्व के प्रमुख आंतरिक एवं वाह्य जलमार्गों के विकास और स्वरूपों का अध्ययन करेंगे। जिसमें सर्वाधिक उपयोगी व सस्ते स्रोतों में जल परिवहन ही है, ऐसा माना जाता है कि जो भी व्यक्ति या देश जितना ही चलेगा वह उतना ही विकास करेगा अर्थात किसी भी देश या व्यक्ति के विकास में परिवहन का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान होता है।

13.2 उद्देश्य

भूगोल की इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप–

- जल परिवहन के विविध रूपों को समझ सकेंगे।
- जल परिवहन की वैश्विक उपलब्धता एवं लाभ को समझ सकेंगे।
- जल परिवहन के विकास से देश के विकाश में सहयोग एवं रोजगार के अवसरों में वृद्धि को समझने में सहायक होगा।
- इसमे भारतीय जल परिवहन के विकास की स्थिति एवं वर्तमान स्वरूप को समझने में सहायता मिलेगी।
- भारतीय व्यापार में जल परिवहन के विकास की संभावना एवं लाभ को भी समझ सकते हैं।

13.3 जल परिवहन

परिवहन क्षेत्र किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण संरचना है। जिससे जल परिवहन सबसे सस्ते साधनों में से एक है। इस माध्यम से भारी व हल्के सामान को आसानी से कम खर्चे में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचा जा सकता है। जहां इस माध्यम में ईंधन की कम खपत होती है, वहीं पर्यावरणीय संरक्षण को भी बढ़ावा मिलता है। जल परिवहन से उद्योग के अवसरों का ज्यादा सृजन होता है। किन्तु इस

परिवहन प्रणाली में समय अधिक लगता हैं अर्थात जल परिवहन सड़क, रेल व वायु परिवहन से प्रतिस्पर्धा में पिछड़ जाता है। जल परिवहन को दो भागों में बाटा जा सकता है।

I. आंतरिक या अंतर्देशीय जल परिवहन

II. समुद्री जल परिवहन

13.4 विश्व के प्रमुख आंतरिक जलमार्ग

यूरेशिया–

1. डेन्यूब–

जलमार्ग यह कुल 10 देशों से होकर लगभग 2415 किलोमीटर नवपरिवहन योग्य है। जो जर्मनी, ऑस्ट्रिया, स्लोवाकिया, हंगरी, क्रोएशिया, सर्बिया, बुल्गारिया, रोमानिया, माल्दोवा, यूक्रेन से प्रभावित होती है। इस नदी के तट पर कुछ प्रमुख शहर इस प्रकार हैं लिंज, विएना, ब्रेतिस्लावा, बुडापेस्ट, बेलग्रेड, पेंन्सेवो, ड्राबेटा, गलाटी आदि। डेन्यूब नदी की कुल लंबाई 2850 किलोमीटर है। जो ब्लैक फॉरेस्ट(जर्मनी) से निकलकर पश्चिम से पूर्व दिशा में प्रवाहित होते हुए ब्लैक सी में डेल्टा बनाती है।

2. राइन नदी जलमार्ग–

इस नदी की कुल लंबाई 1230 किलोमीटर है जिसमें से 883 किलोमीटर नौगम्य है। यह जलमार्ग लगभग 184 किलोमीटर फ्रांस व जर्मनी से सीमा बनाती है। इसका रिफ्ट घाटी में प्रवाह होता है। राइन नदी स्विट्जरलैंड के आल्प्स पर्वत से प्रारंभ होकर दक्षिण से उत्तर प्रवाहित होते हुए उत्तरी सागर में डोवर जलडमरू के पास अपने जल का विसर्जन करती है। जो एश्चुरी का निर्माण करती है। राइन नदी स्विट्जरलैंड, फ्रांस, जर्मनी, लिश्टेंस्टीन, ऑस्ट्रिया, नीदरलैण्ड, देशो से होकर बहती है। इन देशों के कुछ प्रमुख शहर इस प्रकार हैं जो नदी के तट पर बसे हैं कॉलोन(जर्मनी), राटरडम(नीदरलैंड), स्टारवर्ग(फ्रांस) आदि।

3. वोल्गा नदी जलमार्ग–

वोल्गा नदी की लंबाई 3530 किलोमीटर है। जिसमें से लगभग 3000 किलोमीटर क्षेत्र ही नौगम्य है। जो यूरोप की सबसे लंबी नदी तथा रूस का सबसे महत्वपूर्ण जलमार्ग है। प्रवाह उत्तर से दक्षिण होता है। यह वल्दाई की पहाड़ी से निकलकर यूरोप का सबसे बड़ा डेल्टा बनाते हुए कैस्पियन सागर के उत्तरी भाग में विलीन हो जाती है। वोल्गा नदी बाल्टीक सागर से बाल्टीक जल मार्ग द्वारा, श्वेत सागर से बाल्टीक नहर द्वारा, मास्को नदी से मास्को नहर द्वारा तथा अजोव सागर से वोल्गा डान नहर से जुड़ा है। इस नदी के तट पर स्थित कुछ प्रमुख शहर त्वेर(कालिनिन), कोस्त्रोमा, कजान, सारातोव, वोल्गोग्राद, रोस्त्रो आदि प्रमुख हैं।

4. नीपर नदी जलमार्ग–

इसकी कुल लंबाई 2201 किलोमीटर है। जिसमें लगभग कल 2000 किलोमीटर तक नौगम्य है। यह नदी रूस के सोमोलेंस्क नामक स्थान से निकलकर रूस के बेलारूस व यूक्रेन में प्रवाहित होते हुए काला सागर के समीप डेल्टा बनाते हुए गिरती है। इस नदी के तट पर स्थित प्रमुख नगरो में डोरोगोबझ, मोगीलेव, कीव, चेर्कसी, निप्रो आदि है। नीपर नदी यूक्रेन की परिवहन व उसकी अर्थव्यवस्था के विकास हेतु सहयोगी नदी है।

5. एल्ब नदी जलमार्ग–

इसकी कुल लंबाई 1094 किलोमीटर है। जिसमें लगभग 800 किलोमीटर तक यह नौगम्य है। इसका उद्गम चेक गणराज्य के कर्कोनोज पर्वत से होता है। जो उत्तर सागर(जर्मनी) में एश्चुरी बनाते हुए मिल जाती है। इस नदी का मुख्यतः प्रवाह जर्मनी व चेक गणराज्य तक ही है।

6. मेनन नदी जलमार्ग–

इसकी कुल लंबाई लगभग 525 किलोमीटर है। यह जर्मनी के फ्रैंकोनिया प्रदेश से निकलकर राइन नदी में मिल जाती है। यह राइन नदी से लेकर वेम्वर्ग तक नौगम्य में है।

7. म्यूस नदी जलमार्ग–

इसकी कुल लंबाई 925 किलोमीटर है। जो अपने प्रवाह के अधिकतम भाग में नौगम्य है। यह नदी फ्रांस के ले चॉटलेट सर म्यूख से निकलकर नीदरलैंड में उत्तरी सागर में विलीन हो जाती है। इस नदी का प्रवाह मार्ग मुख्यतः फ्रांस, बेल्जियम और नीदरलैंड में है।

8. रोन नदी जलमार्ग–

रोन नदी की कुल लंबाई 813 किलोमीटर है। जिसमें लगभग 325 किलोमीटर तक नौगम्य है। यह नदी स्विट्जरलैंड के आल्पस पर्वत के रान हिमनद से निकलकर जेनेवा झील से होते हुए भूमध्य सागर में गिरती है। इसका प्रवाह उत्तर से दक्षिण है यह नदी जेनेवा झील व भूमध्य सागर दोनों जगह गिरने से पूर्व डेल्टा का निर्माण करती है। यह मुख्यतः फ्रांस व स्विट्जरलैंड में प्रवाहित होती है। इसके तट के मुख्य शहर ब्रिगेडियर, सैरे, जिनेवा, ल्योन, बैलेंस आदि हैं।

9. सीन नदी जलमार्ग–

इसकी कुल लंबाई 777 किलोमीटर है। जिसका लगभग इंग्लिश चैनल में विसर्जन से पूर्व 120 किलोमीटर तक नौगम्य है। सीन नदी के तट पर फ्रांस की राजधानी पेरिस भी स्थित है। यह नदी फ्रांस के लांग्रेस पठार से निकलकर लेहाब्रे के समीप इंग्लिश चैनल में अपने जल का विसर्जन करती है। इसका प्रवाह दक्षिण– पूर्व से उत्तर– पश्चिम में होता है।

10. सेल्ट नदी जलमार्ग–

इसकी कुल लम्बाई 360 किमी. है तथा इसका प्रवाह फ्रांस, बेल्जियम व नीदरलैण्ड में होता है। जिसमें से लगभग नौगम्य क्षेत्र 260 किमी. है। यह नदी दक्षिण से उत्तर दिशा में प्रवाहमान है। जो उत्तरी फ्रांस से निकलकर बेल्जियम में उत्तर सागर में एश्चुरी बनाते हुए गिरती हैं।

11. डॉन नदी जलमार्ग–

इसकी कुल लम्बाई 1870 किमी. है। जिसका लगभग 1355 किमी. व बसंत ऋतु में 1600 किमी. तक नौगम्य है। यह नदी उत्तर से दक्षिण वक्राकार मार्ग में प्रवाहित होती है। जो पूर्णतः रूस की नदी है। यह नदी नोवोमोस्कोब्स्क से निकलकर अजोव सागर के उत्तर पूर्वी भाग में स्थित तागररोग खाड़ी के समीप डेल्टा बनाते हुए गिरती है।

12. ओब नदी जलमार्ग–

इसकी कुल लम्बाई 3650 किमी है जो लगभग 1500 किमी. तक नौगम्य है। इस नदी का उद्गम अल्ताई पर्वतों से निकलने वाली विया नदी व कुतुन नदी के मिलने के संगम से होता है। तथा यह अपना जल आर्कटिक महासागर में गिराती है। इस नदी का परिवहन हेतु महत्व ट्रांस साइबेरियन रेलमार्ग के पूर्व अधिक होता था।

13. लीना नदी जलमार्ग–

पूर्णतः रूस में प्रवाहित इस नदी की कुल लम्बाई 4294 किमी. है। यह बैकाल पर्वत से निकलकर आर्कटिक महासागर में डेल्टा बनाते हुए गिरती है। यह नदी तुर्तुस से मुहाने तक नौगम्य हैं किन्तु तापमान कम होने के कारण अधिकांश समय हिम से ढकी रहती है।

14. आमूर नदी जलमार्ग–

इसकी कुल लम्बाई 2824 किमी. है। यह नदी अधिकांश नौगम्य है। जब तक की नदी का जल जमा न हो। इस नदी की उत्पत्ति दो नदियों के संगम से होता है। रूस की शिल्का नदी व चीन के मंचूरिया से निकलने वाली अरगून नदी से। यह नदी रूस व चीन की सीमा भी बनाती है तथा अन्त में एश्चुरी बनाते हुए टार्टरी जलडमरू में गिरती है।

15. मेकांग नदी जलमार्ग–

इस नदी की लम्बाई 4350 किमी. है। इस नदी छोटी नौकाओं का परिवहन तो होता है किन्तु ज्यादा लम्बे क्षेत्रों तक नहीं क्योंकि इस नदी में अनियमित मौसमी प्रवाह तथा जल प्रपातों के कारण अधिकांश भाग नौकाओं के लिए अगम्य है। यह नदी तिब्बत में स्थित गुओजोगंमुवा पर्वत से आरम्भ होकर चीन, म्यांमार, लाओस, थाइलैण्ड

व कम्बोडिया में बहते हुए वियतनाम में डेल्टा बनाकर दक्षिणी चीन सागर में गिरती है।

16. पीली नदी जलमार्ग–

इसकी लम्बाई 5464 किमी. है। यह नदी बयान हार पर्वत से निकलकर बोहाई सागर में डेल्टा बनाते हुए मिलती है। यह नदी 'चीन का दुःख' व विश्व की सर्वाधिक विश्वासघाती नदी के नाम से विख्यात है। आधुनिक इंजनों की सहायता से इस नदी में हैनान प्रांत के आस पास क्षेत्रों में परिवहन कार्य संचालित हो रहा है।

उत्तरी अमेरिका–

1. मिसिसिपी नदी जलमार्ग–

इसकी लम्बाई 3730 किमी. है। यह लगभग 2500 किमी. तक अन्तःस्थलीय जलमार्ग का भाग है। मिसिसिपी का उद्‌गम इटास्का झील तथा मुहाना मैक्सिको की खाड़ी में लुसियाना के समीप हैं। यह नदी मिनसोटा, विस्कॉसिन, आयोवा, इलिनायस, मिसौरी, केटंकी, टेनेसी, मिसिसिपी व लुइसियाना प्रांतों से होकर बहती है। मिसिसिपी के तट के प्रमुख शहर सेण्ट क्लाउड, मिनीयापोलिस, सेण्टपॉल, लाक्रासा, क्वाडसिटी सेण्टलुइस, मेम्फिस, बेटानगर व न्यू आर्लियंस नगर स्थित हैं।

2. मिसौरी नदी जलमार्ग–

इसकी लम्बाई लगभग 3767 किमी. है। यह नदी सयुक्त राज्यअमेरिकाकी सबसे बड़ी नदी है। जो कि मिसिसिपी की सहायक है। यह नदी पश्चिमी मोण्टाना के रॉकीज पर्वतों से उत्पन्न होती है। तथा सेंट लुइस के समीप मिसिसिपी से मिल जाती है। मिसौरी व उसकी सहायक नदीयों से जल परिवहन का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। इसके तट पर बसे प्रमुख शहर बिस्मार्क, पियरे, सिआवस सिटी, ओहाया, सेण्ट जोसेफ, कंसास सिटी, सेंटलुई नगर बसे हैं।

3. ओहायो नदी जलमार्ग–

इस नदी की लम्बाई 1579 किमी. है। यह भी मिसिसिपी की ही सहायक नदी है। इस क्षेत्र में जल परिवहन का विकास की दर उच्च पाई जाती है। ओहियो नदी पेसिलवोनिया, आहायो, पश्चिमी वर्जिनिया, केंटकी, इण्डियाना व इलिनोइस राज्यों से होकर प्रवाहित होती है। इसके तट पर बसे प्रमुख शहर– पिट्‌सबर्ग, पूर्वी लिवरपूल, व्हीलिंग, पार्कर्सबर्ग, हण्टिगंटन, एशलैण्ड, लुइसविले, ओक्सबोरो, एक्सविले, हेण्डरसन व कैरो नगर प्रमुख है। इसके क्षेत्र में उच्च प्रौद्योगिकी पाई जाती है।

4. सेण्ट लारेंस नदी जलमार्ग–

इसकी कुल लम्बाई 1197 किमी. एश्चुरी सहित है। यह नदी महान झीलों से निकलकर अटलांटिक में गिरने वाली तथा कनाडा व सयुक्त राज्यअमेरिका के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय सीमा का भी निर्धारण करती है। इसका प्रवाह क्षेत्र ओण्टेरियो, क्यूबेक व न्यूयार्क राज्य है। यह नदी अनेकों नहर, लाक्स, व चैनलों का समूह है जो अटलांटिक महासागरीय परिवहन मार्ग को महाद्वीपीय क्षेत्रों अर्थात झील प्रदेश के सुगमता से जोड़ता है। जो व्यापार हेतु सुगमता प्रदान करती है।

5. कोलाम्बिया नदी जलमार्ग–

यह नदी लगभग 2000 किमी. लम्बी है। जिसका लगभग 750 किमी. मुहाने से अर्थात लेविस्टन से इडाहो तक नौगम्य है। जापान, चीन, दक्षिण कोरिया व दक्षिणी एशियाई देशों द्वारा व्यापारिक मार्ग प्रशांत महासागर से होते हुए इस नदी के आन्तरिक भागों में प्रवेश कर जाता है। कोलम्बिया नदी का उद्‌गम ब्रिटिश कोलम्बिया के रॉकीज पर्वतों से निकलकर सयुक्त राज्यअमेरिका के वाशिंगटन व ओरगन राज्यों में प्रवाहित होते हुए प्रशांत महासागर में गिरती है।

6. हडसन नदी जलमार्ग–

इसकी कुल लम्बाई 507 किमी. है जो 'टियर ऑफ क्लाउड' झील से निकलकर न्यूयार्क व न्यूजर्सी राज्यों में प्रवाहित होते हुए न्यूयार्क की खाड़ी में अटलांटिक महासागर में गिरती है। जो एश्चुरी का निर्माण करती है। इसके तट पर स्थित प्रमुख शहर निम्न हैं– न्यूयार्क, किंग्सटन, राइवेक, अल्बनी, वाटफोर्ड आदि।

7. टेनेसी नदी जलमार्ग–

इसकी कुल लम्बाई 1049 किमी. है। टेनेसी नदी का प्रवाह सयुक्त राज्यअमेरिका के टेनेसी, अलबामा, मिसिसिपी व केंटकी राज्यों में है। यह ओहियो की सहायक नदी है। टेनेसी की उत्पत्ति फ्रेंचब्रॉड व हाल्सटन नदियों के संगम से उत्पन्न होती है। टेनेसी नदी के तट पर स्थित प्रमुख शहर ब्रिजपोर्ट, फ्लोरेंस, हेरिसन, किंग्सटन, नाक्साविले, लेंक्सटन, सवाना, शेफिल्ड, वाटरलू आदि। यह नदी क्षेत्र सयुक्त राज्यअमेरिका को महान वलय भाग में शामिल है तथा प्राचीन काल से ही नौ परिवहन हेतु उपयोग की जाती है।

दक्षिण अमेरिका–

1. अमेजन नदी जलमार्ग–

इस नदी की लम्बाई लगभग 6400 किमी. है। विश्व में लम्बाई की दृष्टि से नील के बाद द्वितीय स्थान है। जबकि प्रवाह आयतन की दृष्टि से प्रथम स्थान पर है। इसकी उत्पत्ति पेरू में स्थित एण्डीज पर्वत की मंटारो नदी से होती है। जो एश्चुरी बनाते हुए अटलांटिक महासागर में अक्सर जल प्रवाहित करती है। अमेजन का मुहाना ब्राजील में प्रमुख नौ परिवहन का स्रोत है। इसका प्रवाह पेरू, कोलम्बिया, व ब्राजील में होता है। इसके तट पर बसे प्रमुख शहर इक्वीटोस, लेटीसिमा, मनास, ओविडास व मकापा है।

2. पराना नदी जलमार्ग–

इसकी लम्बाई 4880 किमी. है। जिसका अधिकांश भाग नौगम्य है। यह नदी ब्राजील के मिनास जेटेस में परानैबा नदी से उत्पन्न होकर ब्राजील, पराग्वे व अर्जेण्टीना में प्रवाहित होते हुए पहले पराग्वे नदी फिर उरूग्वे नदी से मिलकर रियाडेला प्लाटा एश्चुरी बनाकर अटलांटिक महासागर में गिरती है।

3. पराग्वे नदी जलमार्ग–

इसकी कुल लम्बाई 2695 किमी. है। इसकी उत्पत्ति ब्राजील के मांटोग्रोसो राज्य के पेटेसिस पठार से निकलकर पराग्वे, बोलिविया व अर्जेण्टीना में प्रवाहित होती है। यह परीना की सहायक नदी है तथा पराग्वे व बोलिविया स्थल आबद्ध देशों को अटलांटिक महासागर से जोड़ने वाला महत्वपूर्ण जलमार्ग प्रसस्त करता है।

4. उरूग्वे नदी जलमार्ग–

इसकी कुल लम्बाई 1838 किमी. है। इसकी उत्पत्ति ब्राजील के सेर्रा गेटाल पर्वत की पेलोटास नदी से होता है। ब्राजील, अर्जेण्टीना व उरूग्वे अन्तर्राष्ट्रीय सीमा बनाती है। उरूग्वे नदी रियो डेलाप्लाटा ज्वारनदमुख में अटलांटिक महासागर से जा मिलती है।

अफ्रीका–

1. नील नदी जलप्रवाह–

नील नदी विश्व की सबसे लम्बी नदी है। जिसका प्रवाह कुल 11 देशों में तंजानिया, युगाण्डा, रवाण्डा, बुरूण्डी, कांगो, केन्या, इथियोपिया, इरिट्रिया, दक्षिणी सूडान, सूडान गणराज्य व मिस्र से लगभग 6650 किमी. प्रवाहित होती है। इसका उद्‌गम अफ्रीका की सबसे बड़ी झील विक्टोरिया से निकलकर भूमध्य सागर में विशाल डेल्टा के निर्माण के साथ गिरती है।

2. कांगो/जायरे नदी–

यह अफ्रीका की दूसरी सबसे लम्बी नदी है। जिसकी कुल लम्बाई 4700 किमी. है। इसकी उत्पत्ति लुआलबा से होती है। यह दो बार विषुवत रेखा को पार करते हुए एश्चुरी बनाते हुये अटलांटिक महासागर में जा गिरती है। इस नदी का सम्पूर्ण क्षेत्र तो जल परिवहन योग्य नहीं है लेकिन किशासा व किसागनी के मध्य जल परिवहन योग्य है। यह अंगोला, बुरूण्डी, कांगो गणराज्य, गैवोन, तंजानिया व जाम्बिया से होकर गुजरती है।

3. नाइजर नदी जलमार्ग–

इसकी लम्बाई 4180 किमी है। जो अफ्रीका की तीसरी सबसे लम्बी नदी है। नाइजर नदी उच्च भूमि से

निकलकर अटलांटिक महासागर में डेल्टा बनाते हुए गिरती है। इसका लगभग 70 प्रतिशत नौपरिवहन योग्य है। इस नदी से ताड़ के तेल का ज्यादा व्यापार होता है। इसलिए इसको Palm Oil Riverकहते हैं।

आस्ट्रेलिया–

1. मर्रे नदी–आस्ट्रेलिया के आल्पस पर्वत से निकलकर गुलवा के निकट एश्चुरी का निर्माण कर अण्टार्कटिका (दक्षिणी महासागर) में अलेक्जेण्ड्रिया झील में गिरती है। यह आस्ट्रेलिया की सबसे लम्बी नदी है जिसकी लम्बाई 2509 मीटर है। इसका प्रवाह न्यू साउथ वेल्स, द० आस्ट्रेलिया व विक्टोरिया प्रान्तों में होती है।

महासागरीय जल परिवहन–

महासागरीय परिवहन अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के दो तिहाई भाग का निर्वहन करता है। सुदूर देशों के मध्य व्यापार का सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम रहा है। 12 समुद्रीमील(22.2 किमी.) से आगे सम्पूर्ण महासागरीय क्षेत्र बिना किसी कर व रोक के विचरण किया जा सकता है। विश्व के लगभग सम्पूर्ण व्यापार का लगभग 90 प्रतिशत समुद्री परिवहन से ही होता है। जल परिवहन का अत्यन्त सामरिक महत्व भी है। मैकिण्डर का हृदय स्थल सिद्धान्त जल शक्ति पर ही आधारित है। अपवर्जी आर्थिक क्षेत्र (EEZ)जो की 200 समुद्री मील तक तट से सागर में सुरक्षा हेतु होती है।

विश्व के प्रमुख महासागरीय पत्तन–

जलराशियों व स्थल के संगम पर स्थित वह स्थल भाग जहाँ जल परिवहन साधनों के रूप में वस्तुओं व मनुष्यों को उतारने व चढ़ाने की सुविधा उपलब्ध हो तो ऐसे स्थान को पत्तन की संज्ञा दी जाती है। विश्व के प्रमुख समुद्री पत्तन निम्नलिखित हैं–

अंधमहासागर के पत्तन–

अफ्रीका महाद्वीप–

(a) बिसाऊ (गिनी) (b) डोवाला (केमरून)

(c) लुआण्डा (अंगोला) (d) वाल्विसबे (नामिबिया)

(e) फ्रीटाउन (सिस्रा लियोंग) (f) पोर्टोनोवा

(g) सेन पेड्रो (कीस्डी आइवरी) (h) पोर्ट आफ कासाप्लांका (मोरक्को)

(i) लोगोस (नाइजिरिया) (j) केपटाउन (द० अफ्रीका)

(k) डरबन (द० अफ्रीका) (l) अलेक्जेण्ड्रिया (मिस्र)

(m) अल्जियर्स (अज्जीरिया)

झीलें–

1. महान झील क्षेत्र–

यह क्षेत्र सयुक्त राज्य अमेरिकामें स्थित है। जिसका निर्माण प्लिस्टोसीन हिमयुग के उत्तरार्द्ध में हिमनदों के पीछे हटने से उत्पन्न 5 झील सुपीरियर, मिशिगन, हयूरन, इरी व ओण्टेरियो के समूह को महान झील प्रदेश कहते हैं। इन झीलों को अटलांटिक महासागर से जोड़ने में प्रमुख सहायक नदी सेण्ट लारेंस हैं। यह क्षेत्र सयुक्त राज्य अमेरिकाव कनाडा में फैला है। तथा इसमें प्राकृतिक रूप से निर्बाध परिवहन संभव नही है। क्योंकि सुपीरियर झील से लेकर अटलांटिक महासागर तक न तो भूमि ही समतल है और न ही चट्टाने समरूप हैं। अतः ऐसे में इन्हें छोटी–छोटी नहरों, लाक्स व नदीयों के माध्यम से जोड़ा गया है।

- सुपीरियर झील को हयूरन से सेण्टमेरिज नदी व सूनहर के माध्यम से जोड़ा गया है।
- ईरी झील को ओण्टेरियो झील से वेलेण्ड नहर जोड़ती है।

- ओण्टोरियो झील को अटलांटिक महासागर से सेण्ट लारेंस नदी जोड़ती है।
- मिशिगन व ह्यूरन को मेकीनेक जल संधि द्वारा जोड़ा गया है।

2. विक्टोरिया झील–

यह झील 68,800 वर्ग किमी. में विस्तृत अफ्रीका के महान झील प्रदेश में से एक विक्टोरिया झील का विस्तार 5 देशों तंजानिया, युगाण्डा, केन्या, बुरूण्डी व रवांडा में है। इसके तट पर स्थित शहर बुकोवा, म्बांजा, मुसोमा, केण्डुबे, होमाबे, कम्पाला व जिजा नगर अवस्थित हैं। इस झील क्षेत्र में जल परिवहन कार्य 19वीं सदी से ही किया जाता रहा है।

3. टिटिकाका झील–

इसका क्षेत्रफल 8372 वर्ग किमी. में है। यह झील वोलिविया व पेरू की सीमा पर अवस्थित विश्व की सर्वाधिक ऊँची नौगम्य झील है। इसके तट पर बसे प्रमुख शहर हैं– पुतिन, पुनो, चुकुइटो, जुली, कोपाकावासी, अचाकाची आदि नगर बसे हैं।

4. कैस्पियन सागर–

इसका क्षेत्रफल 371000 वर्ग किमी. है। यह विश्व की सबसे बड़ी झील है। यह एशिया व यूरोप के मध्य अवस्थित है। इसका विस्तार अजरबैजान, इरान, कजाखस्तान, रूस व तुर्कमेनिस्तान में विस्तृत है। इसके तट पर अवस्थित प्रमुख शहर– बाकू, रश्त, अक्आव, मखचकाला व तुर्कमेनवासी आदि नगर बसे हैं।

5. ग्रेट बियर झील–

यह पूर्णतः कनाडा में अवस्थित है। जिसका क्षेत्रफल 31153 वर्ग किमी. है। इसके उत्तर में आर्कटिक वृत्त अवस्थित है। यह नवम्बर से जुलाई तक लगभग जम जाती है। इसके तट पर डेलाइन, पोर्टरेडियम आदि नगर स्थित है।

6. अरल सागर–

इसका क्षेत्रफल लगभग 17160 वर्म किमी. है लेकिन इसके क्षेत्रफल में धीरे–धीरे कमी हो रही है। इसका विस्तार कजाकस्तान व उज्बेकिस्तान देशों के मध्य हैं इसका अब परिवहन की दृष्टि से उतना महत्व नहीं रह गया है।

13.5 भारतीय आंतरिक जल परिवहन तंत्र

भारतीय आंतरिक जल परिवहन भारतीय–

अंतर्देशीय जल मार्ग प्राधिकरण अधिनियम 1985 के अंतर्गत नौवहन और नौवहन के प्रयोजनों के लिए अंतर्देशीय जलमार्गों के संचालन और विकास के लिए 27 अक्टूबर 1986 को भारतीय अंतर्देशीय जलमार्ग प्राधिकरण का गठन किया गया था भारतीय अंतर्देशीय जल परिवहन प्राधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 22 के अनुसार प्राधिकरण का पूरा पिछले वर्ष का ब्यौरा दिया जाता है। इस प्राधिकरण द्वारा व्यापार हेतु अन्य देशों के जलमार्गों के विकास हेतु भी रणनीती बनाई जाती है। जिससे भारतीय जलमार्गों का विकास व व्यापार को प्रोत्साहन मिल सके। उदाहरणस्वरूप कलादान मल्टी मॉडल पारगमन परिवहन परियोजना के लिए विकास परामर्शदाता के रूप में म्यांमार सरकार का भी सहयोग कर रहा है।

जलमार्गों को नौवहन और नौचालान के लिए ब्योहार्य बनाने के लिए मुख्य तीन आधारभूत अवसरचनाए आवश्यक होती है–

I. अंतर्देशीय जलयानों के लिए उचित आकार की पर्याप्त गहराई और चौड़ाई युक्त नौवहन चैनल।

II. नौवहन के लिए नौसंचालन संबंधित दिनभर रात्रि सहायता केंद्रों की उचित व्यवस्था।

III. जलयानों की बर्थिंग, कार्गो, यात्रियों के लिए लदान और उतराई तथा सड़क, रेल, वायु मार्ग से जोड़ने हेतु टर्मिनल प्रदान करना।

राष्ट्रीय जलमार्ग 1–

हल्दिया पश्चिम बंगाल और प्रयागराज 1620 किलोमीटर के बीच गंगा, भागीरथी, हुगली नदी प्रणाली को 1986 में राष्ट्रीय जलमार्ग 1 घोषित किया गया है। तब से भारतीय अंतर्देशीय जलमार्ग प्राधिकरण अपनी जलपरिवहन क्षमता में सुधार के लिए जलमार्ग पर विभिन्न विकासात्मक कार्य चला रहा है जैसे बंडालिंग ड्रैजिंग जलमार्ग व वाणिज्यिक नौवहन बनाने हेतु जलमार्ग विकास परियोजना के तहत कार्य किया जा रहा है। राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 1 को गहराई के आधार पर निम्न भागों में बांटा जा सकता है–

I. हल्दिया फरक्का खंड 560 किलोमीटर 2.6 मीटर से 3 मीटर तक गहराई

II. फरक्का से बरह खंड 400 किलोमीटर 2.1से 3.0 मीटर तक गहराई

III. बरह से गाजीपुर खंड 290 किलोमीटर 1.6 से 2.5 मीटर तक गहराई

IV. गाजीपुर एमएमटी वाराणसी 143 किलोमीटर 1 मीटर से 2.2 मीटर गहराई

हल्दिया प्रयागराज नदी जल मार्ग एक के मध्य लगभग 20 स्थानो पर फ्लोटिंग टर्मिनल प्रचलन में है इनका उपयोग जलयानों की बार्थिंग, रसद सहायता और चालक दलों और यात्रियों को चढ़ने उतरने की सुविधा के लिए किया जा रहा है।

फ्लोटिंग टर्मिनल्स की स्थिति इस प्रकार है–

1. पश्चिम बंगाल में हल्दिया, बज बज, बीआईएसएन, बॉटनीकल गार्डन कोलकाता, शांतिपुर, स्वरूपगंज, कटवा, हजारद्वारी, डाउनस्ट्रीम फरक्का और अपस्ट्रीम फरक्का
2. झारखंड के राजमहल मंगलहट और साहिबगंज समदाघाट
3. बिहार के बटेश्वर स्थान, भागलपुर, मुंगेर, सिमरिया और बक्सर
4. उत्तर प्रदेश में गाजीपुर रामघाट, रामनगर वाराणसी और प्रयागराज टर्मिनल।

राष्ट्रीय जलमार्ग 2–

यह जलमार्ग असम में धुबरी से सादिया तक 891 किलोमीटर ब्रह्मपुत्र नदी में स्थित है। इसकी स्थापना 1 सितंबर 1988 को की गई। वर्तमान में गुवाहाटी और तेजपुर सदिया में ब्रह्मपुत्र नदी पर तीन सड़क पुल है और असम के दक्षिणी और उत्तरी भागों के बीच संपर्क के लिए जोगीघोषा, गुवाहाटी और बोगीबील में तीन रेल सह सड़क पुल है। नदी के दोनों किनारो पर रहने वाले लोगों को अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न स्थानों पर पारंपरिक नौका सेवा का उपयोग करके नदी पार करने की आवश्यकता होती है।

राष्ट्रीय जलमार्ग 3–

यह मार्ग उत्तरी केरल के कोझीकोड से लेकर दक्षिण में कोल्लम तक कुल 205 किलोमीटर लंबा है यह जल मार्ग फरवरी 1993 में स्थापित की गई थी। इसमें पेरियार नदी, तातापल्ली नदी, उद्योग मंडल नगर, पंपाकार नदी, वेंबनाड नदी, पंबा नदी, कन्यांबुकुलम झील, आशतमुंडी झील, आदि सम्मिलित है। यह भारत की प्रथम वर्ष भर परिवहन सुयोग्य जलमार्ग है। इसका प्रवाह उत्तर से दक्षिण दिशा में कोट्टापुरम, कोच्चि, अलुवा, एर्नाकुलम, अलापूजा, थ्रीक्कूनापुझा, कयामकुलम, चावड़ा, कोल्लम आदि स्थानों से होकर गुजरती है।

राष्ट्रीय जलमार्ग 4–

यह जलमार्ग तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु व केंद्रशासित प्रदेश पुडुचेरी में 1095 किलोमीटर लंबाई में प्रवाहित होती है। इस जलमार्ग में प्रमुख नदी में कृष्णा व गोदावरी है। जबकि अन्य सहायक जलमार्ग में नहरों का काकीनाडा, एलुरु नहर, कोम्मामुर व बकिंघम नहर सम्मिलित है। यह भारत का दूसरा सबसे बड़ा जलमार्ग है। जिसकी स्थापना 24 नवंबर 2008 को हुई थी। यह कोरोमंडल तट के सहारे काकीनाडा, कोम्मानूर, चेन्नई, मरकौनम, पुडुचेरी, भद्राचंलम, वजीराबाद आदि स्थानों को जोड़ता है।

राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 5–

इस जलमार्ग का विस्तार उड़ीसा व पश्चिम बंगाल में 623 किलोमीटर में विस्तृत है। जिसमें लगभग 532 किलोमीटर उड़ीसा तथा 91 किलोमीटर पश्चिम बंगाल में प्रवाहमान है। इसको भी नवंबर 2008 में राष्ट्रीय जलमार्ग घोषित किया गया। यह पश्चिम बंगाल के जियोखाली से प्रारंभ होकर उड़ीसा के पाराद्वीप बंदरगाह तक जाती है इस जलमार्ग की सहयोगी हिप्पीला नहर, पूर्वीयतटीय नहर, उड़ीसा तटीय नहर तथा ब्राह्मणी नदी, मताइ नदी, धम्रानदी आदि प्रमुख है।

राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 6–

इसकी कुल लंबाई लगभग 71 किलोमीटर है। यह असम में स्थित मानस नदी की सहायक एई नदी पर स्थित है।

राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 7–

भारत में एक प्रमुख जल परिवहन मार्ग है। यह जलमार्ग गोदावरी नदी पर स्थित है। इसकी यात्रा पत्तूर(पत्तिसम) से लेकर राजमुंद्री तक यह जलमार्ग लगभग 171 किलोमीटर लंबा है और आंध्र प्रदेश राज्य में स्थित है। राष्ट्रीय जलमार्ग 7 का उद्देश्य आंतरिक जल परिवहन को प्रोत्साहित करना और क्षेत्र के आर्थिक विकास में योगदान देना है।

भारत के कुछ अन्य प्रमुख जलमार्ग निम्न है–

- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 8– अलपूझा चंगनास्सेरी नहर केरल
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 9– आलपुझा कोट्टायम अथिरमुझा नहर केरल
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 10– अम्बा नदी महाराष्ट्र
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 25– चापोरा नदी गोआ
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 27– कंबरजुआ नदी गोआ
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 28– दाभोल क्रीक वशिष्ठ नदी महाराष्ट्र
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 31– धनश्री नदी असम
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 37– गंडक नदी बिहार
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 40– घाघरा नदी बिहार
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 44– इचामती नदी पश्चिम बंगाल
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 52– काली नदी कर्नाटक
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 57– कोपली नदी असम
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 68– मांडवी नदी गोआ
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 73– नर्मदा नदी गुजरात – महाराष्ट्र
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 85– रेवाडंडा क्रीक महाराष्ट्र
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 86– रूपनारायण नदी पश्चिम बंगाल
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 94– सोन नदी मध्य प्रदेश – बिहार
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 97– सुंदर वन जलमार्ग पश्चिम बंगाल
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 100– तापी नदी मध्य प्रदेश
- राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 111– जुआरी नदी गोआ

भारत के प्रमुख महासागरीय परिवहन

भारतीय तट रेखा की कुल लम्बाई 7516 किमी. है। जिसमें प्रायद्वीपीय मुख्य भूमि की कुल तट रेखा की लम्बाई 5422.6 किमी. है तथा द्वीपों की तटरेखा 2094 किमी. है। अतः भारत के पास विश्व के देशों से जुड़ने के लिए महासागरीय परिवहन की असीमित अवसर हैं। जिनके विकास से जहाँ एक तरफ हम अपने आयत–निर्यात में धन के दुर्पुयोग में कटौती कर सकते हैं। वहीं रोजगार के अवसरों का भी सृजन किया जा सकता है। भारत वैश्विक तटरेखा की लम्बाई की दृष्टि से 18 वें स्थान पर वहीं देश के 9 राज्य व 4 केन्द्रशासित प्रदेश तटीय स्थिति वाले हैं। भारत के प्रादेशिक समुद्र को क्षेत्रफल 1,93,834 वर्ग किमी. तथा अपवर्जी आर्थिक क्षेत्र(EEZ) का क्षेत्रफल 21.41 करोड़ वर्ग किमी. है।

1. **गुजरात**–इसके तट रेखा की लम्बाई 1214.7 किमी. है। इसकी तटरेखा राज्यों से सबसे लम्बी है। यहां लगभग 15 मुख्य व कुछ छोटे पत्तन भी पाये जाते हैं। मुख्य पत्तन में अलंग, काण्डला, माण्डवी, आखा, पोरबंदर, वेरावल, भावनगर, दाहेज, हजीरा, माण्डवी, मुद्रा आदि हैं।
2. **आंध्र प्रदेश**–इसके तटरेखा की लम्बाई 973.7 किमी है जो भारतीय राज्यों में दूसरे स्थान पर है। इस पर मुख्य पत्तन विशाखापत्तनम्, काकीनाडा, मछलीपत्तनम्, गंगावरम् आदि प्रमुख हैं।
3. **तमिलनाडु**–इसके तटरेखा की लम्बाई 906.9 किमी. है जो भारतीय राज्यों में तीसरे स्थान पर है। इसके मुख्य पत्तन चेन्नई, तुतीकोरिन, एन्नोर, नागापट्टीनम् व यिरूवकुवलाई प्रमुख है।
4. **महाराष्ट्र**–इसके तटरेखा की लम्बाई 65.6 किमी. है। इसके तट के प्रमुख बंदरगाह जवाहर लाल नेहरू पत्तन, न्हावाशोवा, मुम्बई पत्तन, रेडीपत्तन, जैतपुर व रेवास प्रमुख पत्तन हैं।
5. **केरल**–इसके तटरेखा की लम्बाई 569.7 किमी. है तथा इस तट के प्रमुख पत्तन– पाराद्वीप, अस्तंरगा, गोपालपुर, पाबुर, प्रमुख हैं।
6. **ओडिशा**–इसके तटरेखा की लम्बाई 476.4 किमी. है तथा प्रमुख पत्तन– पाराद्वीप, अस्तंरगा, गोपालपुर, पावुर प्रमुख हैं।
7. **कर्नाटक**–इसके तटरेखा की लम्बाई 290 किमी. है। प्रमुख बंदरगाह– मंगलौर, वेलेकड़ी, टादड़ी, होनवर, भटकल, हंगरकट्टा आदि
8. **गोवा**–133.5 किमी. है। प्रमुख बंदरगाह मोर्मुगोवा व पणजी हैं। यह सबसे छोटी तट रेखा वाला राज्य है।
9. **पश्चिम बंगाल**– इसके तटरेखा की लम्बाई157.5 किमी. है। प्रमुख बंदरगाह कोलकाता, हल्दिया, कुल्पी, फरक्का, सागर व ताजपुर हैं।
10. **अण्डमान निकोबार द्वीप समूह**–इसकी तटरेखा भारत में सबसे अधिक है। जो 1962 किमी. लम्बी है। इसके प्रमुख पत्तन– पोर्टब्लेयर व पोर्ट कार्नवालिस हैं।
11. **लक्षद्वीप**–इसके तटरेखा की लम्बाई 132 किमी. है। प्रमुख पत्तन कावरत्ती व मिनिकाय हैं।
12. **पुदुचेरी**–इसके तटरेखा की लम्बाई 30.6 किमी है। प्रमुख पत्तन पुदुचेरी, कराइकल व माहे हैं।
13. **दमन व दीव**–इसके तटरेखा की लम्बाई 27 किमी. है। यह केन्द्रशासित प्रदेशों में सबसे छोटे तटरेखा वाला प्रदेश है। प्रमुख बंदरगाह दमन व दीव हैं।

उपर्युक्त पत्तनों में से भारत के कुछ प्रमुख पत्तन इस प्रकार हैं–

1. काण्डला (गुजरात)–

भारत विभाजन के पश्चात कराची बंदरगाह को भारत से अलग होने के पश्चात् 1950 में इसका विकास किया गया। यह कच्छ की खाड़ी में स्थित ज्वारीय पत्तन है। यह भारत का व्यापार मुक्त क्षेत्र है। यह पत्तन

भारत का प्रथम निर्यात संवर्धन क्षेत्र (EPZ) है। यह काण्डला नदी के तट पर स्थित प्राकृतिक बंदरगाह है। यह पत्तन कार्गों की संख्या के आधार पर भारत का सबसे बड़ा बंदरगाह है। यह भारत का सर्वाधिक लाभ कमाने वाला व सर्वाधिक निर्यात करने वाला तथा सर्वाधिक तेल आयात करने वाला पत्तन भी है। इस तट से अभ्रक, मैगनीज, चमड़ा, खाले, सेलखड़ी, हड्डी का चुरा, नमक, वस्त्र, खाद्यान्नों आदि का निर्यात तथा पेट्रोलियम रसायन, लौह इस्पात आदि का आयात किया जाता है।

2. जवाहर लाल नेहरू या न्हावाशोवा पत्तन (महाराष्ट्र)–

इसकी स्थापना 26 मई 1989 को न्हावा व शेवा नामक दो गाँवों की भूमि पर स्थापित किया गया। इसका विकास मुम्बई पत्तन के यातायात प्रवाह को कम करने के लिए किया गया है। जो कि एक अत्याधुनिक कृत्रिम पत्तन है। इस पत्तन से निर्यात खेल के सामान, वस्त्र, कालीन, वस्त्र उद्योगों की मशीने, रसायन, फार्मास्यूटिकल्स आदि रसायन, मशीनरी, विद्युत मशीनरी, वनस्पति तेल, एल्युमिनियम धातु आदि का आयात किया जाता है।

3. मुम्बई पत्तन (महाराष्ट्र)–

यह भारत का सबसे बड़ा प्राकृतिक पत्तन है। इस पत्तन को भारत का प्रवेश द्वार भी कहा जाता है। इस पत्तन का सर्वाधित उपयोग यातायात अर्थात व्यक्तियों के आवागमन हेतु किया जाता है। इससे आयातित प्रमुख सामाग्रियों पेट्रोलियम उत्पाद, तरल रसायन, खनिज तेल का तथा सूती वस्त्र, चमड़ा, तम्बाकू, मैगनीज, मशीनरी, रासायनिक पदार्थों आदि का निर्यात किया जाता है।

4. विशाखापत्तनम् (आन्ध्र प्रदेश)–

इसी पत्तन के पास HCLहिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड का जहाज निर्माण उद्यम जून 1941 में स्थापित किया गया। विशाखापत्तनम् पोर्ट ईस्ट की स्थापना 19 दिसम्बर 1933 को की गई। यह भारत का एक प्राकृतिक पत्तन के साथ प्राकृतिक सुरक्षा इसे दक्षिण में डाल्फिन नोज तथा उत्तर में रोस पहाड़ियाँ सुरक्षा प्रदान करती हैं। यह मेहाद्री नदी के मुहाने पर स्थित है। इस पत्तन से लौह अयस्क, कोयला एल्यूमिनियम, तेल आदि का व्यापार किया जाता है। मुख्य रूप से जापान को इस पत्तन से लौह इस्पात का निर्यात किया जाता है।

5. चेन्नई पत्तन (तमिलनाडु)–

इसकी स्थापना 1881 में की गई थी। यह एक कृत्रिम पत्तन है। इसे दक्षिण भारत का प्रवेश द्वारा कहा जाता है। यह न्हावाशेवा के बाद दूसरा सबसे बड़ा कंटेनर पत्तन है। लौह अयस्क, कोयला, चमड़ा, सूती वस्त्र व आटोमोबाइल का निर्यात तथा गेहूं, कपास, मशीनरी, लौह इस्पात आदि का आयात किया जाता है।

6. मोर्मुगोवा पत्तन (गोवा)–

यह एक प्राकृतिक पत्तन है जो जुआरी नदी के एश्चुरी पर स्थित है। इसकी स्थापना 1963 में की गई। यहाँ से गोवा क्षेत्र में उत्पादित लौह अयस्क का यहाँ से निर्यात किया जाता है।

7. पोर्टब्लेयर पत्तन (अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह)–

यह एक प्राकृतिक बंदरगाह है। जो दक्षिण अण्डमान में स्थित है। यहाँ से चेन्नई व कोलकाता से नियमित रूप से आवश्यक वस्तुओं व यात्री जलयान जाते रहते हैं।

8. कोलकाता पत्तन (प. बंगाल)–

इसका परिवर्तित नाम डॉ श्यामा प्रसाद मुखर्जी पत्तन है। यह भारत के सबसे पुराने पत्तनो में से एक है जिसकी स्थापना 1870 में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा की गई। यह भारत का एकमात्र पत्तन है जिसके दो भिन्न भाग है कोलकाता व हल्दीया। दोनों के मध्य की दूरी लगभग 100 किलोमीटर है। इस पत्तन को पूर्वी भारत का प्रवेश द्वार भी कहा जाता है। इस पत्तन से निर्यात लौह अयस्क, ग्रेनाइट, कोयला, ताबा, चाय, चमड़ा, सूती वस्त्र, जूट आदि है जबकि आयात गेहूं, रसायन, उर्वरक, कागज, मशीनरी, लोहा व इस्पात प्रमुख है। इसी पत्तन से ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा लगभग 3 से 5 लाख गिरमिटिया मजदूरों को मॉरीशस, फिजी, दक्षिण अफ्रीका, त्रिनिदाद टोबैगो, गुयाना, सूरीनाम आदि देशों में भेजा था।

9. पारादीप (ओड़ीसा)–

यह एक प्राकृतिक बंदरगाह है। जिसकी स्थापना 1966 में की गई। इस पतन का स्वयं का रेल तंत्र है, जो अपने संपूर्ण आयात निर्यात में सदैव निर्यात दो गुना रहता है। जापान को लौह अयस्क निर्यात मुख्य रूप से होता हैं इस पत्तन से।

10. तूतीकोरिन पत्तन (तमिलनाडु)–

इसका उपनाम बी ओ चिदंबरनार पत्तन भी कहा जाता है। इसकी स्थापना जुलाई 1974 में हुई थी। यह एक कृत्रिम पत्तन है इससे अधिकांश व्यापार श्रीलंका से होता है। कोयला, नमक, खाद्यान्न, खाद्य तेल, शक्कर, पेट्रोलियम उत्पाद, तांबा, उर्वरक, लकड़ी, ग्रेनाइट आदि।

11. कोच्चिन पत्तन (केरल)–

यह एक प्राकृतिक बंदरगाह है। जो अरब सागर व हिंद महासागर के लगभग संगम पर स्थित है। इस पत्तन को अरब सागर की रानी कहा जाता है। इससे चाय, काफी, मसाले निर्यात तथा खनिज तेल व उर्वरक का आयात किया जाता है।

12. एन्नोर पत्तन (तमिलनाडु)–

इसकी स्थापना 2001 में की गई यह एक कृत्रिम सार्वजनिक व निजी क्षेत्र का प्रथम पत्तन है। इसको कामराज पत्तन के नाम से भी जाना जाता है। इससे तापीय कोयला, स्वचालित वाहन, पेट्रोलियम उत्पाद, लौह अयस्क आदि का व्यापार किया जाता है।

13. मंगलौर पत्तन (कर्नाटक)–

यह एक प्राकृतिक पत्तन है इसको न्यू मंगलौर पत्तन के नाम से भी जाना जाता है। यह गुरुपूरा नदी के तट पर स्थित है। इस पट्टन से आयात उर्वरक, लुगदी, लकड़ी, कच्चा तेल, पेट्रोलियम, गैस आदि तथा निर्यात ग्रेफाइट, काफी, लौह अयस्क, मैंगनीज व काजू का किया जाता है।

13.6 महासागरीयपरिवहन की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहरें एंव मार्ग

1. स्वेज नहर–

यह सबसे प्राचीन है। इसका निर्माण 1869 ई. में हो गया था। 193.3 किमी. यह नहर भूमध्यसागर को लाल सागर से जोड़ती है। इस नहर की चौड़ाई 114 मीटर तथा गहराई 128 मीटर है। इस नहर के निर्माण से यूरोप की एशिया, आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका के पूर्वी तट से दूरी बहुत कम हो गई। नहर के निर्माण से भारत व ग्रेट ब्रिटेन के मध्य की दूरी 7014 किमी. कमी हुई। इस नहर से लगभग प्रतिवर्ष 20,000 जहाजे गुजरती है। इस नहर पर मौजूदा समय में मिस्र का अधिकार है। यह नहर जहाँ आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। वहीं सामरिक व राजनैतिक दृष्टिकोण से भी बहुत महत्वपूर्ण है। (इसके मध्य में ग्रेट विटर झील, तिमसाह झील, एबलाझील, पिटर झील व लिटिल पीटर झील स्थित है।)

2. पनामा नहर–

पनामा नहर के बनने से अटलांटिक महासागर से प्रशांत महासागर जाने के लिए जो दक्षिणी अमेरिका का चक्कर लगाना पड़ता था वह समाप्त हो गया है। इसका निर्माण तकनीकी दृष्टि से थोड़ा जटिल है। क्योंकि नहर का तल समुद्रतल से ऊँचा है। जिसके कारण जल स्तर को उठाने हेतु द्वार पद्धति का उपयोग किया गया है। इस मार्ग से लगभग 50 जहाज प्रतिदिन गुजरते हैं। इसका निर्माण 1903 में किया गया तथा चौड़ाई 16 किमी. है।

3. कील नहर–

इसका निर्माण जर्मन सरकार द्वारा डेनिश प्रायद्वीप के पास 1914 में किया गया। यह नहर मात्र 96.26 किमी. लम्बी है। जबकि 460 किमी. की यात्रा को कम करती है। इसके माध्यम से जर्मनी के बाल्टिक सागर के बंदरगाहों तथा उत्तरी सागर के मध्य सीधा सम्पर्क हो गया जो पहले डेनमार्क के चारों आरे होकर था।

4. क्रॉ नहर–

यह नहर मलय प्रायद्वीप के क्रॉ स्थलडमरूमध्य के आर–पार अण्डमान सागर को थाइलैण्ड की खाड़ी से जोड़ने वाली संभावित नहर मलक्का जलडमरू मध्य के मार्ग के विकल्प के रूप में उभरेगी।

5. बीजिंग हांगजोड ग्राण्ड नहर–

इसको 'ग्राण्ड केनोल' या 'जिंग हेंग ग्राण्ड' केनाल के नाम से भी जाना जाता है। इसकी लम्बाई 1776 किमी. है। जिसका निर्माण 468 ईसा पूर्व में हुआ था। यह विश्व की सबसे लम्बी व पुरानी नहर है। यह चीन के बीजिंग शहर से प्रारम्भ होकर झांगझोऊ पूर्वी चीन तट तक विस्तृत है। यह नहर उत्तर से दक्षिण चीन के मध्य प्रमुख परिवहन का साधन है।

6. उत्तर अटलांटिक महासागर मार्ग–

उत्तर अटलांटिक महासागर मार्ग में सभी समुद्र मार्गों का सबसे बड़ा यातायात है। दुनिया के व्यापारी जहाजों के भार के लगभग एक–चौथाई हिस्से इस मार्ग पर कार्य करता है। मात्रा और माल की विविधता में, यह मार्ग अभी तक किसी भी अन्य से अधिक है।यह मार्ग उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट पर उन लोगों के साथ पश्चिमी यूरोप के बंदरगाहों को जोड़ता है ये दो क्षेत्र दुनिया के सबसे अधिक आबादी वाले और अत्यधिक विकसित क्षेत्र हैं।उत्तरी अमेरिका और पश्चिमी यूरोप मात्रा और विविधता के सामानों की दुनिया का सबसे बड़ा उत्पादक है। यूरोप के पश्चिमी तट पर बंदरगाहों में ग्लासगो, लिवरपूल मैनचेस्टर, साउथेम्प्टन, लंदन, रॉटरडैम, ब्रेमेन, बोर्डो और लिस्बन हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी तट पर बंदरगाहों में क्यूबेक, मॉन्ट्रियल हैलिफ़ैक्स, सेंट जॉन, बोस्टन, न्यूयॉर्क, बाल्टीमोर, चार्ल्सटन गैल्वेस्टन और न्यू ऑरलियन्स हैं।यह महासागर मार्ग दुनिया का सबसे व्यस्त व्यापार मार्ग है। निर्मित वस्तुओं की बड़ी मात्रा: वस्त्र, रसायन, मशीनरी, उर्वरक, इस्पात, शराब आदि आदि इन बंदरगाहों से उत्तरी अटलांटिक के संयुक्त राज्य और कनाडा में निर्यात की जाती हैं।कनाडा और अमेरिका से यूरोप का निर्यात लकड़ी, मछली, गेहूं, कच्चा कपास, तम्बाकू, तेल, मशीनरी और वाहन, धातु, कागज और रसायन हैं।

7. गुड होप मार्ग–

यह मार्ग एक बार सुवेज नहर मार्ग का सहायक विकल्प था, लेकिन इसकी लंबी और घबराहट यात्रा की वजह से, ज्यादातर शिपिंग कंपनियों ने इसे टाल दिया था 1 9 67 में सुएज नहर के बंद होने के दौरान सभी मार्गों को इस मार्ग को लेने के लिए कोई विकल्प नहीं था। 1975 में सुएज नहर को फिर से खोले जाने के बाद भी, इस व्यापार का पालन करने के लिए बहुत ज्यादा व्यापार चल रहा है क्योंकि टैंकरों और अन्य वाहनों का आजकल बहुत बड़ा है। चूंकि सुवे नहर केवल 20,000 टन की क्षमता के जहाजों को समायोजित कर सकता है और टोल शुल्क अधिक है, केप मार्ग का महत्व बढ़ रहा है।इसमें कई अन्य फायदे हैं हाल ही में स्वतंत्र अफ्रीकी देशों के अधिक से अधिक आर्थिक विकास और सोने, तांबा, हीरे, टिन, क्रोमियम, मैंगनीज, कपास, तेल हथेली, मूंगफली, कॉफी और फलों जैसे उनके समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों का शोषण, यातायात के दौर का दौर केप ऑफ़ गुड होप और पूर्वी और पश्चिम अफ्रीका दोनों में बंदरगाहों में वृद्धि हुई है।

8. दक्षिण अटलांटिक रूट–

यह मार्ग वेस्ट इंडीज, ब्राजील और अर्जेंटीना की ओर जाता है मार्ग पर कॉल के प्रमुख बंदरगाहों किंग्स्टन (जमैका), हवाना, वेरा क्रूज़, ताम्पाको, पेर्नंबुको, बाहिया, रियो डी जनेरियो, सैंटोस, मोंटेवीडियो, ब्यूनस आयर्स और रोज़ारियो हैं। मार्ग पर निर्यात चीनी, केले, कच्चा कपास, महोगनी, तम्बाकू, कॉफी, अनाज, ऊन और मांस हैं, जबकि आयात माल का निर्माण होता है।यह मार्ग एक तरफ यूरोप और वेस्ट इंडीज, कैरेबियन समुद्र तट, ब्राजील, उरुग्वे और अर्जेंटीना के बीच व्यापार संबंधों को दूसरे पर रखता है।

13.7 सागरमाला परियोजना

भारतीय अर्थव्यवस्था इस समय तीव्र गति से बढ़ रही है। अतः ऐसे में पत्तनों के आधुनिकीकरण व विकास अति आवश्यक है। ऐसे में सरकार द्वारा इन पत्तनों को विकसित कर देश के विकास की गतिविधि में वृद्धि करने की योजना पर कार्य कर रही है। ऐसे में जहां एक तरफ पोर्टो के आधुनिकीकरण की आवश्यकता है, वही उनको रेल, सड़क व वायु परिवहन जैसे द्रुत गामी मार्गो से जोड़ने की भी आवश्यकता है। जिससे विकास को एकीकृत प्रणाली को अपनाया जा सके।

इस परियोजना की शुरुआत 25 मार्च 2015 को 13 प्रमुख पत्तनों, 180 छोटे पत्तनों व 1208 दीपों को विकसित करने की एक योजना को केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा पारित किया गया। इसकी शुरुआत 31 जुलाई 2015 को कर्नाटक के नौवहन मंत्रालय द्वारा बेंगलुरु से किया गया। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

- पत्तनों को वैश्विक स्तर का बनाया जाना ताकि अंतरराष्ट्रीय पत्तनों से जोड़ने में सहूलियत हो।
- नवीन पत्तनों के निर्माण के साथ पुराने पत्तनों का नवीनीकरण के साथ आधुनिकीकरण करना।
- पत्तनों को परस्पर रेल, सड़क, वायुमार्ग व अंत:स्थलीय जलमार्गों से जोड़ना।
- तटीय क्षेत्रों कौशल विकास, भंडार गृहों के निर्माण व आधुनिक मत्स्य पालन व प्रसंस्करण हेतु विकास का एकीकृत निर्माण।
- पत्तनों के समीप औद्योगिकरण में वृद्धि ताकि वैश्विक व्यापार में बढ़ावा के साथ–साथ परिवहन लागत को हटाया जा सके।

13.8 जल परिवहन की समस्या

जहाँ वैश्विक व्यापार के लगभग 80–90 प्रतिशत तक जलीय मार्गों से होता है। वहीं जल परिवहन को कुछ समस्याओं का सामना भी कराता है। कुछ प्रमुख निम्न है–

- वैश्विक स्तर पर बुनियादी ढांचों के वितरण में समरूपता का अभाव।
- विश्व के विकसित देश जहाँ अपने जल परिवहन के मार्गों को अपनी सेवाओं से सुरक्षित रखते हैं। वहीं अन्य देशों को सुरक्षा स्तर पर भी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।
- जल परिवहन के लिए जहाजों के निर्माण हेतु अत्यधिक पूंजी व तकनीकी की आवश्यकता होती है।
- पर्यावरणीय स्तर पर भी कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं जैसे– तेल रिसाव, मल मूत्र प्रवाह आदि।
- जल परिवहन पर भूराजनीतिक स्थिरता की भी आवश्यकता होती है।
- समुद्री लुटेरों का भी भय रहता है। अतः ऐसे तकनीकि स्तर पर सुधार कर लुटेरों से निपटने हेतु समुद्री बेड़ों की तैनाती की आवश्यकता होती है।
- समुद्री चक्रवात, तूफान व सुनामी से समुद्री जल परिवहन पर प्रभाव पड़ता है।
- आंतरिक जल परिवहन को सतत बनाए रखना कठिन होता हैं क्योंकि नदी परिवहन में अधिकांश नदीयाँ मौसमी हैं।
- नदी जलमार्गों का समतल न होना भी जलीय परिवहन हेतु बाधा बनती है।
- आंतरिक जलमार्गों के विकास में पुराने बने नदीयों के पुल भी बाधा का कार्य कर रहे हैं।
- आंतरिक जलमार्गों के विकास गरीब देशों के पास उचित दर पर कर्ज न मिल पाना भी बाधा बन रही है।

13.9 जल परिवहन की संभावनाएँ

जिस प्रकार से विश्व के सभी देशों को आज एक ग्लोबल बाजार के रूप में पहचान बनती जा रही है। जल परिवहन को सुविकसित कर हम अपने ग्लोबल सपनों को साकार करने में एक आसान और रोजगार परख परिवहन के रूप में जल परिवहन को सुविकसित कर सकते हैं। अतः संभावनाओं को निम्न बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है–

- भारतीय नदीयों को आपस में जोड़कर सतत वाहिनी रूप देकर जल परिवहन को और अधिक विकसित

व उपयोगी बनाया जा सकता है।

- अंतर्देशीय जलमार्गों को नेविगेशन व अत्याधुनिक संसाधनों से सम्पन्न कर उनकी दक्षता व कार्यक्षमता में वृद्धि कर अधिक से अधिक उपयोग किया जा रहा है।
- भारतीय बंदरगाहों को वैश्विक स्तर की सुविधा व तकनीकि रूप से विकसित कर विश्व के विभिन्न मार्गों से जोड़कर भू–सामरिक दृष्टि से वैश्विक स्तर पर अपनी पकड़ और मजबूत करना।
- जल परिवहन जहाँ एक सस्ता व पर्यावरण अनुकूल साधन है। ऐसे में इसकी दक्षता का अधिकतम उपयोग कर हम अपने देश की ऊर्जा उपयोगिता में वृद्धि व जीवाश्म ईंधन के उपयोग में कटौती कर सकते हैं।
- समुद्री व्यापार दुनियाभर के देशों के सेनका रिद लिए वाणिज्य क्षेत्र का रीढ़ है। अतः इसके उपयोग की दक्षता में वृद्धि कर विश्व के देशों से आयात व निर्यात में वृद्धि कर विदेशी मुद्रा के अर्जन को बढ़ावा दिया जा सकता है।
- शिपिंग उद्योग में जहाजों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल होती है अतः ऐसे में हम उनको बढ़ावा देकर जहाँ एक तरफ वैश्विक व्यापार में अपनी भागीदारी को बढ़ाएंगे वहीं अपने देश उद्योग क्षेत्र में कुशल व दक्ष कर्मचारियों की माँग में भी वृद्धि होगी।

13.10 सारांश

आपने इस खण्ड में जल परिवहन के विभिन्न रूपों जैसे–सागरीय, महासागरीय परिवहन, झील परिवहन, उनको जोड़ने वाले नहर व नदी, उत्तरी अमेरिका के प्रमुख नदी परिवहन, अमेरिका के प्रमुख नदी व झील परिवहन, आस्ट्रेलिया मरे नदी जल परिवहन, अफ्रीका के विभिन्न आन्तरिक जल परिवहन व झील परिवहन, यूरेशिया के विभिन्न आन्तरिक जल मार्गों, यूरोप के आन्तरिक जलमार्गों तथा इसके साथ विश्व के विभिन्न समुद्री जलमार्गों जैसे–अंधमहासागरीय, हिंदमहासागरीय व प्रशांत महासागरीय पत्तनों का अध्ययन करेंगे। इसके साथ ही साथ भारतीय आन्तरिक एवं बाह्य जलमार्ग व पत्तनों जैसे नदी जलमार्ग –1, 2, 3.... व काडला, जवाहरलाल नेहरू पतन, मुम्बई पत्तन आदि। इसके साथ विश्व के प्रमुख नहर मार्गो के साथ भारतीय नवीन परियोजनाएं – सागरमाला आदि के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे।

13.12 परीक्षोपयोगी प्रश्न

प्रश्न 1. भारत के तट रेखा की कुल लम्बाई है?

a- 7516.   b- 8716.6   c- 5716.6   d- 6516.6

प्रश्न 2. राष्ट्रीय जलमार्ग 2 की लंबाई है?

a- 791 किलोमीटर   b- 891 किलोमीटर

c- 761 किलोमीटर   d-861 किलोमीटर

प्रश्न 3. यूरोप का सबसे बड़ा डेल्टा कौन सी नदी बनाती है?

a- डेन्यूब नदी   b- नीपर नदी   c- म्यूस नदी   d- वोल्गा नदी

प्रश्न 4. भारतीय राज्यों में सबसे लंबी तट रेखा है?

a- गुजरात   b- केरल   c- गोवा   d- आंध्र प्रदेश

प्रश्न 5. वोल्गा नदी की कुल लंबाई है?

a- 3570 किलोमीटर   b- 3530 किलोमीटर

c- 3470 किलोमीटर   d- 3430 किलोमीटर

प्रश्न 6. रोन नदी किस हिमनद से निकलती है?

a- वोल्गा हिमनद b - सान हिमनद

c- रॉन हिमनद d- ल्योंन हिमनद

आदर्श उत्तर–1.a **2.**b **3.**d **4.** a **5.** b **6. c**

13.13 महत्वपूर्ण पुस्तके संदर्भ

- सिंह, के.एन, परिवहन भूगोल, ज्ञानोदय प्रकाशन, प्रयागराज।
- सिंह, जगदीश, परिवहन एवं व्यापार भूगोल, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, उ.प्र.।
- Eliot Hurst, Transport Geography
- वैष्णव, अखिलेश(2020), परिवहन भूगोल, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

13.14 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. सागर माला परियोजना को स्पष्ट करें?

प्रश्न 2. भारतीय जल परिवहन के कुछ प्रमुख नदी जलमार्गों का उल्लेख करें?

प्रश्न 3. यूरोप के विकास में आंतरिक जलमार्गों के योगदान के साथ प्रमुख मार्गों का उल्लेख करें?

प्रश्न 4. उत्तरी अमेरिका के झील परिवहन के साथ कुछ प्रमुख नदी जल मार्गों का उल्लेख करें?

प्रश्न 5. विश्व के प्रमुख नदी जलमार्गों की उपयोगिता वह योगदान का उल्लेख करें?

इकाई–14 यूरोपीय समुदाय, नाफ्टा, कामेकन, एशियान, साफ्टा, लैटिन अमेरिका मुक्त व्यापार संगठन

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 यूरोपीय समुदाय
14.3 नाफ्टा
14.4 कामेकन
14.5 एशियान
14.6 साफ्टा
14.7 लैटिन अमेरिकामुक्त व्यापार संगठन
14.8 सारांश
14.9 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.11 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

14.0 प्रस्तावना

व्यापार एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक प्रक्रिया है जिसमें वस्तुओं एवं सेवाओं को उनके उत्पत्ति वाले स्थान से उपभोग वाले स्थान तक उपलब्ध कराया जाता है। व्यापार की प्रक्रिया को सुचारु रूप से संपादित करने में व्यापारिक संगठनों की भूमिका अति आवश्यक होती है। के. एन. सिंह अपनी पुस्तक आर्थिक भूगोल के मूल तत्व में लिखते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में विभिन्न देशों ने परस्पर हितों को ध्यान में रखते हुए क्षेत्रीय आर्थिक व्यापारिक संगठन बना लिए हैं। ये संगठन इनके सदस्य देशों के परस्पर आयात – निर्यात को विभिन्न ढंगों से प्रश्रय प्रदान करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि ऐसे संगठन कई स्तरों के होते है। इनके माध्यम से मुक्त व्यापार संगठन के तहत अनेक पड़ोसी देश आपस में आयात – निर्यात पर सभी प्रकार के सीमा शुल्क एवं परिमाणात्मक प्रतिबंधों को समाप्त करके व्यापारिक क्रिया को बढ़ावा देते हैं। दूसरी तरफ इनके सदस्यों को यह स्वतन्त्रता रहती है कि संगठन के बाहर के देशों पर सीमा शुल्क एवं अन्य परिमाणात्मक अवरोध अपनी सुविधा के अनुरूप लगा सकते हैं। कुछ देशों द्वारा कस्टम संघों की भी स्थापना की जाती है। यह एक संरक्षणात्मक पहल होती है, जिसके अंतर्गत सदस्य देशों में संगठन की भौतिक एवं राजनीतिक सीमा से बाहर स्थित देशों से आयात पर समान सीमा शुल्क एवं कुछ मात्रात्मक प्रतिबंध लगाए जाते हैं।

व्यापारिक संघों के अंतर्गत न केवल सदस्य देशों के बीच आयात – निर्यात की स्वतन्त्रता होती है बल्कि इनके द्वारा उत्पादन के कारकों जैसे कच्चे एवं तैयार माल, पूंजी, श्रम एवं उद्योगपतियों का आवागमन आसानी से होता है। आर्थिक एवं व्यापारिक संघों के अंतर्गत सभी सदस्य देश सर्वसहमति से अपनाई गई निति को समन्वित करते हैं तथा मुद्रा नीतियों को अपनाते हैं। इसके साथ ही इसके द्वारा सभी सदस्य देशों के मध्य आर्थिक और व्यापारिक क्रियाकलापों के मध्य समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। इसकी सफलता को सुनिश्चित करने के लिए एक सर्वोपरि संस्था भी स्थापित की जाती है, जो मुद्रा, कर, व्यापार, कृषि एवं उद्योग उत्पादन के साथ सामाजिक नीतियों को भी तय करती है। इसके द्वारा लिए गए निर्णय सभी सदस्य देशों के लिए बाध्यकारी होते है।

14.1 उद्देश्य

आर्थिक भूगोल, भूगोल की महत्त्वपूर्ण शाखाओं में से एक है, इसलिए इसका निरंतर विकास हो रहा है। आर्थिक क्रियाकलापों के अनेक स्वरूपों के साथ दृ साथ व्यापार एवं व्यापारिक संगठनों में विस्तार की प्रक्रिया देखी जाती है। ऐसी स्थिति अनेक भूगोलवेत्ताओं तथा शोधकर्ताओं के द्वारा व्यापारिक संगठनों के कार्यों एवं महत्ता की आर्थिक भूगोल में अध्ययन की प्रवृत्ति तीव्रता से बढ़ रही है। इस इकाई के अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है –

1- यूरोपीय समुदाय, नाफ्टा, कामेकन, एशियान, साफ्टा, लैटिन अमरिका मुक्त व्यापार संगठन का भौगोलिक

विश्लेषण प्रस्तुत करना।

2- इन व्यापारिक संगठनों के उद्देश्य एवं प्रभव को स्पष्ट करना।

14.2 यूरोपीय समुदाय

यूरोपीय समुदाय की उत्पत्ति द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मनी की हार तथा भीषण युद्ध के त्राशदी से ग्रस्त पश्चिमी यूरोप के देशों के पुनरुधार के लिए अमेरिका द्वारा बनाए गए मार्शल प्लान के फलस्वरूप हुई थी। अपनी पुस्तक आर्थिक भूगोल के मूल तत्व में के. एन. सिंह लिखते हैं कि मार्शल प्लान के अंतर्गत अमेरिका ने पश्चिमी यूरोप विशेष कर पश्चिमी जर्मनी के अर्थ तंत्र को विकास के रास्ते पर लाने के लिए अधिक पूंजी को अनुदान के रूप में देना प्रारम्भ किया। साथ ही पश्चिमी यूरोप के देशों में बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार आर्थिक विकास हेतु पूंजी के अतिरिक्त वहन एवं आवश्यकताओं के मध्य ताल – मेल बैठाने हेतु विशेष प्रावधान कि आवश्यकता पर बल दिया इसी संदर्भ में वर्ष 1948 ई. में फ्रांस ग्रेट ब्रिटेन, बेल्जियम, लक्जेम्बर्ग तथा नीदरलैंड द्वारा सामरिक सुरक्षा के साथ – साथ आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सहयोग हेतु वेस्ट यूनियन नामक संस्था का गठन किया गया। इस संस्था के गठन का प्रमुख उद्देश्य परस्पर व्यापार में उत्पन्न होने वाली बाधाओं को दूर करना था।

कुछ समय के पश्चात यही संगठन व्ब्क में परिवर्तित हो गया जिसके सदस्य देशों में पश्चिमी यूरोपीय देशों के साथ – साथ आस्ट्रेलिया, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा न्यूजीलैंड व्यापारिक सहयोग की थी । इस संगठन की भावना एवं प्रवृतियों से प्रभावित होकर अप्रैल 1951 ई. में फ्रांस, नीदरलैंड, बेल्जियम, इटली तथा पश्चिमी जर्मनी अपनी सदस्यता हेतु प्रस्ताव प्रेषित किए । संगठन की सदस्यता को मूर्त स्वरूप प्रदान करने के पश्चात ये देश वर्ष 1952 ई. से कोयला एवं इस्पात के लिए एक साझा बाजार विकसित किया जो यूरोपियन कोल एण्ड स्टील कम्यूनिटी के नाम से जाना गया । इससे पश्चिमी यूरोप के आर्थिक विकास में आने वाली बाधाओं का सामना सफलतापूर्वक किया गया। इन्हीं परिस्थितियों में 25 मार्च 1957 ई. को रोम में सम्पन्न एक सम्मेलन में एक विशेष संधि पर हस्ताक्षर किया गया जिसके फलस्वरूप 1 जनवरी 1958 ई. से यूरोपीय साझा बाजार अस्तित्व में आया । इसी समय ऊर्जा की आवश्यकता एवं समस्या का सामना करने के लिए यूरोपीय अणु ऊर्जा समुदाय को भी निर्मित किया गया। इन सभी समुदायों का एक साझा उद्देश्य था सदस्य देशों के बीच व्यापार को निर्बाध रूप से प्रोत्साहित करना। इन संगठनों के अस्तित्व में आने से कोटा, सीमा शुल्क एवं अन्य अवरोधक तथा अन्य विनिमय नियंत्रक नियमों एवं कानूनों का उन्मूलन हुआ जो सदस्य देशों के मध्य माल, सेवाओं एवं पूंजी के स्थानांतरण में अवरोध उत्पन्न करते थे । इस कारण उनके बाजार का विस्तार क्षेत्र सीमित था और वे देश की सीमा के अंदर ही व्यापारिक क्रियाकलापों को संपादित करते थे इससे अर्थव्यवस्था संकुचित थी । इन व्यापारिक संगठनों के अस्तित्व में आने से श्रम विभाजन के साथ आर्थिक विशेषीकरण को प्रोत्साहन मिला । इससे क्षेत्र विशेष की विशेषज्ञता वाली वस्तुओं का उत्पादन एवं व्यापार बढ़ा जिसके कारण सभी देश अपनी कुछ वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया।

इसके बाद वर्ष 1973 ई. ग्रेट ब्रिटेन, आयरलैंड तथा डेनमार्क ने, वर्ष 1981 ई. में यूनान ने तथा वर्ष 1987 ई. में स्पेन, पुर्तगाल, आस्ट्रिया ने इसकी सदस्यता ग्रहण की इसके पश्चात वर्ष 2004 ई. में 10 अन्य पूर्वी यूरोपीय देशों ने इसकी सदस्यता ग्रहण की । इस प्रकार इस समय तक इन देशों की कुल संख्या 25 हो गयी थी । इसके साथ ही कुछ पूर्वी यूरोप के पूंजीवादी व्यापार व्यवस्था से जुड़े देशों ने भी इसमें सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की और शामिल भी हुए । ऐसी दशा में इस संगठन के सम्पूर्ण देशों की संख्या 28 हो गयी ।

इस संगठन में कुछ अफ्रीकी देश भी सम्मिलित हुए जिन्हें अफ्रीकन, कैरिबियन एवं पेसिफिक (ACP) देश के नाम से जाना जाता है। इन देशों की कुल संख्या 18 थी जिन्होंने सदस्यता ग्रहण की । इस प्रकार यह सम्पूर्ण साझा बाजार एक पूर्ण आर्थिक संघ में परिवर्तित हो गया और यूरोपीय समुदाय कहलाया । इस संगठन के सभी क्रियाकलापों के सम्पादन हेतु यूरोपीय संसद नामक संस्था स्थापित की गयी जो इसकी सर्वोच्च संस्था थी । इसका मुख्यालय बेल्जियम के ब्रूसेल्स शहर में स्थित है। इस संसद का निर्माण सभी सदस्य देशों के चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा होता है। यही संसद इसके लक्ष्यों को निर्धारित करती है तथा उसे प्राप्त करने हेतु आर्थिक नीतियों को भी निर्धारित करती है।

सभी सदस्य देशों के मध्य व्यापारिक सम्बन्धों को स्थापित करने हेतु निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं ।

1- संगठन के सभी सदस्य देशों की सीमाओं के मध्य श्रम पूंजी एवं सेवाओं के स्वच्छंद प्रवाह को प्रोत्साहित करना।

2- सभी देशों की भौगोलिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये एक सामान्य कृषि नीति के निर्धारण पर बल दिया गया। जिससे प्रत्येक सदस्य देश में वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार किस फसल का उत्पादन अधिक सुगम होगा के उत्पादन को प्रोत्साहित किया गया।

3- इन देशों के मध्य वस्तुओं, सेवाओं तथा वित्त के सामान्य प्रवाह के लिए एक परिवहन नीति के निर्धारण पर भी बल दिया गया जिसके फलस्वरूप परिवहन माध्यमों पर समान रूप से करारोपण हो तथा एक सदस्य देश में पंजीकृत एवं कर अदा करने वाले परिवहन के साधनों सभी देशों में निर्वाद रूप से आवागमन संभव हो।

4- एक ऐसे आर्थिक तंत्र का निर्माण किया जाए जहां सभी देश एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी न होकर सहयोगात्मक रूप में हों जिससे स्वस्थ्य औद्योगिक प्रतिस्पर्धा का निर्माण हो तथा अपनी विशेषज्ञता वाली वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहन मिले ।

5- सभी सदस्य देशों के मध्य भुगतान संतुलन को सुगम एवं सरल बनाने हेतु आंतरिक नीतियों के निर्माण और क्रियान्वयन के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया गया है। ऐसी स्थिति में सभी देशों को निर्देशित किया गया है कि पूर्व की निषेधात्मक नीतियों में लचिलापन लाए।

6- संघ के सदस्य देशों के मध्य आर्थिक स्थायित्व लाने के लिए एक यूरोपीय सामाजिक कोष की स्थापना पर बल दिया गया है। यह संगठन आर्थिक नीतियों में उदारता के कारण के कारण उत्पन्न होने वाली बेरोजगारी की समस्या का हल करने में सक्षम होगी।

7- इस संगठन के प्रावधानों में यूरोपीय विनिमय कोष की स्थापना भी महत्त्वपूर्ण है। इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य था उन सदस्य देशों में जो अपेक्षाकृत कम विकसित अवस्था में है जैसे इटली, पुर्तगाल एवं स्पेन के उ।ागों में लगे श्रमिकों की आर्थिक दशाओं में सुधार किया जा सके। दूसरी तरफ इन देशों में लागू प्रादेशिक महत्त्व की परियोजनाओं को पूर्ण करने पर जोर दिया जा रहा है, जिससे संतुलित विकास संकल्पना को पूर्ण किया जा सके।

14.3 नाफ्टा

यह उत्तरी अमेरिका में व्यापारिक गतिविधियों को सुचारु एवं सफलता पूर्वक सम्पन्न करने का एक क्षेत्रीय संगठन है। इसके सदस्य देशों का नाम संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा तथा मेक्सिको है। इसे बनाने की पहल इन देशों के मध्य 17 दिसंबर 1992 ई. में हुई संधि के हस्ताक्षर से शुरू हुई थी परंतु इसको मूर्त रूप वर्ष 1994 ई. में दिया जा सका। महाद्वीपीय संबद्धता, भौगोलिक दृष्टिकोण से समानता तथा आर्थिक स्तर की समानता के कारण इन देशों के मध्य पूर्व से ही घनिष्ठ व्यापारिक संबंध पाए जाते हैं। के. एन. सिंह अपनी पुस्तक आर्थिक भूगोल के मूल तत्व में लिखते हैं कि कनाडा और मेक्सिको के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में सबसे बड़ा साझीदार संयुक्त राज्य अमेरिका है जो इन देशों से होने वाले अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के 70% से अधिक आयात निर्यात का भागीदार है। दूसरी तरफ संयुक्त राज्य अमेरिका के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भागीदार के तौर पर अवलोकन करने पर प्राप्त होता है कि कनाडा का स्थान जहाँ प्रथम है वहीं मेक्सिको तृतीय स्थान पर है। वर्ष 1998 ई. के प्राप्त संयुक्त राज्य अमेरिका के सम्पूर्ण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि इसके कुल निर्यात का 21.56% कनाडा को तथा 6.88% मेक्सिको को हुआ था वहीं आयात की प्रवित्ति का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि इसके कुल आयात में कनाडा की भागीदारी 19.76% तथा मेक्सिको की भागीदारी 5.58% है।

कनाडा के कुल निर्यात का 74.15% तथा मेक्सिको के 70.04% भाग का व्यापार संयुक्त राज्य अमेरिका से होता है जबकि कनाडा अपने कुल आयात का 65.41% तथा मेक्सिको अपने सम्पूर्ण आयात का 70.43%

संयुक्त राज्य अमेरिका से करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उत्तरी अमेरिका के इन तीन प्रमुख सीमावर्ती देशों के मध्य व्यापारिक संबंध प्राचीन काल से अब तक बहुत घनिष्ठ हैं। इस प्रकार नाफ्टा संधि के द्वारा इन देशों ने अपने मध्य होने वाले व्यापार को विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया तथा उसके सुचारु रूप से सम्पादन के लिए कुछ नीतियों को बनाने में भी सहमति जताई जिसके प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं।

1– इन राष्ट्रों ने निर्वाद रूप से व्यापारिक प्रक्रिया के सम्पादन हेतु खुला व्यापार नीति बनाने की सहमति बनाई जिसमें वस्तुओं तथा सेवाओं के एक देश से दूसरे देश तक लाने और ले जाने के लिए सीमा शुल्क जैसी बाध्यता को खत्म करना था।

2– औ|ोगिकीकरण को बढ़ाने की दिशा में सहमति जताते हुए इनके मध्य यह समझौता हुआ कि सदस्य देशों की कंपनियों को किसी भी राष्ट्र में निवेश करने की खुली छूट प्रदान की जाएगी।

3– औद्योगिकीकरण के मूल आधार श्रमिक होते हैं जिनके श्रम से उद्योगों का विकास होता है, ऐसी स्थिति में इन सदस्य देशों ने श्रमिकों की अप्रतिबंधित आवागमन को प्रोत्साहन दिया।

4– एक ही महाद्वीप के समीपवर्ती देश होने के कारण इनकी भौगोलिक एवं आर्थिक दशाएँ लगभग समान हैं ऐसी स्थिति में सभी देशों द्वारा एक स्वस्थ श्रम सेवा व्यापार बौद्धिक संपदा एवं पर्यावरण सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए मापदंड तैयार करने तथा कानून बनाने पर सहमति बनी।

उपरोक्त बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए नाफ्टा ने यह घोषणा की थी कि आने वाले 10 वर्षों के लिए मोटर गाड़ियों पर सीमा शुल्क समाप्ति कर दी जाएगी बसरते उनमें कम से कम 62.5% कल पुर्जे उत्तरी अमेरिका में निर्मित हुए हैं। इस संधि के मूर्तरूप में आने के पश्चात संयुक्त राज्य अमेरिकासे वस्त्र और पोशाक के निर्यात पर लगे 20% के प्रतिबंधात्मक कर को समाप्त कर दिया गया तथा वर्ष 2000 ई. तक 85% तक के निर्यात को कर मुक्त करने का प्रावधान किया गया। दूसरी तरफ मेक्सिको में संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा की फर्मों को अपनी शाखाएँ तथा कारखाने लगाने की खुली छुट मिल गई इससे मेक्सिको में औ|ोगिकीकरण की गति तीव्र हो गयी तथा उसके निर्यात में औद्योगिक वस्तुओं की सहभागिता बढ़ गयी। इसके साथ संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रचलित एवं क्रियान्वित स्वास्थ्य सुरक्षा एवं पर्यावरण संरक्षण से संबन्धित मानकों को इन दोनों देशों द्वारा अपनाए जाने पर सहमति बनी।

इस प्रकार भौगोलिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि नाफ्टा मात्र एक व्यापारिक प्रखण्ड नही है बल्कि यह यूरोपीय समुदाय के समान एक आर्थिक समुदाय बनाने के लिए अग्रसर संगठन है। तीन देशों में इसके प्रभाव की सफलता को देखते हुए लैटिन अमेरिका के अनेक देश इसके सदस्य बनने के लिए उत्सुक हैं तथा प्रयासशील भी हैं। इस प्रकार कुछ विद्वानों का मानना है कि भविष्य में नाफ्टा का भौगोलिक विस्तार सम्पूर्ण मध्य अमेरिका, कैरेबियन द्वीप एवं दक्षिणी अमेरिकाके भू–भाग को आवृत्त कर लेगा ।

14.4 कामेकन

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात जब विश्व के विभिन्न देश अपनी अर्थव्यवस्था एवं शासन प्रणाली को सुदृढ़ करने का प्रयास कर रहे थे। इसी समय वर्ष 1948 ई. में पश्चिमी यूरोप के देशों द्वारा अपनी अर्थव्यवस्था को उत्प्रेरण देने के लिए आर्थिक सहयोग की स्थापना की जाती है। इसी समय पूर्वी सोवियत संघ के नेतृत्व में पूर्वी यूरोप के कुछ साम्यवादी देश जिनमें हंगरी, पोलैंड, जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया, रोमानिया, सोवियत संघ, मंगोलिया, वियतनाम तथा क्यूबा सम्मिलित थे । इन देशों ने परस्पर सहयोग एवं सामंजस्य स्थापित करके एक सुदृढ़, घनिष्ठ आर्थिक सहयोग हेतु एक संगठन का निर्माण किया। इनके द्वारा बनाए गए इस संगठन का मुख्य उद्देश्य समाजवादी एवं साम्यवादी विचारधारा को बढ़ावा देते हुए, आपस में एक ऐसे अर्थतंत्र को विकसित करना था जिसके द्वारा आपसी सहयोग से विकास के मार्ग को प्रशस्त किया जा सके । इसके समर्थक देशों का मानना था कि वह किसी भी वैश्विक गुट में सम्मिलित नहीं होंगे तथा समाजवाद की स्थापना करने हेतु पूंजीवाद से दूरी बनाकर विकास कार्यों को प्रोत्साहन देंगे। इनका उद्देश्य एक अलग आर्थिक तंत्र का विकास करना था। इन देशों ने एक – दूसरे देश में औ|ोगिक विकास तथा सेवाओं के परस्पर आदान – प्रदान को सुगम बनाने हेतु सीमा शुल्क से मुक्त व्यापार को बढ़ावा दिया। परंतु वर्ष 1989 में सोवियत संघ में प्रेस्टोइका की लहर व्याप्त हो गई जिसके कारण

पूर्वी यूरोप के अन्य देशों के द्वारा एक के बाद एक कम्युनिस्ट शासन प्रणाली को छोड़ने की प्रक्रियाशुरू हो जाती है। इस प्रकार आपसी मतभेद एवं मनमुटाव के कारण यह संगठन अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल हो जाता है। 3 अक्टूबर 1990 को पूर्वी जर्मनी का जर्मन गणतंत्र में विलय हो जाना तथा इसी के साथ ही पूर्व की बर्लिन की दीवार भी गिर गई। ये सभी घटनाएं इस बात की सूचक थी कि अब कामकन का अस्तित्व समाप्त होने वाला है। अब तक कामकन के सदस्य देशों का बाहर के देशों से व्यापार संबंध अत्यधिक कम था जिसके कारण वैश्विक अर्थव्यवस्था में इन देशों की पहुंच बहुत कम थी । ऐसी स्थिति में सोवियत संघ के विघटन के पश्चात यह संगठन पूरी तरह से समाप्त हो गया तथा इसके औपचारिक भंग की घोषणा भी कर दी गई।

14.5 एशियान

व्यापारिक संघों का निर्माण व्यापारिक एवं आर्थिक क्रियाकलापों को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए किया जाता है। भौगोलिक दृष्टिकोण से अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि यूरोप के बाद परस्पर प्रगाढ़ व्यापारिक आर्थिक संबंध एशियान के देशों में देखने को मिलता है। वर्ष 1977 ई. में थाइलैंड, मलेशिया, इन्डोनेशिया तथा सिंगापुर ने एक आपसी समझौते के तहत इस संघ का निर्माण किया था। इस संघ की सफलता को देखते हुए कालांतर में अनेक देशों ने इसमें सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की। बाद में सम्मिलित होने वाले देशों का नाम ब्रुनेई, वियतनाम, कंबोडिया, म्यांमार, लाओस एवं वेस्ट एशियन देश है। वर्तमान समय में यह संगठन सदस्य देशों के मध्य व्यापारिक एवं आर्थिक क्रियाओं को सफल करने में अधिक सक्षम है।

आशियान के देशों एक बीच वर्ष 1980 ई. से 1985 ई. के बीच की अवधि में तीव्र गति से निर्यात बढ़ा है। इसी अवधि में इस संगठन के देशों का निर्यात 26.6% से बढ़ कर 32.8% हो गया है तथा आयात भी 21.8% से बढ़कर 32.8% तक पहुँच गया ।

एशियान के साथ एशिया एवं प्रशांत के लिए आर्थिक एवं सामाजिक आयोग की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। इसके अस्तित्त्व में आने के पश्चात वर्ष 1985–90 की अवधि में इस क्षेत्र का एशियान के साथ व्यापार भागीदारी निर्यात में 31.99% तथा आयात में 24.9% दर्ज की गयी है। इसी प्रकार वर्ष 1980–90 के मध्य एशियान प्रखण्ड के देशों का व्यापार इस संघ के बाहर के देशों के साथ अधिक बढ़ा है। इन देशों में उत्तर – पूर्वी एशिया के देश जापान, चीन एवं कोरिया की भागीदारी महत्वपूर्ण रही है।

14.6 साफ्टा

वर्ष 1993 ई. में ढाका में सार्क देशों का एक शिखर सम्मेलन आयोजित हुआ। इस शिखर सम्मेलन के प्रमुख विषयों में से एक विषय यह भी था कि किस प्रकार सदस्य देशों के मध्य व्यापारिक क्रियाकलापों को बढ़ाया जाए तथा ऐसी संरचना विकसित की जाए ताकि व्यापार का अधिक से अधिक लाभ सदस्य देशों को प्राप्त हो सके । इसी के परिणाम स्वरूप साप्टा (South Asian Preferential Trading Agreement) अस्तित्व में आया। इसके पश्चात इस व्यापारिक प्रखण्ड में विश्व के व्यापारिक गठबंधन की प्रवृत्तियों में परिवर्तन आया और सक्रियता बढ़ी । इस संगठन की महत्ता को प्रकट करते हुये के. एन. सिंह आर्थिक भूगोल के मूल तत्व में लिखते हैं कि आर्थिक समन्वय की बढ़ती गहनता की दिशा में सार्क राष्ट्रों द्वारा व्यापार में परस्पर वरीयता प्रदान करने का यह पहला कदम था । इस प्रकार इस व्यवस्था के अंतर्गत प्रादेशिक व्यापार की दिशा में सदस्य देशों द्वारा सीमा शुल्क तटकर एवं अन्य रियायतों में परस्पर लाभकारी कदम उठाए गए। इसी परिदृश्य में भारत सरकार द्वारा 226 वस्तुओं पर सदस्य देशों के बीच आयात पर तटकर समाप्त तटकर दिया गया। प्रारम्भिक अवस्था में इस पर सदस्य देशों द्वारा सक्रीयता दिखाई गयी। परंतु वर्ष 1996 ई. तक इसके क्रियाकलापों में सिथिलता आ गई क्योंकि इसी दौरान भारत से आयातित वस्तुओं में पाकिस्तान द्वारा अपनाई जाने वाली भेदभाव परख नीति ने नकारात्मक प्रभाव डाला। दूसरी तरफ इसी अवधि में देखा गया कि पाकिस्तान द्वारा निजी व्यापारिक क्षेत्र में भारत से 541 प्रकार की वस्तुओं के सीधे आयात पर कोई प्रतिबंध में नही आया। इस प्रकार देखा गया कि सार्क देशों में बढ़ते आर्थिक समन्वयन की दिशा में साप्टा एक आशाप्रद प्रारम्भ माना जा सकता है।

इस संगठन की क्षेत्रीय परियोजनाओं को सफल बनाने की दिशा में।क्ठ। के प्रावधानों के अंतर्गत सार्क फंड की स्थापना की गयी। जिससे इसकी संकल्पना एवं प्रासंगिगता को अधिक बल मिला इस संगठन की

सफलता के समक्ष सबसे महत्वपूर्ण चुनौती यह थी कि पाकिस्तान के सोच में अब भी सार्क के प्रति अभी भी जागरूकता तथा सक्रीयता में सकारात्मक लक्षण नही मिले। इसी दौरान पाकिस्तान द्वारा कश्मीर के नियंत्रण रेखा के भीतर घुसपैठ से उत्पन्न होने वाले संघर्ष ने इसकी सफलता पर बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह लगा दिया।

इस संघ के सदस्य के आर्थिक विकास के कार्यों के प्रोत्साहन हेतु एशियन बैंक के सहयोग से 785 हजार डालर का एक फंड स्थापित किया गया। जिसके सदस्य देशों के क्षेत्र में क्रियान्वित परियोजनाओं के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जाने लगी। इसी संघ के विकास कार्यों में से एक है भारत भूटान के सहयोग से स्थापित 336 में गावाट चूखा जल विद्युत परियोजना भी है। स्थानीय स्तर पर विद्युत की आपूर्ति करने के पश्चात इससे उत्पादित विद्युत की आपूर्ति असम एवं पश्चिम बंगाल में भी होती है। वर्ष 1996 ई. में भारत एवं नेपाल के मध्य हुये समझौते के तहत महाकाली परियोजना भी स्थापित हुई इससे दोनों देशों के मध्य विद्युत की कुछ समस्याओं का समाधान किया गया। दूसरी तरफ वर्ष 1996 ई. में ही भारत एवं बांग्लादेश के मध्य संवाद स्थापित करके जल बटवारा समझौता को भी मौलिक स्वरूप प्रदान किया गया। इसी तरह अप्रैल 1997 ई. में भारत नेपाल बांग्लादेश और भूटान ने मिलकर दक्षिण एशिया विकास चतुर्भुज परियोजना की स्थापना की । जिसके सहयोग से पर्यवरन सुरक्षा व्यापारिक विनियोजन ऊर्जा विकास परिवहन एवं पर्यटन के क्षेत्रों में समन्वित प्रयास किया गया। एक अन्य समझौते के तहत भारत बांग्लादेश म्यांमार थाईलैंड और श्रीलंका के मध्य मुक्त व्यापार सेवाओं तथा अन्य परियोजनाओं के सहयोग हेतु ठप्डठैज्म्ब की रूप रेखा तय हुई। इसी का परिणाम था कि वर्ष 1998 से भारत और श्रीलंका के मध्य मुक्त व्यापार का प्रारम्भ हुआ ।

इस संगठन के सदस्य विश्व की तीव्र गति से बदलती व्यापारिक दृश्यावली वाले देशों में से एक हैं जहां औ|ोगिकीकरण एवं व्यापारिक क्रियाकलापों के क्रियान्वयन की अधिक संभावनाएं हैं । इसका मुख्य कारण यह है कि पूर्व में ये सभी देश औपनिवेशिकता के शिकार थे जिसके कारण यहाँ औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा बुनियादी सुविधाओं एवं उ|ोगों के विकास पर ध्यान नही दिया गया था । द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान इन देशों ने आजादी प्राप्त की थी । आजादी के पश्चात इन देशों द्वारा स्वतः विकास को प्रोत्साहन दिया गया परंतु अपेक्षित सफलताएँ प्राप्त नही हो सकीं । ऐसी स्थिति में यह संगठन उन अधूरे उद्देश्यों को पूर्ण करने में सहायक होगा । अफ्रीका एवं एशिया के अन्य देश भी जो किसी संगठन के सदस्य नही थे, ने भी इसकी सदस्यता ग्रहण करने कि इच्छा प्रकट की ताकि व्यापारिक एवं औद्योगिक सहभागिता में सहयोगी बन सके ।

14.7 लैटिन अमेरिकामुक्त व्यापार संगठन

व्यापारिक क्रियाकलापों को कुशलता पूर्वक संपादित करने के लिए लैटिन अमेरिका के देशों द्वारा आपसी समझौते के आधार पर लैटिन अमेरिकी मुक्त व्यापार संगठन का गठन किया गया। इससे पूर्व भी इन देशों के मध्य व्यापारिक क्रियाकलापों का सम्पादन होता था परंतु इस संगठन के अस्तित्व में आने से इनकी व्यापारिक क्रियाकलापों में वृद्धि देखी गयी। लैटिन अमेरिका आर्थिक आयोग भी एक महत्वपूर्ण संगठन है जो वर्ष 1954 ई. में इस क्षेत्र के देशों में परस्पर व्यापार और आर्थिक विकास को बढ़ाने के लिए गठित हुआ था। आपसी विचार विमर्श करने के पश्चात 18 फरवरी 1960 को मांटेविडियों में सम्पन्न एक सम्मेलन की संधि के अनुसार 7 देशों अर्जेंटीना, ब्राजील, चिली, परागुए, उरग्वे एवं पेरु ने हस्ताक्षर किए तथा इसके प्रावधानों को अंगीकृत भी किया । के. एन. सिंह अपनी पुस्तक आर्थिक भूगोल के मूल तत्व में लिखते हैं कि लैटिन अमेरिका आर्थिक आयोग का उद्देश्य लैटिन अमेरिका क्षेत्र में उदार शर्तों पर व्यापार के अतिरिक्त अन्य सदस्य देशों में कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन में समन्वय स्थापित करना था। कालांतर में कोलम्बिया, बोलोविया एवं एक्वाडोर ने भी इसकी सदस्यता ग्रहण की। इस प्रकार देखा गया कि लैटिन अमेरिका आर्थिक आयोग की स्थापना के बाद भी यह क्षेत्र व्यापारिक क्रियाकलापों एवं औद्योगिकीकरण के क्षेत्र में अपेक्षित सफलता प्राप्त करने में सफल नही रहा। इसके कारणों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि इन देशों के अर्थतन्त्र एवं व्यापार की डोर बाह्य देशों के हाथ में थी जिनमें संयुक्त राज्य अमेरिका प्रमुख है। ये सभी अर्थव्यवस्थाएं अपने घरेलू अवश्यकताओं एवं अन्य वस्तुओं की आपूर्ति को लेकर बड़े अंतर्राष्ट्रीय ऋण के बोझ में दबी हुई थी। जिसके कारण कृषिगत उत्पादों एवं खनिज पदार्थों का निर्यात विकसित देशों द्वारा निर्धारित की गयी शर्तों के अनुसार होता था। जिसके कारण इन देशों की व्यापारिक एवं आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी । इन्हीं सभी परिस्थितियों से निपटने के लिए लैटिन अमेरिका परिक्षेत्र में स्थित देशों ने एक समझौते के तहत लैटिन अमेरिकी मुक्त व्यापार संगठन का गठन किया था।

लैटिन अमेरिकी मुक्त व्यापार संगठन एक व्यापारिक गुट है जो निर्धारित परिसीमा के अंतर्गत व्यापार एवं व्यापारिक क्रियाकलापों को सफलता पूर्वक क्रियान्वित करता है। इन देशों नें आपसी व्यापार को बढ़ावा देने के लिए सीमा शुल्कों को कम करने के साथ साथ मात्रात्मक प्रतिबंधों को कम किया । साथ ही साथ प्रौ|ोगिकी एवं तकनीकी ज्ञान के आदान – प्रदान हेतु एक महत्वपूर्ण पथ को निर्धारित किया जिसके सहारे विकसित स्थानों तक प्रौ|ोगिकी को पहुंचा कर कृषि एवं उ|ोग उत्पादों के उत्पादन को बढ़ाया जा सके। इससे स्थानीय लोगों को गुणवत्तायुक्त पदार्थों की आपूर्ति के साथ अर्थव्यवस्था को भी उत्प्रेरण मिले। लैटिन अमेरिकी भौगोलिक परिसीमा के अंतर्गत LAFTA के अतिरिक्त कुछ अन्य संगठन भी हैं जो इस क्षेत्र की व्यापारिक गतिविधिओं को बढ़ावा देने में मदद कर रहे हैं जैसे लैटिन अमेरिका एंटीग्रेशन असोशिएशन (LAIA) इसके सदस्य देशों के अंतर्गत मेक्सिको, पराग्वे, पेरु, उरुग्वे एवं वेनेजुवेला सम्मिलित हैं । एक अन्य संगठन मार्कोसोर भी है ftls Southern Core Common Market भी कहा जाता है। इसके सदस्य देश अर्जेंटीना, ब्राजील, पराग्वे एवं उरुग्वे हैं, जो संबन्धित देशों की व्यापारिक गतिविधिओं को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं ।

14.8 सारांश

आपने इस इकाई में यूरोपीय समुदाय, नाफ्टा, कामेकन, एशियान, साफ्टा, लैटिन व्यापार संगठन का अध्ययन किया है। आप समझ गए होगें कि आर्थिक भूगोल में व्यापारिक गतिविधियों को व्यापारिक संगठन किस प्रकार प्रभावित करने में किन – किन घटकों को सम्मिलित किया जाता है। इससे विश्व या किसी देश की व्यापारिक गतिविधि को गतिशीलता मिलती है तथा उसके विकास को प्रोत्साहन प्राप्त होता है। वास्तव में किसी देश की व्यापारिक संरचना तथा वहाँ पर संचालित होने वाली व्यापारिक गतिविधियाँ उसकी भौगोलिक अवस्थिति, सरकारी नीतियों, सांस्कृतिक संगठन आदि से प्रभावित होती है।

इस इकाई में आर्थिक भूगोल के अंतर्गत व्यापारिक संगठनों की उपयोगिता, क्षेत्रीय विभिन्नता के विविध आयाम तथा वर्तमान समय में उनकी प्रासंगिकता को प्रस्तुत किया गया है। इसका अध्ययन भूगोल में बहुत बाद में शुरू हुआ जिसके कारण वैश्विक स्तर पर व्यापर, व्यापार से जुड़ी क्रियाएँ तथा व्यापारिक संगठनों के अध्ययन के विविध स्वरूप प्रकट करते हुए है। किन्हीं देशों में इसके अध्ययन को ज्यादा महत्त्व दिया गया है, तो किन्हीं देशों में कम। समय में होने वाले परिवर्तन के साथ ही व्यापारिक संगठनों के अध्ययन की प्रासंगिकता में वृद्धि हुई है, जिसने आर्थिक भूगोल के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस प्रकार आपने यूरोपीय समुदाय, नाफ्टा, कामेकन , एशियान, साफ्टा, लैटिन अमेरिका मुक्त व्यापार संगठन का विस्तृत एवं सारगर्भित अध्ययन किया है।

14.9 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

1- वेस्ट यूनियन नामक संस्था का गठन कब किया गया था ।

(क) 1954 ई. (ख) 1953 ई. (ग) 1948 ई. (घ) 1912 ई.

2- यूरोपीय यूनियन संघ के सदस्य देशों की सम्पूर्ण संख्या कितनी है ।

(क) 45 (ख) 24 (ग) 28 (घ) 32

3- निम्नलिखित में से कौन सा देश नाफ्टा का सदस्य नही है ।

(क) संयुक्त राज्य अमेरिका (ख) कनाडा (ग) मेंक्सिको (घ) जर्मनी

4- एशियान का गठन निम्नलिखित में से किस वर्ष किया गया था ।

(क) 1965 ई. (ख) 1977 ई. (ग) 1982 ई. (घ) 1999 ई.

5. वर्ष 1993 ई. में सार्क के सदस्य देशों का शिखर सम्मेलन कहाँ पर हुआ था ।

(क) नई दिल्ली (ख) ढाका (ग) काठमांडू (घ) इस्लामाबाद

14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

गौतम, अलका, 2007,आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, शारदा पुस्तक भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीव्यूटर्स, 11,यूनिवर्सिटी रोड, इलाहबाद.

सिंह, के. एन. एवं सिंह जगदीश सिंह, 2013,आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली,

14.11 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

1. व्यापारिक संघों की महत्ता की विस्तृत व्याख्या कीजिए ?
2. यूरोपीय यूनियन की स्थापना पश्चात सदस्य देशों की व्यापारिक गतिविधियों का वर्णन कीजिए ?
3. साफ्टा की भूमिका को स्पष्ट कीजिए ?
4. एक व्यापारिक संगठन के रूप में एशियान की भूमिका का विश्लेषण कीजिए ?

5- लैटिन अमेंरिकी व्यापारिक संघ की प्रासंगिकता का उल्लेख कीजिए ?

Notes

Notes